

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186071

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No. 481

Accession No. ^{P.G.} 11.1851

Author K. H. 2 K

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

केशव-ग्रंथावली

खंड १

आलो

(रसिकप्रिया और कविप्रिया)

संपादक

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र

हिंदी-विभाग, काशी विश्वविद्यालय

१९५४

हिंदुस्तानी एकेडेमी

उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : १९५४ : २००० प्रतियाँ

मूल्य पाँच रुपये



मुद्रक : राय आनन्द कृष्ण

शारदा मुद्रण : ठठेरी बाजार, बनारस

प्रकाशकीय

हिंदुस्तानी एकेडेमी की एक योजना रही है कि हिंदी के प्रमुख कवियों की समस्त रचनाओं के ऐसे संस्करण प्रकाशित किए जाएँ जिनके पाठ यथासंभव प्रामाणिक तथा सुसंपादित हों। इस योजना के अंतर्गत एकेडेमी से 'जायसी-ग्रंथावली' तथा 'तुलसी-ग्रंथावली' (खंड १) का प्रकाशन हो चुका है अब 'केशव-ग्रंथावली' (खंड १) इस क्रम की नई कड़ी के रूप में पाठकों के समक्ष है।

'केशव-ग्रंथावली' का संपादन अधिकारी विद्वान् श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अनेक नई और पुरानी छपी तथा हस्तलिखित पोथियों के आधार पर किया है, जिसमें 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'रामचंद्रचंद्रिका', 'छंदमाला', 'शिखनख', 'रतनबावनी', 'वीरसिंहदेवचरित', 'जहाँगीरजसचंद्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' ये नौ रचनाएँ सम्मिलित हैं। पूरी ग्रंथावली के तीन खंडों में प्रकाशन का आयोजन है। इस खंड में केशव की दो रचनाएँ 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' प्रस्तुत हैं।

आचार्य और कवि केशवदास हिंदी की विभूति हैं। दुःख है कि अभी तक इनके ग्रंथों का सुसंपादित संस्करण प्रकाश में नहीं आ सका था। आशा है प्रस्तुत ग्रंथावली के संपूर्ण होने पर हिंदी के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति होगी।

हिंदुस्तानी एकेडेमी,
उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद
सितंबर, १९५४

}

धीरेंद्र वर्मा
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

ग्रंथ-सूची

१. रसिकप्रिया

१—६३

२. कविप्रिया

६४—२२८

संकेत

रसिकप्रिया

बाल०—बालकृष्णदासजी (ग्रंथस्वामी) का हस्तलेख, सं० १७२२ ।

बाल० खं०—बालकृष्णदासजी का खंडित हस्तलेख, पुष्पिका खंडित ।

रस०—रसगाहकचंद्रिका का हस्तलेख, टीकाकार सूरत मिश्र, १७६० के आसपास निर्मित ।

नवल०—नवलकिशोर प्रेस की मुद्रित प्रति, टीकाकार सरदार कवि, सं० १६०३ में निर्मित ।

कविप्रिया

बाल०—बालकृष्णदासजी का हस्तलेख, सं० १७२४ ।

याज्ञिक०—याज्ञिक-संग्रह (काशी नागरीप्रचारिणी सभा) का हस्तलेख, सं० १७५८ ।

याज्ञिक अ०—याज्ञिक-संग्रह का अपूर्ण हस्तलेख, लिपिकाल अज्ञात ।

सहज०—सहजराजचंद्रिका का हस्तलेख, टीकाकार राम कवि, सं० १८३४ में निर्मित ।

हरि०—हरिचरणदास की कविप्रियाभरण टीका (मुद्रित), सं० १८३५ में निर्मित ।

लाला०—लाला भगवानदीनजी का हस्तलेख, लिपिकाल अनुस्मृत ।

सरदार०—सरदार कवि की टीका (मुद्रित), सं० १६११ में निर्मित ।

दीन०—दीनजी की प्रियाप्रकाश टीका, सं० १६८२ में मुद्रित ।

रत्ना०—रत्नाकरजी द्वारा सं० १७२४ के हस्तलेख से संपादित 'नखशिख' (मुद्रित) ।

अन्यत्र—अन्य संग्रहादि के हस्तलेख ।

वही—पूर्वगामी संकेत ।

ष—ख ।

रसिकप्रिया

१

अथ मंगलाचरणा

श्री गणेश-वंदना-(छप्पय)

एक-रदन, गजवदन, सदनबुधि, मदन-कदन-सुत ।
गौरि-नंद, आनंद-कंद, जग-बंद, चंद-युत ।
सुख-दायक, दायक-सुकीर्ति, जगनायक-नायक ।
खल-घायक, घायक-दरिद्र सब लायक-लायक ।
गुरु-गुन अनंत, भगवंत-भव, भगतिवंत भव-भय-हरन ।
जय केसवदास निवास-निधि, लंबोदर, असरन-सरन ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण-वंदना-(छप्पय)

श्रीवृषभानु-कुमारि-हेत सृंगार-रूप भय ।
बास हास-रस हरे, मातु-बंधन करुनामय ।
केसी-प्रति अति रौद्र, बीर मारो बत्सासुर ।
भय दावानल-पान, पियो बीभत्स बकी-उर ।
अति अदभुत बंचि बिरंचि-मति, सांत संततै सोच चित ।
कहि केसव सेवहु रसिक जन, नवरसमय ब्रजराज नित ॥ २ ॥

अथ कवि-वर्णन-(दोहा)

नदी बेतवै-तीर जहँ, तीरथ तुंगारन्य ।
नगर ओढ़छो बहु बसै, धरनीतल में धन्य ॥ ३ ॥
आलस चारि बसे जहाँ, चारि बर्न सुभ कर्म ।
जप, तप, विद्या बेद-विधि, सबै बड़े धन धर्म ॥ ४ ॥

[१] गौरि-गवरि (रस०) । युत-जुत (रस०) । दायक-दाइक (रस०) । सुकीर्ति-सुकृति (रस०) । जग-गण (रस०) । गुरु-गुन-गुन-गन (रस०) ।

[२] रौद्र-रुद्र (रस०) । मारो-माखौ (रस०) । पियो-कियो (रस०) । संततै-सुसंतत (रस०) । [३] जहँ-तहँ (रस०) । [४] बसे-बसैं (रस०) ।

दिन प्रति जहाँ दूनो लहै, जहाँ दया अरु दान ।
 एक तहाँ 'केसव' सुकवि, जानत सकल जहान ॥ ५ ॥
 अपने अपने धर्म तहँ सबै सदा सुखकारि ।
 जासों देस बिदेस के रहे सबै नृप हारि ॥ ६ ॥
 रच्यो विरंचि विचारि तहँ, नृपमनि मधुकर साहि ।
 गहरवार कासीस-रवि, कुल-मंडन जसु जाहि ॥ ७ ॥
 ताको पुत्र प्रसिद्ध महिमंडन दूलहराम ।
 इंद्रजीत ताको अनुज, सकल धर्म को धाम ॥ ८ ॥
 दीन्ही ताहि नृसिंह जू तन मन रन जय सिद्धि ।
 हित करि लच्छन-राम ज्यों भई राज की बृद्धि ॥ ९ ॥
 तिन कवि केसवदास सों कीन्हो धर्म-सनेहु ।
 सब सुख दै करि यों कह्यो, 'रसिकप्रिया' करि देहु ॥ १० ॥
 संवत सोरह सै बरष बीते अठतालीस ।
 कातिग सुदि तिथि सप्तमी बार बरनि रजनीस ॥ ११ ॥
 अति रति-गति मति एक करि, विविध विवेक बिलास ।
 रसिकन कों रसिकप्रिया कीनी केसवदास ॥ १२ ॥
 ज्यों बिनु डीठि न सोभिजै लोचन लोल बिसाल ।
 त्यों ही 'केसव' सकल कवि, बिनु बानी न रसाल ॥ १३ ॥
 तातें रुचि सों सोचि पचि कीजै सरस कवित्त ।
 'केसव' स्याम सुजान को, सुनत होइ बस चित्त ॥ १४ ॥

अथ नवरस-वर्णन-(दोहा)

प्रथम सिंगार सुहास्य-रस करुना-रुद्र सुबीर ।
 भय बीभत्स बखानियें अद्भुत सांत सुधीर ॥ १५ ॥
 नवहू रस के भाव बहु, तिनके भिन्न विचार ।
 सबको 'केसवदास', हरि नायक है सृंगार ॥ १६ ॥

अथ शृंगाररस-लक्षण-(दोहा)

रति मति की अति चातुरी, रतिपति मंत्र विचार ।
 ताही सों सब कहत हैं कवि कोविद सृंगार ॥ १७ ॥

[६] की-सों (रस०) । कीन्हो०-कियौ धर्म सों नेहु (रस०) ।

[१३] सोभिजै-सोभिजै (रस०) । न०-निरसाल (रस०) ।

अथ शृंगार के भेद—(दोहा)

सुभ संजोग बियोग पुनि द्वै सिंगार की जाति ।
पुनि प्रच्छन्न प्रकास करि, दोऊ द्वै द्वै भाँति ॥ १८ ॥

अथ प्रच्छन्न-संयोग-शृंगार-लक्षण—(दोहा)

सो प्रच्छन्न सँजोग अरु, कहै बियोग प्रमान ।
जानै पीउ पिया कि सखि होइ जु तिनहिँ समान ॥ १९ ॥

अथ प्रच्छन्न-संयोग-शृंगार—(सवैया)

वन में बृषभानु-कुमारि मुरारि रमें रुचि सों रस-रूप पिये ।
कल कूजत पूजत काम-कला बिपरीत रची रति केलि किये ।
मनि सोभित स्याम जराइ जरी अति चौकी चलै चल चारु हिये ।
मखतूल के भूल मुलावत 'केसव' भानु मनो सनि अंक लिये ॥ २० ॥

अथ प्रकाश-संयोग औ प्रकाश-वियोग-लक्षण—(दोहा)

सो प्रकास-संजोग अरु, कहै प्रकास-बियोग ।
अपने अपने चित्त में जानै सिंगरे लोग ॥ २१ ॥

अथ प्रकाश-संयोग, यथा—(सवैया)

'केसव' एक समै हरि-राधिका आसन एक लसै रंग-भीने ।
आनंद सों तिय-आनन की दुति देखत दर्पन में दृग दीने ।
भाल के लाल में बाल बिलोकितहीं भरि लालन लोचन लीने ।
सासन पीय सवासन सीय हुतासन में मनो आसन कीने ॥ २२ ॥

अथ श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न-वियोग-शृंगार, यथा—(सवैया)

कीट ज्यों काटत काननि कान्हू सों मानहूँ में कहि आवति ऊनो ।
ताहि चले सुनि कै चुप हूँ रहे नीकहिँ 'केसव' एक न दूनो ।
नेक अटै पट फूटति आँखि सु देखति है कब को ब्रज सूनो ।
काहे को काहू को कीजै परेखोऽब जीजै री जीव की नाक दै चूनो ॥ २३ ॥

अथ राधिका को प्रकाश-वियोग-शृंगार, यथा—(सवैया)

जिनके मुख की दुति देखत ही निसि-बासर 'केसव' दीठि अटी ।
पुनि प्रेम-बढ़ावन की बतियाँ तजि आन कछू रसना न रटी ।

[२२] रंग-रस (रस०) । में दृग-त्यों दृग (बाल०), सों दृग (रस०) । सबा-सन-सवासिन (नवल०) । [२३] राधिका-प्रिया (रस०) । रहे-गए (नवल०) । एकन-एकहि (नवल०) ।

जिनके पद पानि उरोज-सरोज हिये धरि कै पल नैन घटी ।
तिनके सँग छूटत ही फटु रे हिय तोहिं कहा न दरार फटी ॥२४॥

(कवित)

सीतल समीर टारि चंद्र-चंद्रिका निवारि
‘केसोदास’ ऐसैं ही तो हरषु हिरातु है ।
फूलन फैलाइ डारि भारि डारि घनसार
चंदन कों डारि चित्त चौगुनो पिरातु है ।
नीर-हीन मीन मुरझाइ जीवै नोर ही तैं
झीर झिरके तैं कहा धीरजु धिरातु है ।
पाई है तैं पीर किधौं यों ही उपचार करै,
आगि को तौ डाढ्यो आँगु आगि ही सिरातु है ॥२५॥

श्रीकृष्ण को प्रच्छन्न-वियोग, शृंगार-यथा-(सवैया)

‘केसव’ रुठि रह्यो तुमहीं सों किधौं भय काहू के भीत भयो है ।
बेच्यो है काहू के हाथनि नाथ किधौं तुम काहू के साथ दयो है ।
मेरी सों मोसहुँ मानहु बेगि इहाँ मनु नाहिं कहाँ पठयो है ।
साँची कहौ हरि हाथ्यो है काहू सों काहू हथ्यो कि हिराइ गयो है ॥२६॥

श्रीकृष्ण को प्रकाश-वियोग-शृंगार यथा-(सवैया)

बात कहैं न सुनैं कछु काहू त्यों हेरैं नहीं कोउ कैसेहूँ हेरो ।
खाई कछु न पियैं कछु केसो छुबैं न कछु कर कौरौ करेरो ।
हूलि उठी ब्रज बैठी कहा उठि आवहु देखि कस्यो करि मेरो ।
जानै को माइ कहा भयो कान्ह कों जोग-सँयोग बियोग कि तेरो ॥२७॥

(दोहा)

यों परछन्न प्रकास बिधि बरने जोग बियोग ।
अब नायक-स्तच्छन्न कहौ गूढ़-अगूढ़ प्रयोग ॥२८॥

इति श्री मन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां प्रच्छन्नप्रकाशसंयोगवियोग-
वर्णनं नाम प्रथमः प्रभावः ॥१॥

[२४] यह ‘बाल०’ में नहीं है । [२५] डारि-डोर (नवल०) । टारि-टार (बाल०) । मुरझाइ-मुरझाति (बाल०) । तैं-तै (बाल०) ।

[२८] ‘बाल० खं०’ में यह दोहा और है—

सुभग सवैया षट करे पुनि दोहा उनईस । केसव प्रथम प्रभाव में रसिकप्रिया के ईस ॥

२

अथ साधारण-नायक-लक्षण—(दोहा)

अभिमानी त्यागी तरुन, कोक-कलानि प्रवीन ।
 भव्य छमी सुंदर धनी, सुचि-रुचि सदा कुलीन ॥ १ ॥
 ये गुन 'केसव' जासु में सोई नायक जानि ।
 अनुकुल दख सठ धृष्ट पुनि चौबिधि ताहि बखानि ॥ २ ॥
 प्रीति करै निज नारि सों, पर-नारी-प्रतिकूल ।
 'केसव' मन-बच-कर्म करि, सो कहियै अनुकूल ॥ ३ ॥

अथ प्रच्छन्न-अनुकूल, यथा—(सवैया)

और के हास बिलास न भावत साधुनि को यह सिद्ध सुभावै ।
 बात बहै जु सदा निबहै हरि कोऊ कहूँ कलु सोधु न पावै ॥
 आसन बास सुबासन भूषन 'केसव' क्यों हूँ यहौ बनि आवै ।
 मो बिनु पान न खात जु कान्ह सु बैरु किधौँ यह प्रीति कहावै ॥ ४ ॥

अथ प्रकाश अनुकूल, यथा—(सवैया)

'केसव' सूधे बिलोचन सूधी बिलोकनि कोँ अवलोकै सदाई ।
 सूधियै बात सुनै समुझै कहि आवति सूधियै बात सुहाई ॥
 सूधी सी हाँसी सुधानिधि सो मुख सोधि लई बसुधा की सुधाई ।
 सूधे सुभाइ सबै सजनी बस कैसेँ किये अति टेढ़े कन्हाई ॥ ५ ॥

अन्य-रुच—(सवैया)

मेरें तौ नाहिन चंचल लोचन नाहिन 'केसव' बानी सुधाई ।
 जानौँ न भूषन-भेद के भावनि भूलिहूँ में नहिँ भौह चढ़ाई ॥
 भोरेहूँ ना चितयो हरि-ओर त्योँ घेरु करेँ इहिँ भाँति लुगाई ।
 रंचक तौ चतुराई न चित्तिहिँ कान्ह भए बस काहे तें माई ॥ ६ ॥

अथ दक्षिण-लक्षण—(दोहा)

पहिलौ सो हिय हेतु डर, सहज बड़ाई कानि ।
 चित्त चलै हूँ ना चलै, दच्छिन-लच्छन जानि ॥ ७ ॥

अथ प्रच्छन्न-दक्षिण, यथा—(कवित)

हरि से हितु सों भ्रम भूलिहूँ न कीजै मान,
 हातो कियेँ हिय हूँ तें होति हित हानियेँ ।

[१] कोक-केलि (बाल० खं०, रस०) । [२] अनुकुल-अनुल (नवल०) ।
 चौबिधि०-चारि प्रकार (बाल० खं०) । [५] सूधियै-सूधी सी (बाल०) । सुधानिधि-सुधाकर
 (नवल०) । [६] भेद०-भाव के भेदनि (बाल० खं०) ।

लोक में अलोक आनि नीकेहूँ को लागतु है,
 सीता जू को दूत गीत कैसे उर आनियेँ ।
 आँखिन जो देखियत सोई साँची 'केसोदास',
 काननि की मुनी साँची कबहूँ न मानियेँ :
 गोकुल की कुलटा ये यों हीँ उलटावति है,
 आजु लों तौ वैसेई हँ कालि की न जानियेँ ॥ ८ ॥

अथ प्रकाश-दक्षिण, यथा—(सवैया)

चित चौप चितैबे की तैसियै है अरु तैसियै भाँति डरात घनै ।
 अरु तैसेई कोमल बोल गुपाल के मोहत हैं तिहि भाँति मनै ।
 गुन तैसेई, हास-बिलास सबै हुते तैसेई 'केसव' कौन गनै ।
 सखि तू कहै आन बधू के अधीन हैं सो परतीक किधौँ सपनै ॥ ९ ॥
 बहि-अंतर गूढ़-अगूढ़ निरंतर काम-कला कुल कौन गनै ।
 कहि 'केसव' हास-बिलास सबै प्रतिद्यौस बढै रसरीति सनै ॥
 जिनको जिय मेरैई जीव जिये सखि काय मनो बच प्रीति घनै ।
 तिनको कहै आन बधू के अधीन हैं सो परतीक किधौँ सपनै ॥ १० ॥

अथ शठ-लक्षण—(दोहा)

मुँह मीठी बातें कहै, निपट कपट जिय जानि ।
 जाहि न डर अपराध को, सठ करि ताहि बखानि ॥ ११ ॥

अथ प्रच्छन्न-शठ, यथा—(सवैया)

राँचि पंकज चंदन बंदन कंचन रंचन रोचन हूँ की वची ।
 कहियै किहि कारन को इते लायक का पर भासिनि भौंह नची ॥
 अनुमानत हौँ आँखियाँ लाख लाल ये नाहिँ नै राति के रोष रची ।
 तन तेरे बियोग तप्यो तरुनी तिहि मानहुँ मो हिय माँह तची ॥ १२ ॥

अथ प्रकाश-शठ, यथा—(कवित्त)

काननि के रंग रंग नैननि के डोलौ संग,
 नासा अंग रसना के रसहीं समाने हौ ।
 और गूढ़ कहा कहौँ मूढ़ हौ जू ? जानि जाहु,
 प्रौढ़रूढ़ 'केसोदास' नीक करि जाने हौ ।
 तन आन मन आन, कपट-निधान कान्ह,
 साँची कहौ मेरी आन काहे कोँ डराने हौ ।

[८] नीके०-नीक हूँ लगावत हैं (नवल०) । की न-कहा (नवल०) ।

[१०] प्रीति-प्रेम (रस०) ।

वेतौ हैं बिकानी हाथ मेरे हौं तिहारे हाथ,
तुम ब्रजनाथ हाथ कौन के बिकाने हौ ? ॥१३॥

अथ धृष्ट-लक्षणा-(दोहा)

लाज न गारिहु मार की छाँड़ि दई सब त्रास ।
देख्यौ दोष न मानही धृष्ट सु कहियै तास ॥१४॥

अथ प्रच्छन्न-धृष्ट, यथा-(सबैया)

नेह भरे लै लै भाजत भाजन कौन गनै दधि दूध मठाए ।
गारि दिये तैं हँसै वरजै घर आवत है जनु बोलि पठाए ।
लाज की और कहा कहौ 'केसव' जे सुनियै ते सबै गुन ठाए ।
मामी पियै इनकी मेरि माइ को हँ हरि आठहुँ गाँठ अठाए ॥१५॥

अथ प्रकाश-धृष्ट, लक्षणा-(दोहा)

मनसा बाचा कर्मना विहसनि चितवनि लेखि ।
चलनि चातुरो आतुरो, आठौँ गाँठि बिसेधि ॥१६॥

अथ प्रकाश-धृष्ट, यथा-(सबैया)

सौँह को सोचु सकोचुन पाँच को डोलत साहु भए करि चोरी ।
बैननि बंचकताई रची रति नैनन के संग डोलति डोरी ।
लाज करै न डरै हित-हानि तैं आनि अरे जिय जानि कै भारी ।
नाहिनै 'केसव' साख जिन्है बकि कै तिन सौँ दुखवै मुख कोरी ॥१७॥

(दोहा)

बरने कवि-नायक सबै, नायक इहिँ अनुसार ।
सब-गुन-नायक नायिका सुनि अब बहुत प्रकार ॥१८॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारहृद्रजितविरचितायां रसिकप्रियायां चतुर्विधनायकप्रच्छन्नप्रकाश-
वर्णनं नाम द्वितीयः प्रभावः ॥२॥

[१४] कहियै-केशवदास (बाल०, नवल०) । मामी-मीमी (रस०) ।

[१६] कै तिन-ऐसि न (बाल० खं) । [१७] बाल० में नहीं है ।

३

अथ नायिका-जाति-वर्णन-(दोहा)

प्रथम पद्मिनी चित्रनी, जुवती जाति प्रमान ।
बहुरि संखनी हस्तिनी 'केसवदास' बखान ॥ १ ॥

अथ पद्मिनी-लक्षण- (दोहा)

सहज सुगंध सरूप सुभ, पुन्य प्रेम सुखदानि ।
तनु तनु भोजन रोष रति, निद्रा मान बखानि ॥ २ ॥
सलज सुबुद्धि उदार मृदु हास बास सुचि अंग ।
अमल अलोम अनंग भुव पदमिनि हाटक-रंग ॥ ३ ॥

पद्मिनी, यथा--(कवित्त)

हँसत कहत बात फूल से भरत जात,
गूढ़ भूरि हाव भाव कोक की सी कारिका ।
पन्नगी नगी-कुमारि आसुरी सुरी निहारि,
डारों वारि किररी नरी गँवारि नारिका ।
ता पै हों कहा है जाऊँ बालि जाऊँ 'केसोदास',
रची बिधि एक ब्रजलोचन की तारिका ।
भौर से भँवत अभिलाष लाख भाँति दिव्य,
चंपे की सी कर्ली वृषभान की कुमारिका ॥ ४ ॥

अथ चित्रिणी लक्षण-(दोहा)

नृत्य गीत कविता रुचै, अचल चित्त चल दृष्टि ।
बहिरति रति अति सुरत-जल मुख सुगंध की सृष्टि ॥ ५ ॥
बिरल लोम तन मदन-गृह, भावत सकल सुबास ।
मित्र-चित्र-प्रिय चित्रनी, जानहु 'केसवदास' ॥ ६ ॥

चित्रिणी, यथा-(सवैया)

बोलिबो बोलनि को सुनिबो अवलोकनि कै अवलोकनि जो ते ।
नाचिबो गाइबो बीन बजाइबो रीभि रिभाइ को जानति तो ते ॥
राग बिरागनि के परिरंभन हास-बिलासनि तैं रति कोते ।
तौ मिलतौ हरि मित्रहिं कौं सखि ! ऐसे चरित्र जौ चित्र मँ होते ॥ ७ ॥

[१] केसवदास-केसवराइ (बाल०, रस०) । [२] बखान-सुजान (बाल०) ।

[३] सलज-सहज (बाल० खं०) । [४] भँवत-भ्रमत (रस०) ।

[५] बहिरति-बिहरत (बाल०) । मुख-मधु (बाल०, रस०) ।

अथ शंखिनी लक्षण—(दोहा)

कोपसील कोविद-कपट, सलज सलोम-सरीर ।
असन-बसन नखदान-रुचि, निलज निसंक अधीर ॥ ८ ॥
छार-गंधजुत मार-जल, तप्त भूरि भग होइ ।
सुरतारति अति संखनी, बरनत हूँ सब कोइ ॥ ९ ॥

शंखिनी, यथा—(सवैया)

जातु नहीं कदली की गलीनि भली विधि लै बदरी मुँह लावै ।
चाई न चंपकली की थली मलिनी नलिनी की दिसा नहिं धावै ।
जो कोउ 'केसव' नाग-लवंगलता-लवली-अवलीनि चरावै ।
खारक दाख खवाइ मरौ कोउ ऊँटहिं ऊँट-कटारोई भावै ॥ १० ॥

अथ हस्तिनी लक्षण—(दोहा)

थूल अंगुरी चरन मुख अधर भृकुटि कटि बोल ।
मदन-सदन रद कंधरा मंद चालि चित लोल ॥ ११ ॥
स्वेद मदन-जल द्विरद-मद-गंधित भूरे केस ।
अति तीछन बहु लोम तन, भनि हस्तिनि इभ-भेस ॥ १२ ॥

हस्तिनी, यथा—(सवैया)

सब देह भई दुरगंधमई मति अंध दई सुख पावत कैसे ।
कट्टु साल तैं लोम बिसाल सेहें श्रुति ताड़न 'केसव' बोल अनैसे ।
अलि ज्यों मलिनी नलिनी तजि कै करेनी के कपोलनि मंडित तैसे ।
छिति छोटि कै राजसिरी बस-याप निरै-पद राज बिराजत जैसे ॥ १३ ॥

(दोहा)

ता नायक की नायिका, ग्रंथनि तीन प्रमान ।
स्वीया परकीया अवर, स्वीया परकीया न ॥ १४ ॥

अथ स्वकीया-लक्षण—(दोहा)

सँपति बिपति जो मरत हू, सदा एक अनुहारि ।
ताहि सुकीया जानियै, मन-क्रम-वचन बिचारि ॥ १५ ॥

स्वकीया-भेद—(दोहा)

मुग्धा मध्या प्रौढ़ गति, तिनकी तीनि बिचारि ।
एक एक की जानियहु, चारि चारि अनुहारि ॥ १६ ॥

[१०] लै—हो (नवल०) । दिसा०—दिसानि सिधावै (नवल०) । ऊँट०—ऊँट
कटेरोई (रस०) ।

[११] कटि—कट्टु (नवल०) ।

मुग्धा-भेद-(दोहा)

नवलबधू नवयौवना, नवलअनंगा नाम ।
 लज्जा लियेँ जु रति करै, लज्जाप्राय सु बाम ॥१५॥
 तासों मुग्धा नवबधू, कहै सयाने लोइ ।
 दिन दिन दुति दनी बदै, बरनि कहै कबि कोइ ॥१६॥

यथा-(सवैया)

मोहिबो मोहन की गति कों गति ही पढ़ी बैन कहा धौं पढ़ेगी ।
 ओप उरोजनि की उपजें दिन काहि मदै अँगिया न मढ़ेगी ।
 नैननि की गति गूढ़ चलाचल 'केसवदास' अकास चढ़ेगी ।
 माई कहाँ यह माइगी दीपति जौ दिन द्वै इहि भाँति बढ़ेगी ॥१६॥

अथ नवयौवना-भूषिता-मुग्धा-लक्षण-(दोहा)

सो नवजोबनभूषिता मुग्धा को यह बेस ।
 बाल-दसा निकसै जहाँ जोबन को परबेस ॥१७॥

यथा-(सवैया)

'केसव' फूलि नची भृकुटी कटि लूटि नितंब लई बहु काली ।
 बननि सोच सँकोच सु नैननि छूटि गई गति की चल चाली ।
 दोसक धीर धरौ न धरौ अब लै तुम कों मिलिबो बनमाली ।
 बाको अयान निकारन कों उर आए हैं जोबन के अबिताली ॥१७॥

अथ नवलअनंगा-मुग्धा-लक्षण-(दोहा)

नवलअनंगा होइ सो, मुग्धा 'केसवदास' ।
 खेलै बोलै बाल-बिधि, हँसै त्रसै सबिलास ॥१८॥

यथा-(कवित्त)

चंचल न हूँ नथ, अंचल न ऐँचौ हाथ,
 सोवै नेक सारिकाहू सुक तो सुवायो जू ।
 मंद करौ दीप-दुति चंद-मुख देखियत,
 दौरि कै दुराइ आऊँ द्वारि त्यों दिखायो जू ।
 मृगज-मराल-बाल बाहिरै बिहारि देहुँ,
 भायौ तुम्है 'केसव' सु मोहू मन भायो जू ।

[१८] तासों-जासों (नवल०) । कोइ-सोइ (नवल०) ।

[१९] नची-नचै (नवल०) । मिलिबो-मिलऊँ (बाल० खं०), मिलिबै (नवल०) ।

[२१] इसके बाद निम्नलिखित छंद 'बाल० खं०' तथा 'रस०' में अधिक हैं—

छल के निवास ऐसे बचन-बिलास सुनि,
चौगुनो सुरति हूँ तें स्थाम सुख पायो जू ॥२३॥

अथ लज्जाप्राया रतिमुग्धा-लक्षण- (दोहा)

मुग्धा लज्जाप्राय-रति, बरनत कवि इहिं रीति ।
करै जुरति अति लाज सौं पतिहिं बढावति प्रीति ॥२४॥

यथा- (सवैया)

बोली न हों वे बुलाइ रहे हरि पाइ परे अरु ओलियौ ओड़ी ।
'केसव' भेटिवे कौं भरि अंक छुड़ाइ रहे जक हौं नहिं छोड़ी ।
सूधें चितैवे कौं केतो कियो सिर चाँपि उठाइ अँगूठनि ठोड़ी ।
मैं भरि चित तऊ चितयो न रही गड़ि नैननि लाज निगोड़ी ॥२५॥

मुग्धाशयन-लक्षण- (दोहा)

मुग्धा सोइ रहै नहीं पिय-सँग सुनहु सुजान ।
जो क्यों हूँ सोवै सखी ! सुख नहिं ताहि समान ॥ २६ ॥

यथा- (सवैया)

पाइ परे मनुहारि किये पलिका पर पाइ धरे भय-भीने ।
सोइ गई कहि 'केसव' कैसहुँ कोरहि कोरि कौहनि कीने ।
साहस कै मुख सौं मुख छूवै छिन में हरि मानि सबै सुख लीने ।
एक उसासहिं के उससे सिगरेई सुगंध बिदा करि दीने ॥ २७ ॥

धनु-भ्रू धरि लोचन लोलत मेल सु कांड कटाछ की कोर कढ़ी ।
मुख माधुरी बानी बसी चतुराई सु 'केसव' मोहन तासु पढ़ी ।
कुच तंबू तनें तन लाज विराजति बार गहै चहुँ ओर मढ़ी ।
न बढ़ी दुति बालहिं बालकता हति अंग अनंग की फौज चढ़ी ॥

मुकता मनिनि की है मुकति-पुरी सी नाक
दाखो दंत दाननि कौं हँसति बतीसी है ।

मोहन के मंत्रनि के अपरानि की सी रेख
भृकुटी सुषे भवभेद छवि छी सी है ।

चित चतुराई उभकी सी उभके से उर
कुच सकुचौ तो नयननि उभकी सी है ।

'केसोदास' रूप की सी साला प्रेम की सी माला

आजु लौं न देखी सुनी जैसी आजु दीसी है ॥

[२३] ल्यो-तौ (नवल०) । [२५] हौं नहिं-मैं पै न (बाल०, रस०) ।

गड़ि-गाहि (बाल०) । [२७] किये-करै (बाल०, नवल०) । कोरहि-
कोर करोहूँ (नवल०) । सवै-महा (नवल०) ।

मुग्धा को सुरत-लक्षण—(दोहा)

मुग्धा सुरत करै नहीं, सपनेहूँ सुख मानि ।
झल बल कीने होती है, सुख-सोभा की हानि ॥ २८ ॥

यथा—(कवित्त)

सुखदै सखीनि बीच दै कै सौँ हँ छाड़ कै,
खवाइ कछु स्वाइ बस कीनी बरबसु है ।
कोमल मृनालिका सी मल्लिका की मालिका सी,
बालिका जु डारी मीढ़ि मानुसु कि पसु है ।
जानै न बिभात भयो 'केसव' सुनै को बात,
देखौ आनि गात जात भयो किधौँ असु है ।
चित्र सी जु राखी वह चित्रनी विचित्र यह,
देखौ धौँ नए रसिक या में कौन रसु है ॥ २९ ॥

मुग्धा को मानु—(दोहा)

मुग्धा मान करै नहीं, करै तो सुनहु सुजान ।
त्यौँ डरपाइ छुड़ाइये ज्यौँ डरपै अज्ञान ॥ ३० ॥

यथा—(मयैया)

बोलै न बाल बुलावतहूँ नख-रेख लिखै भुव प्रेम परेखौ ।
आपनो हाथ बिलोकि बिलोकि कही तव 'केसव' बुद्धि बिसेखौ ।
छोटी बड़ी बिधि-रेख लिखी जुग आयु की रेख सु कौन जु लेखौ ।
प्रेम तैं बोल सह्यो न पछो अकुलाइ कह्यो पिय कैसी है देखौ ॥ ३१ ॥

अथ मध्या के चतुर्भेद—(दोहा)

मध्या आरुढ़जोबना, प्रगलभबचना जानि ।
प्रादुर्भूत-मनोभवा, सुरति-बिचित्रा आनि ॥ ३२ ॥

अथ मध्या-आरुढ़योवना-लक्षण—(दोहा)

मध्या-आरुढ़जोबना पूरन जोबनबंत ।
भाग सुहाग भरी सदा, भावति है मन-कंत ॥ ३३ ॥

यथा—(कवित्त)

चंद को सो भाग भाल भृकुटी कमान ऐसी,
मैन कैसे पैन सर नैननि बिलासु है ।

[२८] सुख-सिख (बाल०) ।

[२९] वह-अति (बाल० खं०); गति (नवल०) । देखौ-कहि (बाल० खं०) ।

[३०] सुजान-निदान (बाल०) । त्यौँ-यौँ (रस०, बाल० खं०); ज्यौँ (बाल०) ।

नासिका सरोज, गंधबाह से सुगंध बाह,
 दाखों से दसन 'केसो' बीजुरी सो हासु है ।
 भाँई' ऐसी प्रीति-भुज, पान सो उदर अरु,
 पंकज से पाइ गति हंस की सी जासु है ।
 देखी है गुपाल एक गोपिका मैं देवता सी,
 सोने सो सरीर सब सोँधे को सो बासु है ॥३४॥

अथ प्रगल्भवचना-मध्या-लक्षण-(दोहा)

प्रगल्भवचना जानि तिहिं, बरनौं 'केसवदास' ।

बचननि माँझ उराहनो, देइ दिखावै त्रास ॥३५॥

यथा-(सवैया)

कान्ह भलें जु भलें ढंग लागे भलें इन्ह नैननि के रँग रागे ।
 जानति हौं सबही तुम जानत आपु से 'केसव' लालच लागे ।
 जाहु नहीं अहो जाहु चले हरि जात जितै दिनहीं बनि बागे ।
 देखि कहा रहे धोखें परे उबटोगे जू देखौं सब देखहु आगे ॥३६॥

अथ प्रादुर्भूतमनोभवा-मध्या-लक्षण-(दोहा)

प्रादुर्भूतमनोभवा मध्या कहौं वखानि ।

तन मन भूषित सोभियै 'केसव' काम-कलानि ॥ ३७ ॥

यथा-(सवैया)

आजु मैं देखी है गोप सुता इक, होइ न ऐसी अहीर की जाई ।
 देखत हीं रहियै दुःख देह की देखे तैं और न देखी सुहाई ।
 एक हीं बंक बिलोकनि ऊपर वारैं बिलोकि त्रिलोक-निकाई ।
 'केसवदास' कलानिधि सो बर बूझियै काम कि मेरो कन्हाई ॥ ३८ ॥

अथ सुरतविचित्रा-मध्या-लक्षण-(दोहा)

अति विचित्रसुरता सु तौ जाको सुरत विचित्र ।

बरनत कवि-कुल कौं कठिन, सुनत सुहावै मित्र ॥ ३९ ॥

यथा-(कवित्त)

'केसोदास' सखिलास मंदहास जुत,

अबिलोकनि अलापनि को आनंद अपार है ।

बहिरति सात पुनि अंतरति सात, पुनि

रति बिपरीतनि को बिबिध बिचार है ।

[३४] ऐसी-की सी (बाल० खं०) ।

[३६] इन्ह-हैहै (बाल०); है है (रस०) । जितै-जहीँ (नवल०) ।
 दिन-नित (बाल० खं०) । उबटोगे-उमिट किये देखिवे (बाल० खं०) ।

[३८] बूझियै-बुझिहै (नवल०) ।

छूटि जात लाज तहाँ भूषन सुदेस केस,
 दूटि जात हार सब मिटत सिंगार है ।
 कूजि कूजि उठै रति कूजितनि सुनि खग,
 सोई तौ सुरत सखी और बिबहार है ॥४०॥

अथ सात बहिरति-वर्णन-(दोहा)

अलिंगन, चुंबन, परस, मर्दन नख-रद-दान ।
 अधर-पान सौं जानियै बहिरति सात मुजान ॥४१॥

अथ सात अंतरति-वर्णन-(दोहा)

थिति, तिर्यक, सनमुख, बिमुख, अध, ऊरध, उत्तान ।
 सात अंतरति समुझियै 'केसवराई' मुजान ॥४२॥

अथ षोडश-शृंगार-वर्णन-(कवित)

प्रथम सकल सुचि मंजन अमल बास,
 जावक सुदेस केस-पास को सुधारिबो ।
 अंगराग भूषन बिबिध मुख-बास-राग,
 कज्जल-कलित लोल लोचन निहारिबो ।
 बोलनि हँसनि मृदु चातुरी चितौनि चारु,
 पल पल प्रति पतिव्रत प्रतिवारिबो ।
 'केसोदास' सबिलास करहु छुँवरि राधे,
 इहिँ विधि सोरह सिंगारनि सिंगारिबो ॥४३॥

अथ सुरतांत-(सवैया)

सुंदरता पय पावक जावक पीक हियेँ नख-चंद नए हँ ।
 चंदन चित्र सुधा, बिष अंजन, दूटि सवै मनिहार गए हँ ।
 'केसव' नैननि नाँदमई मदिरा-मद घूमत मोहमए हँ ।
 केलि कै नागर-नागरी प्रात उजागर सागर-भेष भए हँ ॥४४॥

अथ मध्याधीरादि-भेद-लक्षण-(दोहा)

सिगरी मध्या तीन बिधि धीरा और अधीर ।
 धीराधीरा तीसरी, बरनत हँ कबि धीर ॥४५॥

[४०] पुनि-भाँति (बाल० खं०); सुभ (बाल) । सात-पाँच (बाल० खं०) । पुनि-
 सुन (नवल०) । तहाँ-जहाँ (बाल खं०, रस०) ।

[४१] जानियै-समझिए (बाल०) ।

[४२] उत्तान-उमान (बाल० खं०) । समुझियै-जानिए (बाल०) ।

धीरा बोलै बक्र बिधि, बानी बिषम अधीर ।
पिय सों देख उराहनो सो धीरा न अधीर ॥४६॥

अथ मध्याधीरा, यथा—(सवैया)

ज्यों ज्यों हुलास सों 'केसवदास' बिलास निवास हियँ अवरेख्यो ।
त्यों त्यों बढ़यो उर कंप कछु भ्रम भ्राँति भयो किधौँ सीत बिसेख्यो ।
मुद्रित होत सखी बरहीं मेरे नैन-सरोजनि साँचु कै लेख्यो ।
तैं जु कह्यो मुख मोहन को अरबिंद सो है सु तो चंद सो देख्यो ॥४७॥

अथ मध्या अधीरा, यथा—(कवित्त)

तात को सो गात सब बल बलबीर को सो,
मात को सो मुख महा मोह मन भायो है ।
थल सो अचल सील अनल सो चल चित्त,
जल से अमल तेज तेज को सो गायो है ।
'केसोदास' बसत अकास के प्रकास घोष,
घट घट घर घर घैरु घनो छायो है ।
रति की सी रति नाथ रूप रतिनाथ को सो,
कहौ केसोराइ भूठ कौन यह पायो है ॥४८॥

अथ मध्या धीराधीरा, यथा—(सवैया)

कान्ह भलें जु भलें समुझाइहौँ मोह समुद्र को ज्यों उमड़्यो हो ।
'केसव' आपनो मानिक सो मन हाथ पराएँ दै कौन लह्यो हो ।
नैननि ही मिलिबो करियै अब बैननि को मिलियो तौ रह्यो हो ।
जाइ कह्यो तुम जैसेँ सखीनि सों एहो गुपाल में ऐसेँ कह्यो हो ॥४९॥

अथ प्रौढ़ा-भेद चतुर्विध—(दोहा)

मुनि समस्त-रस-कोविदा, चित्र-बिभ्रमा जाति ।
अति आक्रामित नायका लुब्धापति सुभ भाँति ॥५०॥

अथ समस्तरसकोविदा-लक्षण—(दोहा)

सो समस्तरसकोविदा, कोविद कहत बखानि ।
जो रस भावै प्रीतमहि ताही रस की दानि ॥५१॥

[४६] अधीर—अमीर (नवल०) ।

[४७] बढ़यो—भयो (बाल० खं०) । भ्राँति—भीतु (बाल०, नवल०) ।

[४८] अब—सब (नवल०) ।

[५०] लुब्धापति—लब्धापति (बाल०) ।

यथा—(कवित)

देखी है गुपाल एक गोपिका में देवता सी
 सोने तें सलोनी बास सोंधे तें सुहाई है ।
 सोभा ही सुभाउ अवतार लियो घनस्याम
 किधौ यह दामिनीयै कामिनी है आई है ।
 देवी कोउ मानवी न दानवी न होइ ऐसी
 भानवी न हाव-भाव भारती पढ़ाई है ।
 'केसोदास' सब सुख साधन की सिद्धि यह
 मेरे जान मैं हूँ सों मेनका की जाई है ॥५२॥

अथ विचित्रविभ्रमा प्रौढ़ा-लक्षण—(दोहा)

अति विचित्रविभ्रम सु वह प्रौढ़ा कहत बखानि ।
 जाकी दीपति दूतिका पियहि मिलावै आनि ॥५३॥
 यथा—(सवैया)

है गति मंद मनोहर 'केसव' आनंदकंद हियें उलहे हैं ।
 भौंह बिलासनि कोमल हासनि अंग सुवासनि गाढ़े गहे हैं ।
 बंक बिलोकनि को अवलोकि सुमार है नंदकुमार रहे हैं ।
 पई तौ काम के बान कहावत फूलनि के विधि भूलि कहे हैं ॥५४॥

अथ आक्रामित नायिका प्रौढ़ा-लक्षण—(दोहा)

सो आक्रामित नायिका प्रौढ़ा कहि दै चित्त ।
 मनसा बाचा कर्मना जिनि बस कोनो मित्त ॥५५॥

यथा—(सवैया)

तो हित गाइ बजावत नाचत बार अनेक सिंगार बनायो ।
 जी हू में आन को आनिषो छाड़ियो री तौऊ न तेरो भयो मनभायो ।
 भावै सु तूँ करिबो करि भामिनि भागु बड़े बस तँ करि पायो ।
 कान्ह त्यों सूधे जु चाहति नाहि सु चाहति है अब पाइ लगायो ॥५६॥

लुब्धापति प्रौढ़ा-लक्षण—(दोहा)

सो लुब्धापति जानियै, 'केसव' प्रगट प्रमान ।
 कानि करै पति कुल सबै प्रभुता प्रभुहि समान ॥५७॥

[५२] देवता सी—अनूप रूप (बाल; नवल०) ।

[५४] उलहे—उमहे (नवल०)

[५५] कहि दै—करिबे (नवल०) । जिनि—जिहि (बाल०) ।

[५६] छाड़ियो री—छाड़ियो (नवल०) । तें करि—चौकड़ि (नवल०),
 हे करि (बाल०) ।

यथा—(सवैया)

आजु बिराजत हैं कहि 'केसव' श्रीवृषभानु-कुमारि कन्हाई ।
बानी बिरंचि बहिक्रम काम रची जु बची सु बधूनि बनाई ।
अंग बिलोकि त्रिलोक में ऐसी को नारि नहीं जिन नारि नवाई ।
मूरतिवन्ति सिंगारि समीप-सिंगार किये जनु सुंदरताई ॥५८॥

अथ प्रौढ़ा धीरा-लक्षण—(दोहा)

आदर माँफ अनादरै, प्रकट करे हित होइ ।
आकृति आप दुरावई, प्रौढ़ा धीरा दोइ ॥५९॥

प्रौढ़ा सादरा धीरा, यथा—(सवैया)

आवत देखि लिये उठि आगे हैं, आपुहीं 'केसव' आसन दीनो ।
आपुहीं पाइ पखारि भलें जल, पानी को भाजन लाइ नवीनो ।
बीरी बनाइ कै आगे धरी, जब बैहर को कर बीजना लीनो ।
बाँह गही हरि ऐसे कह्यो हँसि, मैं तो इतो अपराध न कीनो ॥६०॥

अथ आकृतिगुण प्रौढ़ा धीरा, यथा—(सवैया)

चितबौ चितवाँएँ हँसाँएँ हँसौ हो, बुलाएँ तेँ बोलौ रहो ननु मौनेँ ।
सौँह अनंकनि आवहु अंक, करौ रति कोँ प्रति रैन की रौनेँ ।
खाएँ तेँ खाहु बखाइ बिरी, जनु आई हो 'केसव' आजु ही गौनेँ ।
मोहन के मन मोहन कोँ, सु कहौ यह धौँ सिखई सिख कौनेँ ॥६१॥

पुनर्यथा—(सवैया)

हित कै इत देखहु, देख्यो सबै, हित बात सुनौ, जु सुनी सबहीं हँ ।
यह तो कहु और, वहै सब हीँ अरु, सौँह करौड करी जु तहीं हँ ।
समुझाइ कहौ, समुझौँ सब 'केसव' भूठीँ सबै हम सोँ जु कहीं हँ ।
मान कियो, अपमान करौ, तो हँसौँ अब के, हँसिबे कोँ रहौँ हँ ॥६२॥

अथ प्रौढ़ा अधीरा-लक्षण—(दोहा)

पति को अति अपराध गनि हतन कहै हित मानि ।
कहत अधीरा प्रौढ़ तिहि 'केसवदास' बखानि ॥६३॥

यथा—(सवैया)

हौँ सुख पाइ सिखाइ रही सिख सीखे न ये सखि तेँ हूँ सिखाई ।
मैं बहुते दुख पाइहूँ देख्यो पै 'केसव' क्यों हूँ कुटेव न जाई ।

[५८] बची-बरी (नवल०) ।

[६०] जब बैहर-जबै हरि (नवल०) । अपराध न-अवराधन (नवल०) ।

[६१] बखाइ-औ बिरी (नवल०) । सु कहौ-तोहि नहीं (नवल०) ।

[६२] सबहीं-निबहीं (नवल०) । अरु-अब (बाल० खं०) ।

दंड दियेँ बिनु साधुनि हूँ सँग छूटत क्यों खल की खलताई ।
देखहु दै मधु की पुट कोटि मिटै न घटै बिष की बिषमाई ॥६४॥

अथ प्रौढ़ा धीराधीरा-लक्षण-(दोहा)

मुख रखी बातें कहै जिय में पिय की भूख ।
धीराधीरा जानियै जैसी माँठी ऊख ॥६५॥

यथा-(सवैया)

हो मन मैलो न जौलौँ कछु अब छाड़हु बोलिबो बोल हूँ सौँहै ।
'केसव' औरनि सौँ रसरास रस्यो रसवाद सबै हम सौँ हूँ ।
देखहु धौँ इक बार सकोचन आरस-लोचन आरसी-सौँहै ।
आए जू वैसेइ साज सौँ आजु सु भूलि गई पिय कालिह की सौँहै ॥६६॥

इति स्वकीया ।

अथ परकीया-लक्षण-(दोहा)

सब तैं पर परसिद्ध जग ताकी प्रिया जु होइ ।
परकीया तासौँ कहै परम पुराने लोइ ॥६७॥

अथ परकीया-भेद-(दोहा)

परकीया द्वै भाँति पुनि उढ़ा एक अनूढ़ ।
जिन्हें देखि सुनि होत बस संतत मूढ़ अमूढ़ ॥६८॥

अथ उढ़ा-अनूढ़ा-लक्षण-(दोहा)

उढ़ा होइ विवाहिता अविवाहिता अनूढ़ ।
तिनके कहौँ बिलास सब 'केसव' गूढ़ अगूढ़ ॥६९॥

उढ़ा, यथा-(सवैया)

बैठी सखीनि की सोभै सभा सब ही के सु नैननि माँझ बसै ।
ब्रूझत बात बखाइ कहै मन ही मन 'केसवराइ' हँसै ।
खेलति है इत खेल उतै पिय चित्त खिलावति यौँ बिलसै ।
कोऊ जानै नहीं दग दौरि कबै कित है हरि-आनन छवै निकसै ॥७०॥

अनूढ़ा, यथा-(सवैया)

बैठी हुती ब्रजनारिन में बनि श्रीवृषभानु-कुमारि सभागी ।
खेलति ही सखी चौपरि चारि भई तिहिं खेल खरी अनुरागी ।
पीछे तैं 'केसव' बोलि उठे सुनि कै चित चातुरी आतुरी जागी ।
जानी न काहू कबै हरि के मुर-भारगहीं सर सी दग लागी ॥७१॥

[६४] पाइ-खाइ (नवल०) । [६६] जौलौँ-जोलौँ (नवल०) ।

[७१] भारगहीं-भार गही (बाल०) ।

(दोहा)

काहू सोँ न कहै कछू बात अनूढ़ा गूढ़ ।
सखी सहेली सोँ कहै ऊढ़ा गूढ़ अगूढ़ ॥७२॥

ऊढ़ा-वचन, यथा-(सवैया)

केसवराइ की सौँहँ ककै कछू एकनि आपु में होइ परी ।
एक चितै मुसिकाइ इतै उत बात कहै बहु भाइ-भरी ।
चारु चकोर-बिलोचन-भा सो चहूँ दिसि तैं अँगुरी पसरी ।
सखि काल्हि गई हुती गोकुल होँ सबहीं मिलि द्वैज को चद करी ॥७३॥

(दोहा)

जग नायक की नायिका बरनी 'केसवदास' ।
तिनके दर्सन-रस कहौं सुनौ प्रछन्न प्रकास ॥७४॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
स्वकीयापरकीयादिभेदवर्णनं नाम तृतीयः प्रभावः ॥१॥

४

अथ दर्शन-लक्षण-(दोहा)

ये दोऊ दरसै दरस होहिं सकाम सरीर ।
दरसन चारि प्रकार को बरनत हैं कवि धीर ॥१॥
एक जु नीक देखियै दूजें दरसन चित्र ।
तीजें सपन देखियै चौथें श्रवननि मित्र ॥२॥

साक्षात् दर्शन, यथा-(दोहा)

नीद भूख दुति देह की गई सुनत हौं जाहि ।
को जानै हैहै कहा 'केसव' देखें ताहि ॥३॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न साक्षात् दर्शन, यथा-(सवैया)

कहि 'केसव' श्रीवृषभानु-कुमारि सिंगार सिंगारि सबै सरसै ।
सबिलास चितै हरि नायक त्यों रतिनायक सायक से बरसै ।
कबहूँ मुख देखते दर्पन लै उभा मुख की सुखमी सरसै ।
जनु आनंदकंद सँपूरन चंद दुखो रबिमंडल में दरसै ॥४॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश साक्षात् दर्शन, यथा—(सवैया)

पहिलें तजि आरस आरसी देखि घरीकु घसे घनसारहि लै ।
पुनि पोंछि गुलावति लौं छि फुलेल अँगौछे में आछे अँगौछनि कै ।
कहि 'केसव' मेद जुवाद सों माँजि इते पर आँजि में अंजन दै ।
बहुख्यौ दुरि देखौं तौ देखौं कहा सखि लाज तौ लोचन लागिग्यै है ॥५॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न साक्षात् दर्शन, यथा—(सवैया)

भाल गुही गुन लाल लटै लपटीं लर मोतिन की सुखदैनी ।
ताहि बिलोकति आरसी लै कर आरस सों इक सारसनैनी ।
'केसव' कान्ह दुरे दरसी परसी उपमा मति की अति पैनी ।
सूरजमंडल में ससिमंडल मध्य घसी जनु जाइ त्रिवैनी ॥६॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश साक्षात् दर्शन, यथा—(सवैया)

इक तौ उर और उरोज अनूपम तैसो मनोहर हार महा री ।
सखि चित्त चलै तरुनीनिहूँ को तरुनै की 'केसव' बात कहा री ।
हितु सों हित की कहि आवति है पर कौ लगि होंवँ री कौतुकहारी ।
अब अंचल दै, नँदलाल बिलोकत री दधि नोखी बिलोवनहारी ॥७॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न चित्र-दर्शन, यथा—(सवैया)

लोचन ऐंवि लिये इत कौं मन की गति जद्यपि नेह-नही है ।
आनन आइ गए श्रम-सीकर रोम उठे तन कंप लही है ।
तासों कहा कहियै कहि 'केसव' लाज-समुद्र में बूढ़ि रही है ।
चित्रहु में हरि-मित्रहि देखत यों सकुची जनु बाँह गही है ॥८॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश चित्र-दर्शन, यथा—(कवित्त)

'केसोदास' नेह दसा-दीपक सँजोइ कैसैं,
ज्योति ही के ध्यान तम-तेजहि नसायहै ।
आँखिन सों बाँधें अन्न काहु की बुझानो भूख ?
पानी की कहानी रानी ! प्यास क्यों बुझायहै ।

[५] घरीकु—रङ्गुक (बाल० खं०) । जुवाद—जवादि (रस०) । बहुख्यौ—बहुख्यौ दुरि देखौं जौ देखौं तौ देखि री (बाल०); बहुख्यौ फिरि देखि जौ देख्यौ है तो देखि री (बाल० खं०) ।

[६] मति की—मति ते (बाल० खं०) । जनु ताहि—मनु ताहि (रस०) ।

[७] कहि—कहि ही परि आवति (बाल०, बाल० खं०) । होंवँ री—होहुँ री (बाल०, बाल० खं०) ।

[८] गति—मति (बाल० खं०) । तन —अति कंपत ही है (बाल० खं०) ।

परी मेरी इंदुमुखी ! इंदीवर-नैनी लिखें
 इंदिरा के मंदिर में संपति सिधायहै ।
 ऐसे दिन ऐसे हैं गंवावति गँवारि कहा,
 चित्र देखें मित्र के मिले को सुख पायहै ? ॥६॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न चित्र-दर्शन, यथा—(कवित्त)

रूठिबे को तूठिबे को मृदु मुसिक्याय कै
 बिलोकिबे को भेद कछु कह्यो न परतु है ।
 'केसोदास' बोलें बिनु बोलनि के सुनें बिनु,
 हिलन मिलन बिनु मोहि क्यों सरतु है ।
 कौ लागि अलोनो रूप प्याय प्याय राखौ नैन,
 नोर देखें मीन कैसें धीरज धरतु है ।
 चित्रिनी बिचित्र चित्र नीकें हीं चितैयै मन,
 चित्र में चिताएँ चित्त चौगुनो जरतु है ॥१०॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश चित्र-दर्शन, यथा—(सबैया)

अंतरच्छ-गच्छनीनि मच्छनी सुलच्छनीनि,
 अच्छी अच्छी अच्छनीनि छवि छमनीय है ।
 किन्नरी नरी सुनारि पन्नगी नगी-कुमारि
 आसुरी सुरोनिहूँ निहारि नमनीय है ।
 भोगिन की भामिनी कि देह धरें दामिनी कि,
 काम हीं की कामनी कि ऐसी कमनीय है ।
 चित्रहू में चित्तहि चुरावति है 'केसोदास',
 राम की सी रमनी रमा सी रमनीय है ॥११॥

अथ स्वप्न-दर्शन, लक्षण—(दोहा)

'केसव' दर्सन स्वप्न को, सदा दुखोई होय ।
 कबहुँ प्रगट न जानियै यह जानै सब कोय ॥१२॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न स्वप्न-दर्शन, यथा—(सबैया)

आतुर है उठि दौरी अलो, जन आतुर ज्यों गहियै सु गही त्यों ।
 हो मेरी रानी कहा भयो तो कहूँ बूझति 'केसव' बूझियै रो ज्यों ।
 डोठि लगी किधौँ प्रेत लग्यो कि लग्यो उर प्रीतम जाहि बरी यों ।
 आनन साँकर सी कहियै धक सोवत तें अकुलाइ उठी क्यों ॥१३॥

[६] बुझानी—न भागी (नवल०) । क्यों—कैसे कै (बाल० खं०) । मंदिर में—मंदिर
 क्यों (नवल०) । सिधायहै—समाहै (बाल० खं०) । देखें—बिना (नवल०) ।

[१२] जानियै—देखिये (नवल०) ।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न स्वप्न-दर्शन, यथा—(कवित)

नख-पद-पदवी को पावै पद द्रौपदी न,
 एकौ बिसौ उरबसो उर में न आनिबी ।
 लोम सी पुलोमजा न तिल सी तिलोत्तमा न,
 मैलहू समान मन मेनका न मानिबी ।
 जानियै न कौन जाति अबहीं जगाएँ जाति,
 जीवन तो जानिहौँ जौ ताहि पहिचानिबी ।
 बातक सी बानी माँहि भाव-सो भवानी माँहि,
 'केसोदास' रति में रतीक ज्योति जानिबी ॥१४॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न श्रवण-दर्शन, यथा—(सवैया)

सौँह दिवाय दिवाय सखी इक बारक काननि आनि बसाए ।
 जानै को 'केसव' काननि तें कित है कब नैननि माँझ सिधाए ।
 लाज के साज धरेई रहे सब नैननि लै मनहीं सों मिलाए ।
 कैसी करौँ अब क्यों निकसै री हंरई हंर हिय में हरि आए ॥१५॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश श्रवण-दर्शन, यथा—(कवित)

कौ लोँ पीहौ कान-रस, रूप की बुझैहै प्यास ?
 'केसोदास' कैसेँ न नयन भरि पोजियै ।
 बीर की सौँ मेरी बीर वारी है तू वारौँ आनि,
 नैंक किन हसहि बलाय तेरी लीजियै ।
 वरसक माँहि यह बेस अलबेली बीतै,
 दैहौ सुख सखिन क्यों अबहीं न दीजियै ।
 परी लड़बावरी अहीरा ऐसा बूझै तोहिं
 नाँह सों सनेह काजै नाँह सों न कीजियै ॥१६॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न श्रवण-दर्शन, यथा—(कवित)

लंघतु है लोक लोक-लोक न उलंघी जात,
 सबही तू समुझावै तोहि समुझावै को ।
 छोड़न कहत तनु तनक न छूटै लाज,
 धन मीन राखि दोऊ कोबिद कहावै को ।
 सोच को संकोच हू को पूरव-पछिम पथ
 'केसोदास' एक काल एक जन धावै को ।
 दुख-सुख दूरी दुरादूरि हू तें मेरे मन
 जैसी सुनो तैसी तोहि आँखिन दिखावै को ॥१७॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश श्रवण-दर्शन, यथा-(कवित)
 निपट कपटहर प्रेम को प्रकटकर,
 बीस बिसे बसीकर कैसेँ उर आनियेँ ।
 काम को प्रहरषन कामना को बरषन
 कान्ह को सँकरषन सब जग जानियेँ ।
 किबौ 'केसोदास' महि मोहनी को भूषन है
 किधौँ ब्रजबालनि को दूषन बखानियेँ ।
 सुनत हीँ छूट्यो धाम बन बन डोलैँ रयाम,
 राधे तेरो नाम कि उचाट-मंत्र मानियेँ ॥१८॥
 (दोहा)

दरस रमन-रमनीनि के कहे परम रमनीय ।
 प्रगटन प्रेम-प्रभाव अब कहौँ कछु कमनीय ॥१९॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
 चतुर्विधदर्शनप्रच्छन्नप्रकाशवर्णनं नाम चतुर्थः प्रभावः ॥४॥

५

अथ दंपति-चेष्टा वर्णन-(दोहा)

तिनके चित की जानि सखि पिय सौँ कहै सुनाइ ।
 कहै सखी सौँ प्रीतमें आपुन तें अकुलाइ ॥१॥
 श्रीराधिकाजू की सखी को बचन कृष्ण प्रति-(सवैया)
 कालिह की ग्वालि तौ आज हूँ लौँ न सँभारति 'केसव' कैसेँ हूँ देहै ।
 सीरी है जाति, उठै कबहूँ जरि जीव रह्यो कै रही रुचि-रेहै ।
 कोरि बिचार बिचारति है उपचारनि के बरसेँ सखि मेहै ।
 कान्ह बुरौ जिन मानौ तिहारी बिलोकनि में बिस बीस बिसे है ॥२॥

श्रीकृष्णजू को वचन राधिका की सखी प्रति-(कवित)
 प्यास है रही उदास भागी भूख गहि त्रास,
 'केसोदास' नाँदहूँ की निंदा नित ठानी है ।
 मति को मतौ न लेय बिद्या की बिदाई देय,
 सोभा सूकी सेइ सेइ सब सुख सानी है ।
 बिष से लगत गीत केलि की न परतीत,
 प्रीत उर पाहुनी सी पवि पहिचानी है ।

तो बिन कहै को गाथ धीरता न ताके साथ,
मोहिं को मिलावै हाथ लाज के बिकानी है ॥३॥

अथ चेष्टा-लक्षण-(दोहा)

पिय सौं प्रगटन प्रीति कहँ जितने करै उपाइ ।
ते सब 'केसोदास' अब बरने सषनि सुनाइ ॥४॥
जब चितवै पिय अनत हीं, तब चितवै निहसंक ।
जानि बिलोकत आपु त्यों अलिहिं लगावै अंक ॥५॥
कबहुँ श्रुति कहुँ करै आरस सौं ऐँडाइ ।
'केसोदास' बिलास सौं बार बार जमुहाइ ॥६॥
भूठे हीं हँसि हँसि उठै कहै सखी सौं बात ।
ऐसेँ मिस हीं मिस प्रिया पियहि दिखावै गात ॥७॥
यों ही पीय प्रियानि प्रति प्रगटत अपनी प्रीति ।
सो प्रच्छन्न प्रकास करि बुधि-बल करत समीति ॥८॥

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न चेष्टा, यथा-(कवित)

चोरि चोरि चित चितवति मुँह मोरि मोरि
काहे तँ हँसति हियेँ हरष बढ़ायो है ।
'केसोदास' को सौँ तूँ जँभाति कहा बार बार
बीरो खाइ मेरी बीर आरस जौ आयो है ।
ऐँड़ सौँ ऐँड़ाति अति अंचल उड़ात उर
उघरि उघरि जात गात छबि छायो है ।
फूलि फूलि भँटति रहति उर भूलि भूलि
भूलि भूलि कहति कहुँ तँ आजु खायो है ॥९॥

श्रीराधिकाजू की प्रकाश चेष्टा, यथा-(कवित)

मेरो मुख चूमेँ तेरी पूरी साध चूमिबे की
चाटेँ ओस असु क्योँ सिरात प्यास-डाढ़े हैं ।
छोटे छोटे कर कहा छ्वावति छबीली छाती,
छ्वावौ जाके छ्वाइबे के अभिलाष बाढ़े हैं ।
खेलन जौ आई हो तौ खेलौ जैसेँ खेलियत
'केसोदास' की सौँ तँ ये कौन खेल काढ़े हैं ।
फूलि फूलि भँटति है मोहिं कहा मेरी भट्ट
भँटै किनि जाइ जे वे भँटिबे कौँ ठाढ़े हैं ॥१०॥

[३] धीरता०-धीरजता लैकै साथ (नवल०) ।

[६] बीरो खाइ-बिसिलाह (नवल०) ।

[१०] सिरात-सी रात (नवल०) । भँटै किनि जाइ-भँटत ना ताहि (बाल० खं०) ।

बार बार-बारि बारि (बाल०, रस०) ।

श्रीकृष्णजू की प्रच्छन्न चेष्टा, यथा—(कवित्त)

छोरि छोरि बाँधौ पाग आरस सोँ आरसी लै
अनत हीँ आन भौँति देखत अनैसे हौ ।
तोरि तोरि डारत तिनूका कहौ कौन पर,
कौन के परत पाइ बावरे ज्यों ऐसे हौ ।
कबहूँ चुटकि देति चटकि खुजावौ कान,
मटक ऐँड़ाज जुरी ज्यों जँभात तैसे हौ ।
बार बार कौन पर देत मनिमाला मोहि,
गावत कछू के कछू आज कान्ह कैसे हौ ॥११॥

श्रीकृष्णजू की प्रकाश चेष्टा, यथा—(सवैया)

जा लगि लाँच लुगाइनि दै दिन नाच नचावत साँझ पहाँ ऊँ ।
'केसव' मंत्र करौ बसकारक हारक जंत्र कहाँ लौँ गनाऊँ ।
हारि रहे हरि क्यों हूँ मिली न मिलाऊँ जो ताहि तौ माँगौँ सो पाऊँ ।
ठाढ़ी वै जाइ मिलौ मिलिये कहँ और कछू कनियाँ करि लाऊँ ॥१२॥

अथ स्वयंदूतत्व-लक्षण—(दोहा)

जौ क्यों हू न मिलेँ कहूँ 'केसव' दोऊ ईठ ।
तौ तब अपने आपहीं बुधिबल होत बसीठ ॥१३॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न स्वयंदूतत्व, यथा—(सवैया)

दूरि तेँ देखिबे कौँ है है दीन मनाई हुती लिखि ही लिखि चीठी ।
देखेँ मिथ्यो मनु हौँ हू मिली मिलि खेलिबे हूँ कौँ मिली मति मीठी ।
ऐसेँ में और चलाइहौ 'केसव' कैसेहुँ कान्ह-कुमार दै ढीठी ।
लागै न बार मृनाल के तार ज्यों दूटैगो लाल हमैँ तुम्हैँ ईठी ॥१४॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश स्वयंदूतत्व, यथा—(सवैया)

धाइ नहौँ घर, दाई परी जुर, आई खिलाई की आँखि बहाऊँ ।
पौरियै आवै रतौँधु इते पर ऊँचो सुनै सु महा दुख पाऊँ ।
कान्ह निबेरहु न्याउ नयो इनि आलिन कौ लगि हौँ बहराऊँ ।
ये सब मो सँग सोवन आवैँ कि हौँ इनके सँग सोवन जाऊँ ॥१५॥

[१४ । लागै—है है न बार मुराति केँ (रस०), मुरारि केँ (बाल०) ।

निम्नलिखित छंद 'बाल० खं०' और 'नवल०' की प्रतियों में और मिलता है—

छुवो जनि हाथ सोँ हाथ हिये पल ही पल बाढ़त प्रेमकला ।
न जानिये जी में कहा बसी जाइ चले फिर 'केसव' कौन चला ।
भले हि भले निबहौ बि भली इह देखिबे ही की हला हू भला ।
मिलै मन तौ मिलिबौई कहूँ मिलिबौ न अलौकिक नंदलला ॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न स्वयंदूतत्व, यथा—(कवित्त)
 आपने हौं भाइ के ये सोहत सरीक से, वे
 'केसोदास' दास ज्यों चलन चित लीने हैं ।
 आपु हौं अठाउ कै ये लेत नाउँ मेरो, वे तौ
 बापुरे मिलाप के सँलाप करि हीने हैं ।
 राधिकै सुनाइ कै कहत ऐसँ घनस्याम,
 सुबल को लै लै नाम काम-भय-भीने हैं ।
 साथ लै सखानि अब जँबो बन छाड़यो हम,
 खेलिबे कौँ संग सखा साखामृग कीने हैं ॥१६॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश स्वयंदूतत्व, यथा—(सवैया)
 बन जैयै चलो कोऊ ठाली है 'केसव' हौ तुम हँ तौ अरी अरिहौ ।
 कहु खेलियै खेलि न आवत आजु ही भूल्यो न भूल्यो गरँ परिहौ ।
 हितु है हिय में किधौं नाहिं तऊ हितु नाहि हिये तु लला लरिहौ ।
 हम साँ यह बूझियै ऐसा कहौअव कही हो कही सु कहा करिहौ ॥१७॥
 अन्यच्च, यथा—(कवित्त)

'केसोदास' घर घर नाचत फिरत गोप,
 एक परे छकि ते मरेई गुनियत हैं ।
 बारुनी के बस बलदाऊ भए सखा सब,
 संग लै को जैयै दुख सीस धुनियत हैं ।
 मोहिं तौ गएँ हौं वनै दाह दीपमाला पाइ,
 गाइनि सँवारिबे कौँ चित चुनियत हैं ।
 जौ न बसौँ लोलिनैन लेरुवा मरहिं सब,
 खरक खरेई आज सूने सुनियत है ॥१८॥
 (दोहा)

ऊढ़ा पुनि यहि भाँति करि बहु विधि हितनि जनाइ ।
 आपुन हौं तँ लाज तजि पियहिं मिलै अकुलाइ ॥१९॥
 यथा—(कवित्त)

पथ न थकत पल मनोरथ-रथनि के
 'केसोदास' जगमग जैसँ गाए गीत में ।
 पवन बिचारि चक्र चंक्रमन चित चढ़ि,
 भूतल अकास अमै घाम जल सीत में ।

[१६] सँलाप-सताप (नवल०) । राधिकै प्रिया को (नवल०) । भय-रस (बाल०) ।

[१८] दुख-देख (बाल० खं०) । बसौँ-मिलै (बाल० खं०) । खरक-दरिक (बाल० खं०) । यह छंद 'बाल०' में नहीं है ।

[१९] पियहिं-पतिहि (बाल०) ।

कौ लौं राखौं थिर बपु बापी कूप सर सम,
हरि बिनु कीनैं बहु बासर बितीत में ।
ग्यान गिरि फोरि तोरि लाज-तरु जाइ मिलौं,
आपु ही तैं आपु गाड्यौ आपुनिधि प्रीतमें ॥२०॥

अन्यच्च, यथा—(सवैया)

जाति भई सँग जाति लै कीरति 'केसव' है कुल सों हित फूट्यो ।
गर्ब गयो गुन जोबन रूप को पुन्य सु तौ पल ही पल खूट्यो ।
कान्ह निहारियै आन कियेँ कहौं लाज सों नोको है नातो ई दूट्यो ।
छाँड्यो सबै हम हेरि तुम्हें तुम पै तनको कपटो नहिं छूट्यो ॥२१॥

(दोहा)

अधिक अनूढ़ा लाज तैं पिय पै जाइ न आप ।
क्यों हूँ करि सखियै कहें ताके उर को ताप ॥२२॥

यथा—(सवैया)

जानै को 'केसव' कोने कछो कव कान्ह हमारे हिंडोरनि भूलै ।
पान न खाइ न पान्यों पियै तब तैं भरि लाचन लेत समूलै ।
जाहु नहीं चलि बेगि बलाइ ल्यों लेहु सकोल कहा यह भूलै ।
जानत हो वह कामकर्ता कुँभिलाइ गएँ बहुखौ फिरि फूलै ॥२३॥

अथ प्रथम-मिलन स्थान-वर्णन—(दोहा)

जनी सहेली धाइ घर सूने घर निसि चार ।
अति भय उत्सव ब्याधि मिस न्यौते सु बन-बिहार ॥२४॥
इन ठौरनि ही होतु है प्रथम मिलन संसार ।
'केसव' राजा रंक को रचि राखे करतार ॥२५॥

जनी के घर को मिलन, यथा—(कवित)

बेषु कै कुमारिका को ब्रज की कुमारिकानि
माँझ साँझ 'केसोदास' त्रास पग पेलि कै ।
काम की लता सी चपला सी प्रेम पासी सी है
राधिका के बुधियल कंठ भुज मेलि कै ।
दौरि दौरि दुरि दुरि पूरि पूरि अभिलाष
भाँति भाँति के अनूप-रूप बहु केलि कै ।
जनो के अजिर आज रजनी में सजनी री
साँची करी श्याम चोरमिहचनी खेलि कै ॥२६॥

[२०] फोरि—कोरि (बाल०) ।

[२३] लोचन—आँखियौ (बाल०) । सु बन—बिपिन (बाल० ख०) ।

सहेली के घर को मिलन, यथा—(कवित)

नैननि के तारनि में राखौ प्यारे पूतरी कै
 मुरली ज्यों लाइ राखौ दसन-बसन में ।
 राखौ भुज बीच बनमाली बनमाला करि
 चंदन ज्यों चतुर चढ़ाइ राखौ तन में ।
 'केसोराइ' कलकंठ राखौ बलि कठुला कै
 करम करम क्यों हू आनी हू भवन में ।
 चंपककली ज्यों कान्ह सँघि सँघि देवता ज्यों
 लेहु मेरे लाल ! इन्हें मेलि राखौ मन में ॥२७॥

धाइ के घर को मिलन, यथा—(कवित)

हँसत खेलत खेल मंद भई चंद-दुति
 कहत कहानी और बूझत पहेली-जाह ।
 'केसोदास' नाँद-बस अपने अपने घर
 हरे हरे उठि गए बालिका सकल बाल ।
 घोरि उठे गगन सघन घन चहुँ दिसि
 उठि चले कान्ह धाइ बोलि उठी तिहि काल ।
 आधी राति अधिक आँध्यारे माँझ जैहौ कहाँ
 राधिका की आधी सेज सोइ रहौ प्यारे लाल ॥२८॥

सूने घर को मिलन, यथा—(कवित)

देखत ही चित्र सूनी चित्रसाला बाला आजु
 रूप की सी माला राधा रूपकु सुहाए री ।
 नूपुर के मुरनि के अनुरूप ताने लेति
 पग तल ताल देति अति मन भाए री ।
 ऐसे में दिखाई दीनी औचकाँ, कुँवर कान्ह
 जैसे भए गात तैसे जात न बताए री ।
 'केसोदास' कहे परै अलज सलज से न
 जलज से लोचन जलद से है आए री ॥२९॥

निसि-चार को मिलन, यथा—(सवैया)

एक समै सब देखन गोकुल गोपी-गोपाल-समूह सिधायो ।
 राति है आई चले घर को दसहुँ दिसि मेह महा मदि आयो ।

[२७] केसोराइ—केसोराइ गल मेलि राखौ कलकंठी कंठा कल कठुला कै
 (बाल० खं०) ।

[२८] बस—मिश्र (नवल०) । बालिका—बालिका (नवल०) । प्यारे—नंद (नवल०) ।

[२९] राधा—ब्रजु (बाल० खं०) ।

दूसरो बोल ही तें समुझै कहि 'केसव' यों छिति में तम छायो ।
ऐसे में श्याम सुजान बियोग बिदा कै दियो सु कियो मनभायो ॥३०॥

अतिभय को मिलन, यथा--(कवित)

जानि आगि लागी बृषभान के निकट भौन
दौरि ब्रजवासी चढ़े चहुँ दिसि धाइ कै
जहाँ तहाँ सोर भारी भीर नर नारिनि की
सब ही की छूटि गई लाज हाइ भाइ कै ।
ऐसे में कुँवर कान्ह सारो सुक बाहिर कै
राधिका जगाई और जुवती जगाइ कै ।
लोचन बिसाल चारु चिबुक कपोल चूमि,
चंपे की सी माल लाल लीनी उर लाइ कै ॥३१॥

उत्सव को मिलन, यथा--(कवित)

बल की बरस-गाँठि ताकी राति जागिबे कौँ,
आई ब्रजसुंदरी सँवारि तन सोनो सो ।
'केसोदास' भीर भई नंदजू के मंदिरनि
अध मध ऊरध बच्यो न कोऊ कोनो सो ।
गावति बजावति नचति नाना रूप करि
जहाँ तहाँ उमंगत आनंद को ओनो सो ।
साँवरे की सूनी सेज सोवत ही राधिका जू
सोए आनि साँवरेऊ मानि मन गोनो सो ॥३२॥

व्याधि-मिस को मिलन, यथा--(सवैया)

सोधि निदाननि दान दए उपचार बिचार कियँ न धिरानी ।
बेद के सासन व्याधि-बिनासन होम-हुतासन हू न सिरानी ।
'केसव' बेगि चलौ बलि बोलति दीन भई बृषभान की रानी ।
आए हे मेदि मरु करि कै बहुख्यौ उनके वह पीर पिरानी ॥३३॥

न्यौते के मिस को मिलन, यथा--(कवित)

न्यौति कै बुलाई हुती बेटी बृषभानु जू की,
जँबे कौँ जसोधा रानी आनी हँ सिँगारि कै ।
भोजन कै, भवन बिलोकिबे कौँ पान खात,
ऊपर अकेली गई आनंद बिचारि कै ।
देखत देखत हरि भावते कौँ भागी, देखि
दौरि गही ब्याल ऐसा बेनी डर डारि कै ।

[३१] भाइ-हाइ (बाल०) ।

[३२] अध मध-मधि अध (बाल०) ।

[३३] न धिरानी-नँदरानी (बाल० खं०) । बेगि-ब्योहूँ (बाल०) ।

भैंटी भरि अंक मनभायो करि छाड़्यो, मुहुँ
केसरि सेँ माँड़ि लई बेसरि उत्तारि कै ॥३४॥

वनविहार के मिस को मिलन, यथा--(सवैया)

देहि री काल्हि गई कहि दैन, पसारहु ओलि भरौ पुनि फैंटी ।
छाड़ौ नहीं मग छाड़ौँ जौ या पै छुड़ावै बिलोकनि लाज-लपेटी ।
बात सँभारि कहौ सुनिहै कोऊ जानत हौ यह कौन की बेटी ? ।
जानत हैं वृषभानु को है, पर तोहि न जानत कौन की चेटी ॥३५॥

जलविहार को मिलन, यथा--(सवैया)

हरि राधिका मानसरोवर के तट ठाढ़े री हाथ सेँ हाथ छियेँ ।
पिय के सिर पाग प्रिया मुकताहल छाजत माल दुहूँनि हियेँ ।
कटि 'केसव' काछनी सेत कछुँ सबही तन चंदन चित्र कियेँ ।
निकसे छिति छारसमुद्र ही तेँ सँग श्रीपति मानहुँ श्रीहि लियेँ ॥३६॥

अन्यच्च, यथा--(सवैया)

रितु प्रीषम के प्रतिवासर 'केसव' खेलत हैं जमुना-जल में ।
इत गोपसुता उहँ पार गुपाल विराजत गोपनि के दल में ।
अति बूझत हैं गति मीननि की मिलि जाइ उठे अपने थल में ।
इहि भाँति मनोरथ पूरि दोऊ दुरि दूरि रहें छबि सेँ छल में ॥३७॥

(दोहा)

इहिं बिधि राधारमन के बरने मिलन बिसेखि ।
'केसवदास' निवास बहु बुधबल लाजहु लेखि ॥३८॥
और जु तरुनी तीसरी क्यों बरनों यहि ठौर ।
रस में बिरस न बरनियै कहत रसिक-सिरमौर ॥३९॥
ये सब जितनी नायिका बरनी मति-अनुसार ।
'केसवदास' बखानयहु, बुधि-बल अष्ट प्रकार ॥४०॥
प्रथम मिलन थल में कहे अपनी मति-अनुसार ।
हावभाव-बनन करौँ सुनि अब बहुत प्रकार ॥४१॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
श्रीराधाकृष्ण-चेष्टा-दर्शन-मिलनस्थानवर्णनं नाम पंचम प्रभावः ॥ ५ ॥

[३५] देहि री-दे दधि (नवल०) । कौन०-को महेरेटी (बाल० ख०) ।

[३६] कछुँ-लसी (बाल०) । [३७] गोपनि-गुवालनि के गन में (बाल०) ।

[३८] निवास-बिलास (बाल० ख०) [३९] ३६ से ४१ तक के छंद 'रस०' में नहीं हैं ।

६

अथ भाव-लक्षण—(दोहा)

आनन लोचन बचन मग, प्रकटत मन की बात ।
ताही सौं सब कहत हूँ भाव कबिनि के तात ॥१॥
भाव सु पंच प्रकार के, सुनि विभाव अनुभाव ।
थाई सात्विक कहत हैं, व्यभिचारा कबिराव ॥२॥

अथ विभाव-वर्णन—(दोहा)

जिन तें जगत अनेक रस, प्रगट होत अनयास ।
तिन सौं विमति विभाव कहि बरनत 'केसवदास' ॥३॥

अथ विभाव-नामभेद-वर्णन—(दोहा)

सब विभाव द्वै भाँति के 'केसवदास' बखानि ।
आलंबन इक दूसरो उद्दीपन मन आनि ॥४॥
जिन्हें अतन अवलंबई ते आलंबन जानि ।
जिन तें दीपति होति है ते उद्दीप बखानि ॥५॥

अथ आलंबन-स्थान-वर्णन—(छप्पय)

दंपति जोवन रूप जाति लच्छन जुत सखि जन ।
कोकिल कलित बसंत फूल फल दल अलि उपवन ।
जलचर जलजुत अमल कमल-कमला कमलाकर ।
चातिक मोर सु सन्द तड़ित धन अंबुद अंबर ।
सुभ सेज दीप सौगंध गृह पान गान परिधान मनि ।
नव नृत्य-भेद बीनादि-रव आलंबन 'केसव' बरनि ॥६॥

अथ उद्दीपन-वर्णन—(दोहा)

अवलोकनि आलाप परिरंभन नख-रद-दान ।
चुबनादि उद्दीप ये मर्दन परस प्रमान ॥७॥

अथ अनुभाव-वर्णन—(दोहा)

आलंबन उद्दीप के, जो अनुकरन बखान ।
ते कहियै अनुभाव सब, दंपति प्रीति-विधान ॥८॥

अथ स्थायी भाव-वर्णन—(दोहा)

रति हाँसी अरु सोक पुनि क्रोध उछाह सुजान ।
भय निंदा बिस्मय सदा, थाई भाव प्रमान ॥९॥

[४] आनु-मान (बाल • खं •) ।

[६] कमला-मधुकर (बाल •) । मान-खान (नवल •) ।

अथ सात्त्विक भाव-वर्णन--(दोहा)

स्तम्भ स्वेद रोमांच सुरभंग कंठ वैबन्ध ।
आँसू प्रलय बखानियै आठो नाम अनन्य ॥१०॥

अथ व्यभिचारी भाव-वर्णन--(दोहा)

भाव जु सबही रसनि में उपजत 'केसवराय' ।
बिना नियम तिन सों कहै व्यभिचारी कबिराय ॥११॥

अथ व्यभिचारी-नाम-वर्णन--(दोहा)

निर्वेद ग्लानि संका तथा, आलस दैन्य 'रु मोह ।
स्मृति धृति ब्रीड़ा चपलता श्रम मद चिंता कोह ॥१२॥
गर्व हर्ष आवेग पुनि निंदा नींद बिषाद ।
जड़ता उत्कंठा सहित स्वप्न प्रबोध बिषाद ॥१३॥
अपस्मार मति उग्रता त्रास तर्क औ व्याधि ।
उन्माद मरन अवहित्थ है व्यभिचारी युत आधि ॥१४॥

अथ हाव-लक्षण--(दोहा)

प्रेम राधिका कृष्ण को है तातेँ सिंगार ।
ताके भाव प्रभाव तेँ उपजत हाव बिचार ॥१५॥
हेला लीला ललित मद विभ्रम विहृत विलास ।
किलकिंचित बिच्छिन्ति कहि अरु बिब्योक्त-प्रकास ॥१६॥
मोटाइत सुनि कुट्टामत बोधकाद बहु हाव ।
अपने अपने बुद्धिबल बरनत कबि कबिराव ॥१७॥

अथ हेला हाव-लक्षण--(दोहा)

पूरन प्रेम-प्रताप तेँ भूलत लाज-समाज ।
सो हेला जिहिं हरत हिय राधा श्रीव्रजराज ॥१८॥

अथ श्रीराधिकाजू को हेला हाव, यथा--(सवैया)

अवलोकनि अंकुस ऐँचि अनूपम अ जुग पास भलें गल मेली ।
मृदुहास सुवास उठाइ मिली वह जान्ह का जामिनि माँझ अकेली ।
अधरासव प्याइ किये बस 'केसवराइ' करी रसरीति नवेली ।
बन में वृषभानुसुता सुखहीं हरि काँ हरि से गई हेलहि हेली ॥१९॥

[१०] अनन्य-सुवर्ण (नवल०) ।

[१४] त्रास-आश (नवल०) । उन्माद -अवहित्थ भय आदि है (रस०) ।

[१७] बोधकादि-बोधदिक (नवल०) ।

[१९] अधरासव-अधरास (रस०, नवल०) । रसरीति-रतिरीति (बाल०) ।

श्रीकृष्णजू को हेला-हाव, यथा—(सवैया)

बेनु सुनाइ बुलाइ लई बन भौन बुलाइ कै भाँति भली को ।
फूलि गयो मन फूल्यो विलोकत 'केसव' कानन रास थली को ।
अधरा-रस प्याइ कियो परिरंभन चुंबन कै मुख काम-कली को ।
हेलहिं श्रीव्रजनागर आजु हख्यो मन श्रीवृषभानुलली को ॥२०॥

अथ लीला हाव-लक्षण—(दोहा)

करत जहाँ लीलानि कौं प्रीतम प्रिया बनाइ ।
उपजत लीला हाव तहँ बरनत 'केसवराइ' ॥२१॥

अथ श्रीराधिकाजू को लीला हाव, यथा—(सवैया)

पायन को परिबो अपमान अनेक सौं 'केसव' मान मनैबो ।
मीठो तमोर खवाइबो खैबो त्रिसेषि चहूँ दिसि चौँकि चितैबो ।
चीर कुचीलनि उपर पौढ़िबो पातनि के खरकें भजि ऐबो ।
आँखनि मूढ़ि कै सोखति राधिका कुंजनि तँ प्रतिकुंजनि जैबो ॥२२॥

श्रीकृष्णजू को लीला हाव, यथा—(सवैया)

काँकि भरोखनि में चढ़ि ऊँचे अवासनि उपर देखन धावै ।
निंदत गोप चरित्रनि कौं कहि 'केसव' ध्यान ककै गुन गावै ।
चित्रित चित्र में आपुनपौ अवलोकत आनंद सौं उर लावै ।
आँगन तँ घर में घर तँ फिरि आँगन बासर कौं विरमावै ॥२३॥

अथ ललित हाव-लक्षण—(दोहा)

बोलनि हँसनि विलोकियो चलनि मनोहर रूप ।
जैसेँ तैसेँ बरनियै ललित हाव अनुरूप ॥२४॥

श्रीराधिकाजू को ललित हाव, यथा—(कवित्त)

कोमल विमल मन, विमला सी सखी साथ,
कमला ज्यौं लीने हाथ कमल सनाल के ।
नूपुर की धुनि सुनि भोरें कलहंसनि के,
चौँकि चौँकि परें चारु चँदुवा मराल के ।
कचनि के भार कुच-भारनि सकुच-भार,
लचकि लचकि जात कटि-तट बाल के ।
हरें हरें बोलत विलोकत हँसत हरें,
हरें हरें चलत हरत मन लाल के ॥२५॥

[२०] बुलाइ-भुलाइ (रस०) । अधरारस०—रूप महामधुपान कराइ कखौ पररंभन कामकली को (रस०) ; चुंबन रंभन कामकली को (बाल०) ।

[२२] मीठो-सीठो (बाल०; रस०) । भजि-भगि (रस०) ।

[२३] बासर-जो निसि (बाल०) ।

श्रीकृष्णजू को ललित हाव, यथा—(सवैया)

चपला पट, मोर-किरीट लसै मधवा-धनु सोभ बढ़ावत है ।
मृदु गाजत आवत बैनु बजावत मित्र मयूर नचावत है ।
उठि देखि भट्ट भरि लोचन चातक-चित्त की ताप बुझावत है ।
घनस्याम घनाघन-वेष धरै जु बने बन तें ब्रज आवत है ॥२६॥

अथ मद हाव-लक्षण—(दोहा)

पूरन प्रेम-प्रभाव तें गर्ब बढ़े बहु भाव ।
तिनके तरुन बिकार तें उपजत है मद हाव ॥२७॥

श्रीराधिकाजू को मद हाव, यथा—(कवित्त)

छबि सौं छबीली वृषभानु की कुँवरि आजु,
रही हुती रूपमद मानमद छकि कै ।
मारहू तें सुकुमार नंद के कुमार ताहि,
आए री मनावन सयान सब तकि कै ।
हँसि हँसि सौँहँ करि करि पाइ परि परि,
'केसोराइ' की सौं जब हारे जिय जकि कै ।
ताही समै उठे घन घोरि घोरि, दांमनी सी
लागी लौटि स्याम घन उर सौं लपकि कै ॥२८॥

श्रीकृष्णजू को मद हाव, यथा—(सवैया)

मनमोहिनी मोहि सकै न सखी चपला चल चित्त बखानत है ।
रति की रति क्यों हूँ न कान करै दुति-चंदकला घटि जानत है ।
कहि 'केसव' और की बात कहा रमनीय रमाहूँ न मानत है ।
वृषभानुसुता हित मत्त मनोहर औरहि डांठि न आनत है ॥२९॥

अथ विभ्रम हाव-लक्षण—(दाहा)

बास बिभूषन प्रेम तें जहाँ होइ विपरीति ।
दरसन-रस तन मन रसित, गनि विभ्रम की गीति ॥३०॥

श्रीराधिकाजू को विभ्रम हाव, यथा—(सवैया)

कटि के तटु हार लपेटि लियो कल किंकिनी लै उर सौं उरमाई ।
कर नूपुर सौं पग पौँची रची आँगियाँ सुधि अंचल की बिसराई ।
करि अंजन रंजित चारु कपोल करी जुत जावक नैन-निकाई ।
सुनि आवत श्रीब्रजभूषन भूषन भूषतहाँ उठि देखन धाई ॥३१॥

[२६] प्रेमप्रभाव-प्रेमप्रताप (रस०, बाल० खं) ।

[२६] मन-महि (बाल०, रस०, नवल०) । [३०] बास-बाँकु (नवल०) ।

[३१] रची-बनी (रस०); बिना (बाल०) । रंजित-अंजित (बाल०, रस०) ।

श्रीकृष्णजू को विभ्रम हाव, यथा—(सवैया)

नँदनंदन खेलत हे बने गात बनी छबि चंदन के जल की ।
बृषभानमुताहि बिलोकत ही रुचि चित्त में विभ्रम की भलकी ।
गिरि जात न जानत पाननि खात बिरी करि पंकज के दल की ।
बिहँसी सब गोपमुता हरि-लोचन मूँदि सुरोचि दगंचल की ॥३२॥

अथ विहृत हाव-लक्षण—(दोहा)

बोलनि के समर्थ बिष बोलन देइ न लाज ।
बिहृत हाव तासों कहै, 'केसव कबि' कबिराज ॥३३॥

अथ राधिका को विहृत हाव, यथा—(सवैया)

मेरे कहे दहिये जु तऊ फिरि ग्रीषम ज्यों हठ-काठ दहौगी ।
पैरिबो प्रेम-समुद्र पराए कराए करें कृत कयों निबहौगी ।
हौंस मरे सजनी सिगरी कवहुँ हरि सों हँसि बात कहौगी ।
पी-चित की चितसारी चढ़ी चित की पुतरी भई कौलौ रहौगी ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्णजू को विहृत हाव, यथा—(सवैया)

'केसवदास' सों आजु सखी बृषभानु-कुमारी उराहनो दीनो ।
गारि दई अरु मारि दई अरविंदन सों मनु के हितहीनो ।
सीख दई, सुख पाइ लई उर लाइ सुगंध चढ़ाइ नवीनो ।
उत्तर देइ को नंदकुमार कछु सिर नीचे तँ ऊँचो न कीनो ॥३५॥

अथ विलास हाव, लक्षण—(दोहा)

खेलत बोलत हँसत अरु चितवत चलत प्रकास ।
जल थल 'केसवदास' कहि उपजत विविध बिलास ॥३६॥

श्रीराधिकाजू को विलास हाव, यथा—(कवित्त)

किलकत अलिक जु तिलक-चिलक मिस,
भौंहनि में विभ्रमनि भावभेद दीने हैं ।
लोचननि सोचिन सकोचिन नचावति हौ
दसन चमक हीं चकित चित कीने हैं ।
'केसोदास' मंद हास अनायास दास करि
लीनें केसोराय जिय जद्यपि प्रबोने हैं ।
मोहन के तन मन मोहिबे को मेरी आली,
तेरे मुख सुख हीं अनंत व्रत लीने हैं ॥३७॥

[३४] पैरिबो-पौरिबो (बाल० खं०) ; करें कृत-किये कित (नवल०) ।

[३७] केसोदास०-मंदहास मुखवास अनियास (नवल०) ।

[३७] आली-सली (बाल०); भट्ट (नवल०) ।

श्रीकृष्णजू को विलास हाव, यथा—(कवित्त)

जिन न निहारे ते निहोरत निहारिबे कौं,
 काहू न निहारे जिनि कैसेँहूँ निहारे हैं ।
 सुर नर नाग नव कन्यनि के प्रानपति,
 पतिदेवतानि हूँ के हियनि बिहारे हैं ।
 इहि बिधि 'केसोदास' रावरे असेष अंग,
 उपमा न उपजी बिरंचि पचि हारे हैं ।
 रूप-मद-मोचन मदन-मद-मोचन हैं
 तीय-व्रत-मोचन बिलोचन तिहारे हैं ॥३८॥

अथ किलकिंचित हाव, लक्षण—(दोहा)

श्रम अभिलाष सगर्व स्मित क्रोध हर्ष भय भाव ।
 उपजत एकहि बार जहँ तहँ किलकिंचित हाव ॥३९॥

श्रीराधिकाजू को किलकिंचित हाव, यथा —(सवैया)

कौने रसै बिहँसै लखि कौनहिं कापर कोपि कै भौह चढ़ावै ।
 भूलत लाज भट्ट कबहूँ कबहूँ मुख अंचल मेलि दुरावै ।
 कौन की लेति बलाय बलाय ल्यौ, तेरी दसा कहि मोहि न भावै ।
 ऐसी तौ तू कबहूँ न भई अब तोहि दर्ई जिनि बाइ लगावै ॥४०॥

श्रीकृष्णजू को किलकिंचित हाव, यथा—(सवैया)

ऐसी है गोकुल के कुल की जिनि दच्छिन नैन किये अनुकूले ।
 खंजन से मनरंजन 'केसव' हास विलास लता लगि भूले ।
 बोलें मुको उमकौ अनबोलें फिरौ बिभुके से हिये महि फूले ।
 रूप भए सबके बिष ऐसे ह्वै कान्ह कही रस कौन के भूले ॥४१॥

अथ बिम्बोक हाव-लक्षण—(दोहा)

रूप प्रेम के गर्व तँ कपट अनादर होइ ।
 तहँ उपजत बिम्बोक-रस यह जानत सब कोइ ॥४२॥

श्रीराधिकाजू को बिम्बोक हाव, यथा—(सवैया)

आवत जानि कै सोइ रही हरएँ हरि बैठे न जानि जगाई ।
 साहस कै उर मध्य धखो कर जागत रोम की रौचि जनाई ।
 नीबी बिमोचत चौकि उठी पहिचानि भुकी बतियाँ कहि बाई ।
 बासर गाइ गँवार चरावत आवत हैं निसि सेज पराई ॥४३॥

श्रीकृष्ण को बिबोक् हाव, यथा—(सवैया)

एक समै इक गोपी सौं 'केसव' कैसहुँ हाँसी की बात कही ।
जा कहँ तात दई तजि ताहि कहा हमसौं रस-रीति नही ।
सुनि को प्रतिऊतर देइ सखी दग-आँसुनि की अवली उमही ।
उर लाइ लई अकुलाइ तऊ अधिरातक लौं हिलकी न रही ॥४४॥

अथ बिच्छित्ति हाव-लक्षण—(दोहा)

भूषन भूषिवे को जहाँ होइ अनादर आनि ।
तहाँ बिच्छित्ति बिचारिये 'केसवदास' सुजानि ॥४५॥

श्रीराधिकाजू को बिच्छित्ति हाव, यथा—(सवैया)

तन आपनें भाए सिंगार सिंगारत हँ ये सिंगार सिंगारै ब्रुथा हँ ।
ब्रजभूषन-नैननि भूख है जाकी सु तो पै सिंगार उतारे न जाहीं ।
सब होत सुगंधनि हीं तँ सुगंध सुगंध तँ जाति सुगंध सुभाहीं ।
सखि तोहिं तँ हँ सब भूपन भूपित भूपन तँ तुम भूपित नाहीं ॥४६॥

श्रीकृष्णजू को बिच्छित्ति हाव, यथा—(सवैया)

पान न खाए न पाग रची पलटे पट चित्त कहा धरि कै ।
कंठसिरी वनमाल मनोहर हार उतारे धरे अरि कै ।
चंदन चित्रनि लोपि सलोचन लोक बिलोकनि सौं लरि कै ।
अंग सुभाइ सुवास प्रकासित लोपिहौ 'केसव' क्यों करि कै ॥४७॥

अथ मोट्टाइट हाव लक्षण—(दोहा)

हेला लीला करि जहाँ प्रकटत सात्विक भाव ।
बुधिवल रोकत सोभियै सो मोट्टाइट हाव ॥४८॥

श्रीराधिकाजू को मोट्टाइट हाव, यथा—(सवैया)

खेलत हे हरि बागे बने जहाँ बैठी पिया रति तँ अति लोनी ।
'केसव' कैसहुँ पीठि में डीठि परी कुच कुंकुम की रुचि रोनी ।
मात-समीप दुराई भलें तिनि सातुक भावनि की गति होनी ।
धूरि कपूर की पूरि बिलोचन सँधि सरोरुह ओढ़ि उड़ोनी ॥४९॥

श्रीकृष्णजू को मोट्टाइट हाव, यथा—(सवैया)

भोजन कै वृषभानु सभा महुँ बैठे हे नंद सदा सुखकारी ।
गोप घने, बलवीर बिराजत, खात बनाइ बिरी गिरिधारी ।

[४६] सिंगार०—हँ ए-शृंगार नहीं ये-शृंगार (नवल०); नहीं ये-नहीं सुगंध (बाल०) ।

[४७] रची—बनी (बाल०) ।

राधिका भाँकी भरोखनि भाँप सी लागि गिरे मुरझाइ बिहारी ।
सोर भयो सकुचे समुझै हरवाइ कह्यो हरि लागी सुपारी ॥५०॥

अथ कुट्टमित हाव-लक्षण—(दोहा)

केलि-कलह में सोभियै केलि कपट पट रूप ।
उपजत है तहँ कुट्टमित हाव कहत कबि भूप ॥५१॥

श्रीराधिकाजू को कुट्टमित हाव, यथा—(सवैया)

पहिलेँ हठि रुठि चली उठि पीठि दै में चितई सखि तैन लखी री ।
पुनि धाइ धरै हरिजू की भुजानि तै छूटिबे कौ बहु भाँति भखी री ।
गहि कै कुच पीड़न दंत नखच्छत बैरिनि की मरजाद नखी री ।
पुनि ताही को पान खवावति है उलटी कछू प्रीति की रीति सखी री ॥५२॥

श्रीकृष्णजू को कुट्टमित हाव, यथा—(सवैया)

देखतहीं जिहिं मोन गही अरु मोन तजै कटु बोल उचारे ।
सौह कियेँ हूँ न सौहो कियो मनुहारि कियेँ हूँ न सूधेँ निहारे ।
हा हा कै हारि रहे मनमोहन पाइ परै जिनि लातन मारे ।
मंडत हँ मुहँ ताही को अंक लै हँ कछू प्रेम के पाठ निन्यारे ॥५३॥

अथ बोधक हाव-लक्षण—(दोहा)

गूढ़ भाव को बोध जहँ, 'केसव' औरहि होइ ।
तासौँ बोधक हाव सब, कहत सयाने लोइ ॥५४॥

श्रीराधिकाजू को बोधक हाव, यथा—(सवैया)

बैठी हुती वृषभान-कुमारि सखीनि की मंडली मंडि प्रवीनी ।
लै कुँभिलानो सो कंज परी इक पाइनि आइ गुवारि नवीनी ।
चंदन सौँ छिरक्यो वह वाकहँ पान दप करुना-रस-भीनी ।
चंदन चित्र कपोलनि लोपि कै अंजन आँजि बिदा करि दीनी ॥५५॥

श्रीकृष्ण को बोधक हाव, यथा—(सवैया)

सखि गोकुल गोप-सभा मुहँ गोविंद बैठे हुते दुति कौ धरि कै ।
जनु 'केसव' पूरनचंद लसै चित चारु चकोरनि को हरि कै ।
तिनकाँ उलटो करि आनि दियो किहुँ नीरज नीर नएँ भरि कै ।
कहि काहे तै नैक निहारि मनोहर फेरि दयो कलिका करि कै ॥५६॥

[५०] भाँप-भाँकि (रस०) । राधिका०—राधिका भाँकि भरोखन है कवि केशव शक्ति गिरे सुविहारी (नवल०) ।

[५२] गोकुल-मोहन (बाल०, रस०, बाल० खं०, नवल०) । चारु-चोर (नवल०) ।

(दोहा)

राधा राधारमन के कहे यथामति हाव ।
ढिठई 'केसवराइ' की छमियो कबि कबिराव ॥१७॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारश्रीइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
राधिकाकृष्णहावभाववर्णनं नाम षष्ठः प्रभावः ॥४॥

७

अथ अष्ट नायिका-वर्णन-(दोहा)

ये सब जितनी नायिका, बरनी मति-अनुसार ।
'केसवदास' बखानियै ते सब आठ प्रकार ॥१॥
स्वाधिनपतिका, उत्कहाँ, बासकसज्जा नाम ।
अभिसंधिता बखानियै और खंडिता वाम ॥२॥
'केसव' प्रोषितप्रेयसी लब्धाविप्र सु आनि ।
अष्ट नाइका ये सकल अभिसारिका सुजानि ॥३॥

अथ स्वाधीनपतिका-लक्षण-(दोहा)

'केसव' जाके गुन-बँध्यो सदा रहै पति संग ।
स्वाधिनपतिका तासु कोँ, बरनत प्रेम-प्रसंग ॥४॥

प्रच्छन्न स्वाधीनपतिका, यथा-(सवैया)

'केसव' जीवन जो ब्रज को पुनि जीवहु तँ अति बापहि भावै ।
जापर देव-अदेव-कुमारिनि वारत माइन बार लगावै ।
ता हरि पै तू गँवार की बेटी महावर पाइ भवाँइ दिवावै ।
हौँ तौ बची अब हाँसिनि हूँ, ऐसेँ और जौ देखै तौ ऊतरु आवै ॥५॥

प्रकाश स्वाधीनपतिका, यथा-(कवित)

चोली को सो पान तोहि करत सँवारिबोई,
मुकुर ज्यों तोहीं बीच मूरति समानी है ।
तोहीं तियदेवता पै पायो पति 'केसोदास',
पतिनी बहुत पतिदेवता बखानी है ।
तेरे मनोरथ भागीरथ-रथ पाछै पाछै,
डोलत गुपाल मेरो गंगा को सो पानी है ।

ऐसी बात कौन जु न मानी सुनि मेरी रानी,
उनकेँ तौ तेरी बानी बेद की सी बानी है ॥६॥

अथ उत्का-लक्षण—(दोहा)

कौनहुँ हेत न आइयो, प्रीतम जाके धाम ।
ताकेँ सोचति सोच हिय 'केसव' उत्का बाम ॥७॥

प्रच्छन्न उत्का, यथा—(कवित्त)

किधौँ गृह-काज कै न छूटत सखा-समाज,
किधौँ कछु आज ब्रत-बासर बिभात तैं ।
दीनो तैं न सोधु, किधौँ काहू सों भयो बिरोधु,
उपज्यो प्रबोधु किधौँ उर अवदात तैं ।
सुख में न देहु किधौँ मोही सों कपट-नेहु
किधौँ देखि मेहु अति डरे अधिरात तैं ।
किधौँ मेरी प्रीति की प्रतीति लेत 'केसोदास'
अजहूँ न आए मन सु धौँ कौन बात तैं ॥८॥

प्रकाश उत्का, यथा—(सवैया)

सुधि भूलि गई, भुलए किधौँ काहू कि भूलेई डोलत बाट न पाई ।
भीत भए किधौँ 'केसव' काहू सों, भेंट भई कोऊ भामिनि भाई ।
मग आवत हैं किधौँ आइ गए, किधौँ आवहिं गे सजनी सुखदाई ।
अब आए न नंदकुमार बिचारि, सु कौन विचार अबार लगाई ॥९॥

अथ बासकसज्जा-लक्षण—(दोहा)

बासकसज्जा होइ सो, कहि 'केसव' सबिलास ।
चितवै रति गृह-द्वार त्यों पिय-आवनि की आस ॥१०॥

बासकसज्जा, यथा—(कवित्त)

चंदन बिटप बपु कोमल अमल दल,
ललित वलित लता लपटी लवंग की ।
'केसोदास' तामें दुरी दीप की सिखा सी दौरि,
दुरवति नील बास दुति अंग अंग की ।
पौन पानी पंछी पसु बस सद जित जित
होइ तित तित चौंकि चाहें चोप संग की ।
नंदलाल-आगम बिलोकेँ कुंजजाल बाल,
लीनी गति तेहीं काल पंजर-पतंग की ॥११॥

प्रकाश वासकसज्जा, यथा--(सवैया)

भाषति है सुख-बैन सखी सहुलास हियँ अभिलाषनि जोहै ।
कोमल हासनि नैन बिलासनि अंग-सुवासनि कै मन मोहै ।
मूरतिवति किधौँ तुलसी तुलसी-वन में, रति-मूरति को है ।
कुंज बिराजति गोपबधू कमला जनु कुंज-कुटी महिं सोहै ॥१२॥

अथ अभिसंधिता-लक्षण--(दोहा)

मान मनावत हूँ करै, मानद को अपमान ।
दूनो दुख तिन बिनु लहै अभिसंधिता बखान ॥१३॥

प्रच्छन्न अभिसंधिता, यथा--(कवित्त)

बार बार बोले जब बोल्यो न बालिस तब,
बालक ज्यों बोलिबे कौँ कत बिललातु है ।
ज्यों ज्यों परे पाइनि त्यों पाहन तें पीन भयो,
होतु कहा अब कियेँ माखन सो गातु है ।
'केसोदास' सब छाड़ि कियो हठ ही सों हेत,
बाहु छाड़ि जिय जिये बिनु कहा जातु है ।
ऐसे प्यारे पीय ही सों मान्यो न मनायो तब,
ऐसी तोहिं बूझियै जु पाछें पछितातु है ॥१४॥

प्रकाश अभिसंधिता, यथा--(सवैया)

पाइ पॅर हूँ तें प्रीतम त्यों कहि 'केसव' क्यों हूँ न में दृग दीनी ।
तेरी सखी सिख सीखी न एक हूँ रोष ही की सिख सीखि जु लीनी ।
चंदन चंद समीर सरोज जरै दुख देह भई सुख हीनी ।
में उलटी जु करी बिधि मोँ कहँ न्यायनि हौँ उलटी बिधि कीनी ॥१५॥

अथ खंडिता-लक्षण--(दोहा)

आवन कहि आवै नहीं आवै प्रीतम प्रात ।
जाके घर सो खंडिता कहै जु बहु बिधि बात ॥१६॥

प्रच्छन्न खंडिता, यथा--(कवित्त)

आँखिनि जौ सूक्त न काननि तौ सुनियत,
'केसोदास' जैसे तुम लोकनि में गाए हौ ।
बंस की बिसारी सुधि काक ज्यों चुनत फिरौ,
जुठे सीठे सीथ सठ-ईठ ढीठ ठाए हौ ।
दूरि दूरि करत हूँ दौरि दौरि गहौ पाइ,
जानौँ न कुठौर ठौर जानि जिय पाए हौ ।

काको घर घालिबे कौँ बसे कहाँ घनस्याम,
घूघू ज्यौँ घुसन प्रात मेरे गृह आए हौ ॥१७॥
प्रकाश खंडिता, यथा-(सवैया)

आजु कछु अँखियाँ हरि और सी मानोँ महावर माहँ रँगी हँ ।
मोहन मोही सी लागति मोहिं इतें पर मोहन मोह लगी हँ ।
मेरी सौँ मोसहुँ मानहुँ बेगि हियेँ रस-रोष की रीति जगी हँ ।
मेरे बियोग के तेज तचीँ किधौँ 'केसव' काहू के प्रेम पगी हँ ॥१८॥

अथ प्रोषितपतिका-लक्षण-(दोहा)
जाकोँ प्रीतम दै अवधि, गयो कौन हूँ काज ।
ताकोँ प्रोषितप्रेयसी कहि बरनत कबिराज ॥१९॥

प्रछन्न प्रोषितपतिका, यथा-(सवैया)
'केसव' कैसेहूँ पूरबपुन्य मिल्यो मनभावतो भाग भख्यो री ।
जानै को माई कहा भयो क्योंहुँ जु औधि को आधिक दोस टख्यो री ।
ताकहुँ तू न अजोँ हँसि बोले जऊ मेरो मोहन पाइ पख्यो री ।
काठहूँ तँ हठ तेरो कठोर इतें बिरहानल हू न जख्यो री ॥२०॥

प्रकाश प्रोषितपतिका, यथा-(सवैया)
औधि दै आए उहाँ उनसों यह भोजन कै अवहीं हम ऐहँ ।
ताकहँ तौ अब लौँ बहराइ कै राखी बखाइ मरु करि में हँ ।
बैठे कहा इनके ढिग 'केसव' जाहु नहीं कोउ जाइ जु कैहँ ।
जानत हौं उनि आँखिनि तँ अँसुवा उमगे बहुख्यो पुनि रैहँ ॥२१॥

अथ विप्रलब्धा-लक्षण-(दोहा)
दूती सौँ संकेत कहि लैन पठाई आप ।
लब्धाविप्र सो जानियै अनआए संताप ॥२२॥

प्रच्छन्न विप्रलब्धा, यथा-(सवैया)
मूल से फूल सुवास कुवास सी भाकसी से भए भौन सभागे ।
'केसव' बाग महावन सो जुर सी चढ़ी जोन्ह सबै अँग दागे ।
नेह लग्यो उर नाहर सो निसि नाह घरीक कहुँ अनुरागे ।
गारी से गीत बिरी बिष सी सिगरेई सिंगार अँगार से लागे ॥२३॥

प्रकाश विप्रलब्धा, यथा-(कवित)
देखत उदधिजात देखि देखि निज गात,
चंपक के पात कछु लिख्यो है बनाइ कै ।
सकल सुगंध ढारि फूल-माल तोरि डारि,
दूतिका कौँ मारि पुनि बीरी बगराइ कै ।

लै लै दीह साँस तजि बिबिध बिलास हास,
 'केसोदास' है उदास चली अकुलाइ कै ।
 सेइ के सँकेत सुनो कान्हजू सौँ बोलि उनो,
 मोसौँ कर जोरि दूनो दूनो दुख पाइ कै ॥२४॥

अथ अभिसारिका-लक्षण--(दोहा)

हित तँ के मद-मदन तँ पिय पै मिलै जु जाइ ।
 सो कहियै अभिसारिका भरनी त्रिविध बनाइ ॥२५॥

अथ स्वकीया अभिसारिका-लक्षण--(दोहा)

अति सलज्ज पग मग धरै चलत बधुन के संग ।
 स्वकीया को अभिसार यह भूषन-भूषित अंग ॥२६॥

परकीया अभिसारिका, यथा--(दोहा)

जनी सहेली सोभहीं बंधु-बधू-संग चार ।
 मग में देइ बराइ डग, लज्जा को अभिसार ॥२७॥

प्रच्छन्न प्रेमाभिसारिका, यथा--(कवित्त)

लीनो हम मोल अनबोलै आईँ जान्यो मोह,
 मोहिं घनस्याम घनमाला बोलि लाई है ।
 देख्यो हैंहै दुख जहाँ देह हू न देखी परै,
 देखी कैसेँ बाट 'केसो' दामिनी दिखाई है ।
 ऊँचे नीचे बीच-कोच कंटकनि परे पग
 साहस-गयंद-गति अति सुखदाई है ।
 भागी भयंकारी निसि निपट अकंली तुम,
 नार्हाँ प्राननाथ साथ प्रेमजू सहाई हैं ॥२८॥

प्रकाश प्रेमाभिसारिका, यथा--(कवित्त)

नैननि की अतुराई बैननि की चतुराई,
 गात की गुराई न दुरति दुति चाल की ।
 आपने चरित्रनि के चित्रत बिचित्र चित्र,
 चित्रनी ज्यैँ सोहै साथ पुत्रिका गुवाल की ।
 चंद्र के समान चारु चाय सौँ चढ़ाएँ फिरै,
 करिकै तिहारे मृग-नैननि की पालकी ।

[२६] पग०—डगमग भरी (बाल०) । संख्या २६-२७ 'रस०' में नहीं है ।

[२८] परे—पीड़े (नबल०) । [२६] साथ—संग (रस०) ।

कीजै पय-पान अरु खैयै पान प्रानप्यारे
आई है जू आई अलबेली ग्वालि कालि की ॥२६॥

प्रच्छन्न गर्वाभिसारिका, यथा—(सवैया)

लाड़िली लीली कलोरी लुरी कहँ लाल लुके कहँ अंग लगाइ कै ।
आजु तो 'केसव' कैसहुँ लेखवै लागन देति न देखहु आइ कै ।
बेगि चलौ उठि आई लिलावन दौरि अकेलियै हौँ अकुलाइ कै ।
भूलिहुँ गोकुल गाँउ में गोविंद कीजै गरुर न गाइ चराइ कै ॥२७॥

प्रकाश गर्वाभिसारिका, यथा—(कवित्त)

चंदन चढ़ाइ चारु अंबर के उर हार,
सुमन-सिंगार सोहै आनंद के कंद ज्यों ।
वारौ कोरि रतिनाथ बीन में बजावै गाय,
मृगज मराल साथ बानी जगबंद ज्यों ।
चौंकि चौंकि चकई सी सौतिन की दूती चलौ
सौतेँ भई दोनी अरविंद-दुति मंद ज्यों ।
तिमिर-बियोग भूले लोचन चकोर फूले
आई ब्रजचंद बलि चंदावलि चंद ज्यों ॥२८॥

प्रच्छन्न कामाभिसारिका, यथा—(कवित्त)

उरभूत उरग चपत चरननि फन,
देखत बिबिध निसिचर दिसि चारि के ।
गनति न लागत मुसल-धार सुनत न
भिल्लीगन-घोष निरघोष जलधारि के ।
जानति न भूषन गिरत, पट फाटत न
कंटक अटकि उर उरज उज्जारि के ।
प्रेतनि की पूछै नारि कौन पै तैं सीख्यो यह
जोग कैसो सारु अभिसारु अभिसारिके ॥२९॥

प्रकाश कामाभिसारिका, यथा—(सवैया)

गोप बड़े बड़े बैठे अथाइन 'केसव' कोटि सभा अवगाहौँ ।
खेलत बालक-जाल गलीन में बाल बिलोकि बिलोकि बिकाहौँ ।
आवति जाति लुगाईँ चहूँ दिसि घूँघट में पहिचानति छाहौँ ।
चंद सो आननु काढ़ि कहा बली सूमतु है कहु तोहिं की नाही ॥३०॥

[२६] चढ़ाएँ फिरै—चढ़ी फिरति (बाल०, नवल०) ।

[३०] उठि—चलि (नवल०) । लिलावन—बुलावन (नवल०) ।

(दोहा)

‘केसवदास’ सु तीन बिधि, बरनी स्वकिया नारि ।
 परकीया द्वै भाँति पुनि आठ आठ अनुहारि ॥३४॥
 उत्तम मध्यम अधम अरु तीन तीन बिधि जान
 प्रकट तीन सै साठ तिय ‘केसवदास’ बखान ॥३५॥

अथ उत्तमा-लक्षण-(दोहा)

मान करै अपमान तें तजै मान तें मान ।
 पिय देखे सुख पावई ताहि उत्तमा जान ॥३६॥

उत्तमा, यथा-(सवैया)

होइ कहा अब के समुझे न तबै समुझे जब हे समुझाए ।
 एक ही बंक बिलोकनि माहँ अनेक अमोल विवेक बिकाए ।
 जानिपनो न जनावहु जी जनमावधि लौं उहि जानि हौ पाए ।
 बात बनाइ बनाइ कहा कहौ लेहु मनाइ मनाइ ज्यों आए ॥३७॥

अथ मध्यमा-लक्षण-(दोहा)

मान करै लघु दोष तें छोड़ै बहुत प्रनाम ।
 ‘केसवदास’ बखानियै ताहि मध्यमा बाम ॥३८॥

मध्यमा, यथा-(सवैया)

भूलेहूँ सूखेँ नहीं चितयो इहिं कान्ह कियो लचि लालच केतौ ।
 हाहा के हारि रहे मनमोहन पाइ परे त्यों परेई रहे तौ ।
 हौं तौ यहै तब ही की बिचारति होतौ गुमान क्यों याहि धौं एतौ ।
 लाँबी लटै अरु पातरी देह जु नैंक बड़ी बिधि आँखि न देतौ ॥३९॥

अथ अधमा-लक्षण-(दोहा)

रुठै बारहिं बार जो तूठै वेहीं काज ।
 ताही सों अधमा सबै कहि बरनत कबिराज ॥४०॥

अधमा, यथा-(सवैया)

काटौं कपटु जो कान्ह सों कीजै री बाँटौं वे बोल कुबोल कसाई ।
 फारौं सु घूँघट ओट अटै सोई दीठि फोरौं अध को जु धसाई ।
 ‘केसव’ ऐसी सखीन को मारौं सिखै कै करे हित की जु हँसाई ।
 बारहि बार को रुसबो बारौं बहाऊँ सु बुद्धि बियोग-बसाई ॥४१॥

(दोहा)

इहि बिधि नायक-नायिका बरनहुँ सहित बिबेक ।
जाति काल बय भाव तँ 'केसव' जानि अनेक ॥४२॥

अथ अगम्या नायिका (दोहा)

तजि तरुनी संबध की जानि मित्र द्विजराज ।
राखि लेइ दुख भूख तँ ताकी तिय तँ भाज ॥४३॥
अधिक बरन अरु अंग घटि, अंत्यज जन की नारि ।
तजि बिधवा अरु पूजिता रमियहु रसिक बिचारि ॥४४॥
यह संजोग सिंगार की 'केसव' बरनी रीति ।
बिप्रलंभ सिंगार की रीति कहौँ करि प्रीति ॥४५॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायामष्ट
नायिकासंभोगशृंगारवर्णनं नाम सप्तमः प्रभावः ॥ ७ ॥

—

अथ विप्रलंभ शृंगार-लक्षण- (दोहा)

बिछुरत प्रीतम प्रीतमा होत जु रस तिहिँ ठौर ।
बिप्रलंभ सिंगार कहि बरनत कवि-सिरमौर ॥१॥

अथ विप्रलंभ शृंगार-भेद-वर्णन- (दोहा)

बिप्रलंभ सिंगार को चारि प्रकार प्रकास ।
प्रथम पूर्व-अनुराग पुनि करुना, मान, प्रवास ॥२॥

अथ पूर्वानुराग-लक्षण- (दोहा)

देखतहीं दुति दंपतिहिँ उपजि परत अनुराग ।
बिन देखें दुख देखियै सो पूरव-अनुराग ॥३॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न पूर्वानुराग, यथा- (कवित्त)

फूल न दिखाव सूल फूलत है हरि बिनु
दूरि करि माल बाल-ब्याल सी लगति है ।
चँवर चलाव जिन, बीजन हलाव मति
'केसव' सुगंध बाय बाय-सी लगति है ।

चंदन चढ़ाव जिन ताप सी चढ़ति तन,
कुंकुम न लाव अंग आग सी लगति है ।
बार बार बरजत बावरी है बारौ आनि
बीरी न खवाव बीर विष सी लगति है ॥४॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश पूर्वानुराग, यथा—(सवैया)

‘केसव’ कैसहुँ ईठनि दीठि है दीठ परे रति-ईठ कन्हाई ।
ता दिन तें मन मेरे कौं आनि भई सु भई कहि क्यों हूँ न जाई ।
होइगी हाँसी जौ आवै कहूँ कहि जानि हितु हित बूझन आई ।
कैसे मिलौं री मिले बिनु क्यों रहौं नैननि हेत हियें डर माई ॥५॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न पूर्वानुराग, यथा—(सवैया)

एक समै बृषभान-सुता सजनी-गन में जननी-संग बैसी ।
जात उन्हें चितयो जिहिं रीति सुप्रीति हियें कहि जाइ न तैसी ।
ता दिन तें जग की जुवतीनि की लागत ‘केसव’ बात अनैसी ।
चाहि फिछो चित चक्र चहूँ न कहूँ दुति देखियै वा मुख कैसी ॥६॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश पूर्वानुराग, यथा—(सवैया)

भाँति भली बृषभान-लली जब तें अँखियाँ अँखियानि सों जोरी ।
भौंह चढ़ाई कछु डरपाइ बुलाइ लई हँसि कै बस भोरी ।
‘केसव’ काहूँ त्यों ता दिन तें रुचि कै न बिलोकति केतौ निहोरी ।
लीलत है सबहीं के सिंगार अँगारनि ज्यों बिनु चंद चकोरी ॥७॥

अथ दश दशा-वर्णन—(दोहा)

अबिलोकनि आलाप तें मिलिबे कौं अकुलाहिं ।
होत दसा दस बिनु मिले ‘केसव’ क्यों कहि जाहिं ॥८॥

दश दशा नाम-कथन—(दोहा)

अभिलाष सु चिंता गुनकथन स्मृति उद्वेग प्रलापु ।
उन्माद व्याधि जड़ता भयँ होतु मरन पुनि आपु ॥९॥

अथ अभिलाष-लक्षण—(दोहा)

नैन बैन मन मिलि रहें चाहै मिल्यो सरीर ।
कहि ‘केसव’ अभिलाष यह बरनत हैं कवि धीर ॥१०॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न अभिलाष, यथा—(सवैया)

सुधि बुद्धि घटी दुति देह मिटी दिन हीं दिन चाहियै बाढ़ति सी ।
कछु ‘केसव’ आपने पेट की पीर दुरावति है मुख काढ़ति सी ।
बिसख्यो सुख भूख सखी निसि नींद परी चित-चाहन आढ़ति सी ।
गिरि गो कछु गांठि तें छूटि छबीली सु काहे तें बोलति बाढ़ति सी ॥११॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश अभिलाष, यथा—(सवैया)

जौ कहूँ देखेँ लगे दिख-साध दिखावत हीँ दिन हीँ दुख पैहौँ ।
या ही मँ 'केसव' देखियै वातन देखिहौँ देखि सखी अधिकैहौँ ।
योँ उनकी दुति देखिहौँ देह ज्योँ आपनो देह न देखन दैहौँ ।
देखिवे कौँ बहरावति मोहिं सु हौँ अब कहा कछु देखि ही लैहौँ ॥१२॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न अभिलाष, यथा—(सवैया)

पाइ परौँ बलि जाउँ मनोहर आपुन सी न करौँ अब ताहू ।
देखेँ अघात नहीं दिन के फिरि बारक धौँ अनदेखेँ ही जाहू ।
मोसोँ कही सु कही अब 'केसव' कैसहूँ कान्ह पत्याव न काहू ।
डाढ़हुगे जु कहूँक इती रुचि तातो है नैक सिराइ धौँ स्नाहू ॥१३॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश अभिलाष, यथा—(सवैया)

है कोइ माई हितू इनको, यह जाइ कहै किहिं बाइ बहे हूँ ।
न्याय हीँ 'केसव' गोकुल की कुलटा कुलनारनि नाउ लहे हूँ ।
देखि री देखि लगाइ टकी इत सोनो सो घालि कै चाहि रहे हूँ ।
को है री को जैसेँ जानत नाहिंन काल्हि ही वाके सँदेस कहे हूँ ॥१४॥

अथ चिंता-लक्षण—(दोहा)

कैसेँ कै मिलियै मिलेँ, हरि कैसेँ बस होइ ।
यह चिंता चित चेत कै बरनत हूँ सब कोइ ॥१५॥

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न चिंता, यथा—(दोहा)

आपुनहीं तन आपनो होत न देखेँ जाहि ।
आपुनहीं तैं आपनो क्यों मन करिहै ताहि ॥१६॥

श्रीराधिकाजू की प्रकाश चिंता, यथा—(कवित)

प्रेम-भय भूप रूप सचिव सँकोच सोच,
बिरह-बिनोद पील पेलियत पचि कै ।
तरल तुरंग अबलोकनि अनंत गति,
रथ मनोरथ रहेँ प्यादे गुन गचि कै ।
दुहूँ ओर परी जोर घोर घन 'केसोदास'
होइ जीति कौन की को हारै जिय लचि कै ।
देखत तुम्है गुपाल तिहि काल उहि बाल,
उर सतरंज की सी बाजी राखी रचि कै ॥१७॥

[१२] कहूँ-कही (बाल०); (रस०) । दुति-दुरि (बाल०; नवल०) ।

[१४] चाहि-डाहि (बाल०) ।

श्रीकृष्णजू की प्रच्छन्न चिंता, यथा—(कवित्त)

‘केसोदास’ सकल सुवास को निवास तन,
 कहि कब भृकुटि-धिलास त्रास छोलिहै ।
 कैसो है मुदिन बड़भागी अनुरागी जिहिं,
 मेरो दृग वाके संग लागि लागि डोलिहै ।
 ऐसी हैहै ईस पुनि आपने कटाछ मृग-
 मद घनसार सम मेरे उर ओलिहै ।
 दीप के समीप पुनि दीपति बिलोकेँ वह,
 चित्र की सी पूतरी सु क्यों हूँ हँसि बोलिहै ॥१८॥

श्रीकृष्णजू की प्रकाश चिंता, यथा—(सवैया)

राधिका की जननी केँ जनी कोऊ क्यों हूँ स्वयंवर बात जनावै ।
 देवकुमार से गोपकुमारनि मान दै दै बृषभान बुलावै ।
 ‘केसव’ कैसहु बाल भली वह माल सु मेरे हियेँ पहिरावै ।
 तोहि सखी समदै सँग वाकेँ सु क्यों यह बात सबै बनि आवै ॥१९॥

अथ गुणकथन-लक्षण—(दोहा)

जहँ गुनगन गनि देह-दुति बरनत बचन बिसेखि ।
 ताकहँ जानहु गुन-कथन, मनमथ-मथन सु लेखि ॥२०॥
 श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न गुणकथन, यथा—(कवित्त)
 कीरति सहित नित ‘केसव’ कुँवर कान्ह,
 केवल अकीरति नृपति सोम मानियै ।
 छुवत चंपक पात कुँभिलात जात तन,
 अति हरषत गात हरिजू को जानियै ।
 कोमल सुवासजुत प्यारे के परम पानि,
 कंटक-कलित नाल-नलिन बखानियै ।
 लोचन बिसाल चारु मदनगुपालजू के,
 मदन-सरनि दरसन-रस हानियै ॥२१॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश गुणकथन, यथा—(सवैया)

खंजन हैं मनरंजन ‘केसव’ रंजन नैन किधौँ मति जी की ।
 मीठी सुधा कि सुधाधर की दुति दंतनि की किधौँ दाढ़िम ही की ।
 चंद भलो मुखचंद किधौँ सखि सूरति काम कि कान्ह की नीकी ।
 कोमल पंकज कै पद-पंकज प्रानपियारे कि मूरति पी की ॥२२॥

[१८] दृग-बीर (बाल०); अंग (नवल०) ।

[१९] जनावै-चलावै (बाल०) ।

[२१] सुवास-सुबाहु; (बाल०) ।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न गुणकथन, यथा—(सवैया)

जौ कहौ 'केसव' सोम सरोज सुधा सुर भृंगनि देह दहे हैं ।
दाढ़िम के फल श्रीफल बिद्रम हाटक कोटिक कष्ट सहे हैं ।
कोक कपोत करी अहि केहरि कोकिल कीर कुचील कहे हैं ।
अंग अनूपम वा तिय के उनकी उपमा कहँ वेई रहे हैं ॥२३॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश गुणकथन, यथा—(सवैया)

लोचन बीच चुभी रुचि राधे की 'केसव' क्यों हैं सु जाति न काढ़ी ।
मानहुँ मेरे गद्दी अनुरागनि हुं कम-पंक-अलंकृत गाढ़ी ।
मेरियै लागि रही तनुता जनु यौ दुति नील निचोल की बाढ़ी ।
मेरे ही मानों हिये कहँ सूँघति यौ अरविद दिये मुख ठाढ़ी ॥२४॥

अथ स्मृति-लक्षण—(दोहा)

और कछु न सुहाइ जहँ भूलि जाहिं सब काम ।
मन मिलिबे की कामना ताही स्मृति है नाम ॥२५॥

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न स्मृति, यथा—(सवैया)

बोल्यो सुहाइ न खेल्यो हँस्यो अरु देख्यो सुहाइ न दुःख बढ़यो सो ।
नीकियौ बात सुनै समुझै न मनौ मन काहू के मोह मढ़यो सो ।
'केसव' दढ़ति यौ र मेँ मतिमूढ़ भयो गुन गूढ़ पढ़यो सो ।
को करै साज बजावै को बोनहि वाको कछु चित चाक चढ़यो सो ॥२६॥

श्रीराधिकाजू की प्रकाश स्मृति, यथा—(सवैया)

मेरे मिलाए हीं पै मिलिहौ मनमोहन सौँ मन मोहि न दीजै ।
मौनहि मौन बनै न कछु अव क्यों मन मानद के रस भीजै ।
ऐसे हीं 'केसव' कैसँ जियै अहो पान न खाहु तो पान्यौ न पीजै ।
जानिहँ कोऊ कहा करिहौ तब सोच न एतौ सँकोच तो कीजै ॥२७॥

श्रीकृष्णजू की प्रच्छन्न स्मृति, यथा—(सवैया)

घोरि घनो घनसार घरयो घनस्थाम सु चंदन छवै तन तूल्यो ।
'केसव' कुंज को कूल चितै प्रतिकूल भयो सुम फूलनि फूल्यो ।
भूले से डोलत बोलतहुँ उत जात कितै मन संभ्रम भूल्यो ।
जानति हौँ यह काहू के आजु मनोहर हार हिंडोरनि भूल्यो ॥२८॥

श्रीकृष्णजू की प्रकाश स्मृति, यथा—(सवैया)

बासन बास भए विष 'केसव' बासन बासन की गति लीने ।
चंदन चाँदनी त्यौँ चित चाहै न चंद्रक चंद चितारस-भीने ।

[२४] 'अलंकृत—कलंकित (बाल०) ।

[२७] सोच न एतौ—सोचु न तौ हौ (बाल०) ।

पान न खात न पान करै कछु हास-विलास बिदा करि दीनै ।
ऐसी हैं गोकुल के कुल की जिहँ गोकुलनाथ के ये ढँग कीनै ॥२६॥

अथ उद्वेग-लक्षण-(दोहा)

दुखदायक है जात जहँ सुखदायक अनयास ।
सो उद्वेग दसा दुसह जानहु 'केसवदास' ॥३०॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न उद्वेग, यथा-(दोहा)

चंदन हीं बिष कंद है 'केसव' राहु इहीं गुन लीलि न लीनौ ।
कुंभज पावन जानि अपावन धोखें पियो पचि जानि न दीनौ ।
या सौं सुधाधर सेप बिषाधर नाँउ धखो बिधि दै बुधिहीनौ ।
सूर सौं माई कहा कहियै जनि पापी लै आप बराबर कीनौ ॥३१॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश उद्वेग, यथा-(सवैया)

'केसव' काल्हि बिलोकि भजी वह, आजु बिलोकैं बिना सु मरै जू ।
बासर बीस बिसे बिप मोंड़ियै राति जुन्हाई की जोति जरै जू ।
पालिक तैं भुव भूमि तैं पालिक आलि करोरि कलालि करै जू ।
भूपन देहु कछु ब्रजभूपन दूषन देह को हेरि हरै जू ॥३२॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न उद्वेग, यथा-(सवैया)

मेघनि ज्यों हंसि हंस न हेरत, हंसनि ज्यों घनरूप न पीवै ।
कंजनि ज्यों चित चंदन चाहत चंद ज्यों कंजनि क्यों हूँ न छीवै ।
ताल तैं बागनि बाग तैं तालनि ताल तमाल की जात न सीवै ।
कैसी हैं 'केसव' वे जुवतों सुनि ऐसी दसा पिय की पल जीवै ॥३३॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश उद्वेग, यथा-(सवैया)

सोचि सखी भरि लेति बिलोचन, काँपति देखति फूलें तमालहिं ।
भूले से डोलत बोलत नाहिन, बाग गए किधौं तेरे ही तालहिं ।
देख्यो जौ चाहति, देखि न आवति ? ऐसे में हों न दिखैयै री लालहिं ।
आजु कहा दिखसाध लगी जब देख्यो सुहाइ कछु न गुपालहिं ॥३४॥

अथ प्रलाप-लक्षण-(दोहा)

भवत रहै मन भौर ज्यों है तन मन परताप ।
बचन कहै प्रिय पच्छ सौं तासों कहत प्रलाप ॥३५॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न प्रलाप, यथा-(सवैया)

खेल न हाँसी न, खोरि अठाउ न, हेतु न बैरु हियो कपै रोसों ।
लेनो न देनो, हलाव भलाव न, नातो न गोतो कहा कहौं तोसों ।

[३१] जनि पापी लै यह पापु जु (बाल०) ।

[३२] कलालि-कलाप (नवल०) ।

आनि दियो दुख में दुख 'केसव' कैसेँ हँसौं री कहा कहि कोसौं ।
नैन भरिभरि ग्वालि कहै अरी देख्यो तैं कान्ह कहा कसो मोसौं ॥३६॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश प्रलाप, यथा—(सवैया)

आलिनि माँझ मिली हुती खेलति, जानैको कान्ह धौँ आए कहाँ तैं ।
ढीठहिं ढीठ पखो न कछू सठ ढीठ गही हठि पीठि की घातैं ।
गई गड़ि लाजनि हीँ हिय हौँ तौ उठी जरि 'केसव' काँपनी यातैं ।
इती रिस में न बची कबहूँ पै रही पचि हौँ अखियान के नातैं ॥३७॥

श्रीकृष्ण को प्रच्छन्न प्रलाप, यथा—(सवैया)

नील निचोल दुराइ कपोल बिलोकति ही करि ओलिक तोही ।
जानि परी हँसि बोलति भीतर भाजि गई अवलोकत मोही ।
बूझिबे की जक लागी है कान्हहिं 'केसव' कै रुचि रूप लिलोही ।
गोरस की सौँ बबा की सौँ तोहि कि बार लगी कहि मेरी सौँ को ही ॥३८॥

श्रीकृष्ण को प्रकाश प्रलाप, यथा—(कवित्त)

मोहन मरीचिका सो हास, घनसार को सो
बास, मुख रूप की सी रेखा अवदात है ।
'केसोदास' बेनी तौ त्रिवेनी सी बनाइ गुही,
जामैं मेरे मनोरथ मुनि से अन्हात है ।
नेह उरमे से नैन देखिबे कोँ बिरुमे से,
बिभुकी-सी भौँहैं उरमे से उरजात है ।
लोचन कमल चारु तिन पर पाइ देति,
तेरे घर आई आजु कहि कैसी बात है ॥३९॥

अथ उन्माद-लक्षण—(दोहा)

तरकि उठै पुनि उठि चलै चितै रहै मुँह देखि ।
सो उन्माद जनावहीं रोवै हँसै बिसेखि ॥४०॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश उन्माद, यथा—(सवैया)

केसव चौंकति सी चितवै, छतिया धरकै, तरकै तकि छाँहीं ।
बूझियै और कहै मुख और सु और की और भई पल माँहीं ।

[३६] भलावन-भला उत (बाल०) । भरिभरि-भरे भरि (बाल०); नैननि नीर भरे (नवल०) ।

[३७] ढीठ-ढीठ (रस०) । गई गड़ि-हौँ गड़ि लाजनि ही जु गई पै (बाल०) । यातैं-पातैं (बाल०) ।

[३८] निचोल-निबोर (रस०) ।

[३९] लोचन कमल-देवी सी बनाई कौन की है जाई यह तेरे घर आई आजु कह कैसी बात है (रस०; नवल०) ।

झीठि लगी, किधौँ बाय लगी, मन भूलि पखो, कै कखो कछु काँहीँ ।
घूँघट की घट की पट की हरि आजु कछु सुधि राधिकै नाँहीं ॥४१॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न उन्माद, यथा-(तादंक)

‘केसव’ सुधि बुधि हरित सु तुम बिनु बिथा अगाध राधिकहि बाढ़ी ।
छूटी लट लटकति कटितट लौँ चितवति नीठि नीठि करि ठाढ़ी ।
तरकति तकि तोरति तिन तरफति अति अपार उपचारनि डाढ़ी ।
सकसकाति लै साँस अचेत सु चेतहु प्रेम-प्रेत गहि गाढ़ी ॥४२॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न उन्माद, यथा-(सवैया)

गूढ़ अगूढ़ प्रकासत बातनि लोक अलोक की बात सरी सी ।
रोषत हँ, कबहूँ हँसि गावत, नाचत लाज की छाड़ि छुरी सी ।
काहू को सोच सँकोच न ‘केसव’ देखत आवति देह मरी सी ।
बाम कि बाय कि काम की बाय कि है हरि की मति काहू हरी सी ॥४३॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश उन्माद, यथा-(कवित)

सजल चकित चित चितवत चहूँ दिसि,
चाहि चाहि रहूँ मुख, चपल चलत धाइ ।
सोचत से मन, मन कंपत, तपत तन,
‘केसोदास’ रोवत हँसत उठै गाइ गाइ ।
चलहि दिखाऊँ तोहि देखतहीं भयो मोहि,
भयो सु कहन आई तोसों अलि अकुलाइ ।
जैसे कछु आँक-बाँक बकत हँ आजु हरि,
तैसे जिन नाउँ मुख काहू को निकसि जाइ ॥४४॥

अथ व्याधि-लक्षण-(दोहा)

अंग-वरन बिबरन जहाँ, अति ऊँचे उस्वास ।
नैन-नीर परिताप बहु, व्याधि सु ‘केसोदास’ ॥४५॥

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न व्याधि, यथा-(सवैया)

बैनु तज्यो छनि बैन तँ बोलौ न बोल बिलोकत बुद्धि भगी है ।
वे न सुनेँ समुझँ न तू बातहि प्रेत लग्यो किधौँ प्रीति जगी है ।
‘केसव’ वे तुहि तोहि रटेँ रट तोहि इतै छनि हौँ की लगी है ।
वे भलैँ पान न, पान्यौँ न तू, सु तँ कान्ह ठगे कि तू कान्ह-ठगी है ॥४६॥

[४१] चौँकति-चौँकित (रस०)

[४२] हरित-रहै तुम्हें बिनु (सरदार) । तरकति-तरकि तोरति तनु (नवल०) ।

[४३] छाड़ि-छाँह (नवल०) । संख्या ४५ ‘रस०’ में नहीं है ।

[४६] बैनु-बैन (नवल०, बाल०) । बोल-नैन (बाल०) ।

श्रीकृष्णजू की प्रकाश व्याधि, यथा—(सवैया)

हाँ उनके तन ताप तें तापियै, हाँ इनके उपचार जुड़्यै ।
हाँ उनके उड़ि जैयै उसासनि हाँ इनके अँसुवानि अन्ह्यै ।
'केसव' ये नंदलालन वै बृषभानलली पै निदान न पैयै ।
एकहिँ बेर दुहँनि कहा भयो माई री तू चलि, देखन जैये ॥४७॥

अथ जड़ता-लक्षण—(दोहा)

भूलि जाइ सुधि बुधि जहाँ, सुख दुख होइ समान ।
तासों जड़ता कहत हैं 'केसोदास' सुजान ॥४८॥

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न जड़ता, यथा—(सवैया)

खरे उपचार खरी सियरी सियरे तें खरोई खरो तन छीजै ।
ऐसे में और करेँ तें कछु उपजै तो सकेलि कहा हम लीजै ।
देखत हौ यह कामकली कुँभिलानियै जाति कहा अब कीजै ।
कोन पै जाऊँ, कहा करों 'केसव' कैसेँ जियै वह क्यों हम जीजै ॥४९॥

श्रीराधिकाजू की प्रकाश जड़ता, यथा—(सवैया)

अँखियानि मिली सखियानि मिली पतियाँ-बतियाँनि मिली तजि मौनै ।
ध्यान-विधान मिली मनहीं मन उयोँ मिलै राँक मनोँ मन सोनै ।
'केसव' केसहुँ बेगि चलो नतु हैहै वहै हरि जो कछु हौनै ।
पूरन प्रेम-समाधि लगे मिलि जैहै तुम्हें मिलिहोँ तब कोनै ॥५०॥

श्रीकृष्णजू की प्रच्छन्न जड़ता, यथा—(सवैया)

पल ही पल सीतल होत सरीर बिचारे सबै उपचार निदानै ।
जौ करियै तन खंडन मंडन चित्त कछु सुख दुःख न आनै ।
'केसव' कान्ह सुने समुझै नहिं, बूझ्यै कौनहिं को पहिचानै ।
जोग लियो कै बियोग है काहू को लोग कहा इनि रोगनि जानै ॥५१॥

श्रीकृष्णजू की प्रकाश जड़ता, यथा—(सवैया)

कान्ह केँ आसन बासनहींन हुतासन भीत को प्रासन कीजै ।
'केसव' इन्द्रिय सोधि सबै मन साधि समाधिनि के रस भीजै ।
जौ लौँ भए हरि सिद्ध प्रसिद्ध न तोलोँ बिलोकि अलोक न कीजै ।
देवी ! करेँ तप तो लगि बे, बरदान न जौ जिय-दान तौ दीजै ॥५२॥

[४७] देखन जैयै—देखि डरैयै (रस०, नवल०) ।

[४९] है—ही (बाल०, नवल०) । कामकली—कामलता (नवल०) ।

[५०] राँक—एक (नवल०) । नतु—तन (रस०, नवल०, बाल०) ।

[५१] पहिचानै—यह माने (रस०, बाल०, नवल०) ।

अथ मरण-लक्षण-(दोहा)

बनै न क्योंहूँ मिलन जहँ, छल बल 'केसोदास' ।
 पूरन प्रेम-प्रताप तैं मरन होत अनयास ॥५३॥
 मरन सु 'केसवदास' पै बरन्यो जाइ न मित्र ।
 अजर अमर जस कहि कहौँ कैसेँ प्रेत-चरित्र ॥५४॥
 रति उपजै रमनीनि केँ, पहिलेँ 'केसवदास' ।
 तिन की इंगित देखि सखि करत सु प्रेम-प्रकास ॥५५॥
 अति आदर अति लोभ तैं, अति संगति तैं मित्त ।
 साधुनि हूँ के होत है 'केसव' चंचल चित्त ॥५६॥
 सुभग दसा दस में कहौँ उपजै पूरन राग ।
 जिहिं बिधि उपजै मान मन बरनौँ सुनहु सुभाग ॥५७॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारश्रीइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
 विप्रलंभशृंगारपूर्वानुरागवर्णनं नामाष्टमः प्रभावः ॥८॥

६

अथ मान-लक्षण-(दोहा)

पूरन-प्रेम-प्रताप तैं, उपजि परतु अभिमान ।
 ताकी छवि के छोभ तैं, 'केसव' कहियत मान ॥१॥
 प्रकटहि पिय प्रति मानिनी, गुरु लघु मध्यम मान ।
 प्रकटहि पीय प्रियानि प्रति, 'केसवदास' सुजान ॥२॥

अथ गुरुमान-लक्षण-(दोहा)

आन नारि के चिन्ह लखि, अरु सुनि श्रवननि नाउँ ।
 उपजत है गुरुमान तहँ, 'केसवदास' सुभाउँ ॥३॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न गुरुमान चिह्नदर्शन तैं, यथा-(सवैया)

आजु मिले बृषभानकुमारिहि नंदकुमार बियोग बितै कै ।
 रूप की रासि रस्यो रस 'केसव' हास बिलासनि रोस रितै कै ।

[५६] संख्या ५६ के अनंतर 'रस०' में यह दोहा है—

आदरादि तैं साध हू ज्यों चंचल चित होत ।
 त्यों पर सखि संग दंपतिहि चंचलता उद्योत ॥

[३] अरु-कै (नवल०) ।

बागे के भीतर देखि हियें नख नैन नवाइ रही सु इतै कै ।
फूलिहि में अमि भूलि मनोँ सकुचे सरसीरुह चंद चितै कै ॥४॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश गुरुमान श्रवण तें, यथा—(सवैया)

ब्रूकति ही वह गोपी गुपालहि आजु कछु हंसि कै गुनगाथहिं ।
ऐसे में काहु को नाम सखी कहि कैसेँ धौँ आइ गयो ब्रजनाथहिं ।
खात खवावति हो जु बिरी सु रही मुख की मुख हाथ की हाथहिं ।
आतुर है उनि आँखिन तें अँसुवा निकसे अखरानि के साथहिं ॥५॥

अथ नायक को गुरुमान-लक्षण—(दोहा)

लोक-लीक उल्लिखि कछु, प्रिया कहै जब बैन ।
उपजि परत गुरुमान तहँ, प्रीतम क उर-ऐन ॥६॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न गुरुमान, यथा—(कवित)

ऐसी ऐसी रति राचे सौँहनि के साँचे स्याम,
देखौ आनि बाँचि कैधौँ कौन की ये चीठी है ।
सुनहु सभाग पाई रावरीयै पाग माहिं,
कागर के रूप काहु आगि की अँगीठी है ।
जनति हौँ याहीं मग पायो है जनम जग,
औरहु अलोकन की बीथी तुम दीठी है ।
काहे कौँ कहावत कटुक कालकूट ऐसी,
कह्यो हरि हरेँ हंसि 'हमकौँ' तौ मीठी है ॥७॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश गुरुमान, यथा—(कवित)

आपने सौँ आपनेही आगें कहियत किधौँ,
खोरि के खजाने खोरि ही में खोलियत हैं ।
डीठि हू तौ रोकियत जौ पै कहूँ जाइ 'केसो'
और कहा नैन लै छुरी सौँ छोलियत हैं ।
लेई घनस्याम जिनि बिनु घनी घरनीनि,
घरिक में घने घनसार घोलियत हैं ।
बोलति हौँ कैसेँ ऐसैं बोलौ जैसेँ बोलियत,
मोल हू लए सौँ ऐसे बोल बोलियत हैं ॥८॥

अथ लघुमान-लक्षण—(दोहा)

देखत काहु नारि त्यों, देखै अपने नैन ।
तहँ उपजत लघुमान, कै सुनेँ सखी के बैन ॥९॥

[५] कहि कैसेँ—सुनि आय धौँ कैसे कह्यो (बाल०) ।

[६] औरहु—लोक में (बाल०) ।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न लघुमान, यथा—(सवैया)

कान्ह तिहारी वा प्रानप्रिया कें अयान सयान सबै मन माहीं ।
मान किधौँ अपमान अबै यह मानस पै अनुमाने न जाहीं ।
सुख दुख न 'केसव' जानि परै समुझै रिस हास न हाँ अरु नाहीं ।
अब यों खिन ही सियरी खिन ताती है ज्यों बदलै बदरानि की छाहीं ॥१०॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश लघुमान, यथा—(कवित्त)

भूठहूँ न रुठियै री ईठ सेाँ इतै कहाऽब,
नैक पीठ देत ईठ कौन के भए अली ।
काल्ह के तौ नंदलाल मो सेाँ घालि लालि करै,
काल्ह ही न आई ग्वारि जौ पै तू हुती भली ।
आजु हीं जु बीच परी बीच पारिबे कौँ माई,
आन रंग आन भाँति ज्यों कनेर की कली ।
तेरे ही कहे की कोऊ साखि है जू बूमियै री,
देखियै जु आँखि ताकी साखि की कहा चली ॥११॥

अथ प्रिय को लघुमान-लक्षण—(दोहा)

प्रिय को कह्यो करै नहीं प्रिया कौनहूँ काज ।
उपजत है लघुमान तहँ बरनत है कविराज ॥१२॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश लघुमान, यथा—(सवैया)

आगें कहा करिहौ अबहों तें इतो दुख दीनो कह्यो बिनु कीनै ।
'केसव' कौनहु लाज कि लाइ तें भूलि गई तौ भए हित हीनै ।
भेटे नहीं भरि अंक लला भरि जीभ न बोली जू बोल नवीनै ।
देखे नहीं कवहूँ भरि आँखिनि आजुहि कैसेँ चलै चित लीनै ॥१३॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश लघुमान, यथा—(सवैया)

बोली ज्यों आए त्यों बोलत नाहिनै मोसों कहा कछु चूक तिहारी ।
'केसव' कैसेँ देख्यो सुने बिन जानै कहा कोऊ जी को बिहारी ।
खीर सिराइ न जानत खाइ, नई यह भूख की भाँति निहारी ।
काँचि ही दाखहि चाहत चाख्यो सु अंत तऊ तुम कुंजबिहारी ॥१४॥

अथ मध्यम मान-लक्षण—(दोहा)

बात कहत प्रिय और सों देखै 'केसवदास' ।
उपजत मध्यम मान तहँ मानिनि के सबिलास ॥१५॥

[११] भाँति—जिय (बाल०, नवल०) ।

[१२] प्रिया०—प्रिय को नाहीं लाब (नवल०) ।

[१५] सबिलास—अनयास (बाल०) ।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न मध्यम मान, यथा--(सवैया)

कहौ कान्ह कहाँ सिगरी निसि नासी सु तौ तुम हीँ कहँ चाहतहीँ ।
तनु में तनु रेख लिखी किहि 'केसव' कंटक-कानन गाहतहीँ ।
कछू राति सी आँखि कहा भई ताती तिहारे बियोग के दाहतहीँ ।
हिय बंचक-रीति रची जब रंचक लाइ लई उर नाह तहीँ ॥१६॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश मध्यम मान, यथा--(सवैया)

सखि ज्यों उनको तू बकावति मोहू को आई बकावन है गरई ।
अब याही तैं तोसहु बात कछू कहिबे कौ हुती न कही परई ।
कहि 'केसव' आपनी जाँघ उघारि कै आप ही लाजनि को मरई ।
इक तौ सब तैं हरष हरि हैं अब होहुँ कहा हरि तैं हरई ॥१७॥

अथ प्रिय को मध्यम मान-लक्षण--(दोहा)

जहाँ न मानै मानिनी, हारै पिय जु मनाइ ।
उपजत मध्यम मान तहँ, प्रीतम केँ उर आइ ॥१८॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न मध्यम मान, यथा--(कवित्त)

बार बार बरजी में सारस सरस मुखी,
आरसी लै देखि मुख या रस में बोरिहै ।
सोभा के निहारेँ तैं निहारति न नँकहूँ तू,
हारी हैं निहोरि सब कहा काहू खोरि है ।
सुख को निहोखो जु न मान्यो सो भली करी तैं,
'केसोराइ' की सौँ अब जौ तू मुहँ मोरिहै ।
नाह के निहारेँ किन मानति निहोरति हौँ,
नेह के निहारेँ फिर मोही जु निहोरिहै ॥१९॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश मध्यम मान, यथा--(सवैया)

मानहिं मान तैं मानिनि 'केसव' मानस तैं कछु मान टरैगो ।
मान रहै सु जु माने नहौँ परिमान नखें अभिमान भरैगो ।
हैहै सहेली समान तबै जब सौतिनि में अपमान करैगो ।
आप मनावत मानहि रो बहुखौ जु मनावन तोहि परैगो ॥२०॥

[१६] नासी-नारी (नवल०) ।

[१७] परई-धरई (नवल०) ।

[१९] या रस-आरस (नवल०, बाल०) । मानति०-मानहि निहोरति हो (बाल०) ।

(दोहा)

राधा राधा-रवन के बरने मान समान ।
तिन को मान मनाइबो कहियत सुनौ सुजान ॥२१॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
विप्रलंभशृंगारमानवर्णनं नाम नवमः प्रभावः ॥६॥

१०

अथ मानमोचन-लक्षण-(दोहा)

मान तजहिँ प्रीतम प्रिया, कहि 'केसव' करि प्रीति ।
बरनि सुनाऊँ सुनहु सब, मै जु सुनी षट रीति ॥१॥
साम दान भनि भेद पुनि, प्रनति उपेच्छा मानि ।
पुनि प्रसंग-बिध्वंस अरु, दंड होइ रस-हानि ॥२॥

अथ साम-लक्षण-(दोहा)

ज्यौं क्योँहुँ मन मोहियै छूटि जाइ जहुँ मान ।
सोई साम उपाय कहि 'केसवदास' बखान ॥३॥

श्रीराधिकाजू को साम उपाय, यथा-(सवैया)

'केसवदास' सदा कियेँ आस रहै सुख की दुख ताहि न दीजै ।
ताहूँ सौं रोष न मानियै माननि भूलिहुँ आपनो मानि सु लीजै ।
हौं तुमहीं तुम हौं सुनि सुंदरि मूरति द्वै जिय एकहीं जीजै ।
मान है भेद को मूल महा अपनैँ सहु सो सपने हूँ न कीजै ॥४॥

श्रीकृष्णजू को साम उपाय, यथा-(सवैया)

कहि आवति है जौ कहावत हौ तुम नाहीँ तौ ताकि सके हम सोहीं ।
तिहि पैंडे कहा चलियै कबहुँ जिहिँ काँटो लगै पग पीर दुकोहीं ।
प्रीति कुम्हेँडे की जैहै जई सम, होति तुम्हें अँगुरी पसरोहीं ।
कीजै कछु यह जानि कै 'केसव' हौ तुम हीँ तुम तौ हरि हौ हीँ ॥५॥

[२] दान०-दान अरु (नवल०) ।

[३] ज्यौं०-ज्यौं त्यौं करि (बाल०) । छूटि-भूलि (बाल०) ।

[५] दुकोहीं-पिरोहीं (बाल०) । कीजै-को है (बाल०) ।

अथ दान उपाय-लक्षण—(दोहा)

‘केसव’ कौनहुँ ब्याज मिस दै जु छुटावै मान ।
बचन-रचन मोहै मनहिं तासौं कहियै दान ॥६॥
जहाँ लोभ तँ दान लै छाँड़ै मानिनि मान ।
बारबधू के लच्छनहिं पावै तथहि प्रमान ॥७॥

श्रीराधिकाजू को दान उपाय, यथा—(कवित्त)

कोमल अमल दल दीने हे कमल-भव,
अरुन अरुन प्रभु जू कौं सुखदाइयै ।
‘केसोदास’ सोभाधर सधर सुधा के धर,
मधुर अधर उपमा तौ इनि पाइयै ।
उरज-मलय-सैल-सील सम सुनि देखि,
अलक बलित ब्याल आसा उर आइयै ।
निपट निगंध यह हार बंधुजीव को सु,
चाहत सुगंध भयो नैक प्रीव नाइयै ॥८॥

अन्यच्च, यथा—(सवैया)

मत्तगयंदनि साथ सदा इनि थावर जंगम जंतु बिदाख्यो ।
ता दिन तँ कहि ‘केसव’ बंधन बेधन कै बहुधा बिधि माख्यो ।
सो अपराध सुधारन सोध यहै इनि साधन साधु बिचाख्यो ।
पावन-पुंज तिहारो हियो यह चाहत है अब हार बिहाख्यो ॥९॥

श्रीकृष्णजू को दान उपाय, यथा—(कवित्त)

हँसति हँसति आई आनि इक गाथा गाई,
कहहु कन्हआई याको भाउ समझाइ कै ।
पीबै क्यों अधर-मधु दंपति सु एकै बार,
रदन करज थल दीजहि बताइ कै ।
यह परिरंभन कहावै कौन ‘केसोदास’
मेरी सौं जो मोसौं तुम राखहु दुराइ कै ।
राधिका की अधिकाई कहा कहौं लीनो आजु,
आपनो पियारो पीउ आपु ही मनाइ कै ॥१०॥

अथ भेद-लक्षण—(दोहा)

सुख दै कै सब सखिनि कहँ आपु लेइ अपनाइ ।
तब सु छुड़ावै मान कौं, बरनौं भेद बनाइ ॥११॥

[६] मिस-कल्लु (बाल०, नवल०) । छुटावै-छुड़ावै (बाल०, नवल०) ।

[७] ‘रस०’ में नहीं है ।

[८] सधर-सुधर (नवल०) । उर आइयै-उर भाइयै (बाल०) ।

[११] छुड़ावै-छिड़ावै (रस०); मनावै (बाल०) । मान कौं-मानिनी (बाल०) ।

श्रीराधिकाजू को भेद-उपाय, यथा—(सवैया)

‘केसव’ धाइ खवासिनि तोहि सखी सकुचैँ सब आपन घातैँ ।
मोहिं तो माई कहे हौं बनै अब बाँधि दई बिधि तो कहूँ तातैँ ।
नैक हरेँ हरेँ बोलि बलाइ ल्यौँ हौं डरपौँ गड़ि जाहिं न जातैँ ।
माखन सो मेरे मोहन को मन काठ सी तेरी कठेठी ये बातैँ ॥१२॥

श्रीकृष्णजू को भेद उपाय, यथा—(सवैया)

काहू कह्यो ‘हरि रुठि रहे’ तब तैं बहु बुद्धि बितर्क बढ़ावै ।
सोधि सबै अपनो सो रही धन मीत रहै सु उपाय न पावै ।
हाँ वह रीति इहाँ यह ‘केसव’ ज्यौं दुहुँ ओर जरे कौं जरावै ।
बूझति हौं पिय प्यारी तिहारी सु मान करै कि मनावन आवै ॥१३॥

अथ प्रणति-लक्षण—(दोहा)

अति हित तैं अति काम तैं, अति अपराधहिं जानि ।
पाइ परै प्रीतम प्रिया, ताकौं प्रनति बखानि ॥१४॥

श्रीराधिकाजू की प्रेम तैं प्रणति, यथा—(सवैया)

तैं चितयो जु न सूधे तऊ जऊ प्रेम ककै पिय पाउ गह्यो हो ।
मोहिं बिलोकि बिलोकि अलीन अलीक अलोक-प्रवाह बह्यो हो ।
बूझति हौं सखि सीस दियें तिनु और सबै हिय हेतु रह्यो हो ।
कान्हहि आएँ मनावन तोसौं में मान किधौं अपमान कह्यो हो ॥१५॥

श्रीराधिकाजू की अति काम तैं प्रणति, यथा—(सवैया)

बोलति नाहि बुलाएँ हुँ बोल कहा लगी मोहिं बकाए हौं मारन ।
सो पखो पाइनि बूझि सखी सब देति हैँ ज्यौ जुवती जिहि कारन ।
हठ छाड़ि कै कंठ लगाइ उठाइ कहा लगी ऐँठि अकास निहारन ।
कौनैँ भए नहि द्वै दिन ए दिन तू ही लगी कछु ऊलट पारन ॥१६॥

श्रीराधिकाजू की अति अपराध तैं प्रणति, यथा—(सवैया)

‘केसवदास’ उदास भई दरसाइ दसा दुख-द्यौस भख्यो री ।
राति भए अधिरातक हू लौं बिनै बहु बंधुबधूनि कख्यो री ।
घाइ रही समुझाइ कछु न सखीनि हूँ के सिखए तैं सख्यो री ।
काहे तैं मान्यो न मानिनि तौ लगि जौ लगि पाइ न पीउ पख्यो री ॥१७॥

[१३] जरावै-जुड़ावै (बाल०, नवल०) । बूझति-पूछति (रस०, बाल०) ।

[१५] तऊ जऊ-जऊ तऊ (बाल०) । बूझति-पूछति (बाल०, रस०) ।

[१६] बोलति नाहि-बोलति आपु (बाल०, नवल०) । ऐँठि-बैठी (बाल०); भेदि (रस०) ।

(दोहा)

पियहिं मनावै पाइ परि, प्रिया परम हित मानि ।
नापराध नहि काम तँ बरनत ही रसहानि ॥१८॥

श्रीकृष्णजू की प्रणति अति हित तै, यथा—(सवैया)

नीरहिं तौ बिनु मीन सरै अरु मीन तौ नीरहिं के जिय जीजै ।
जा बिनु और सुहाइ न 'केसव' ताहि सुहाइ सु तौ सब कीजै ।
जा लागि मो पग लागत हे सु लगी पग अंक लगाइ न लीजै ।
हौं सिखऊँ अपने सपन हूँ तौ आवत लच्छि किवार न दीजै ॥१९॥

अथ उपेक्षा-लक्षण—(दोहा)

मान मुचावन बात तजि कहियै और प्रसंग ।
छूटि जात जहँ मान, सो कहत उपेक्षा अंग ॥२०॥

श्रीराधिकाजू की उपेक्षा, यथा—(कवित्त)

चपला न चमकति चमक हृथ्यारनि की,
बोलत न मोर बंदी सयन-समाज के ।
जहाँ तहाँ गाजत न, बाजत दमामे दीह,
देत न दिखाई दिनमनि लीने लाज के ।
चलि चलि चंदमुखी साँवरे सखा पै बेगि,
सोषक जु 'केसोदास' अरि सुख-साज के ।
चढ़ि चढ़ि पवन तुरंगनि गगन धन,
चाहत फिरत चंद जोधा तमराज के ॥२१॥

श्रीकृष्णजू की उपेक्षा, यथा—(कवित्त)

'केसोदास' दिन राति केतकी की भावै भाँति,
जिय में बसति जाति, नैननि में नलिनी ।
माधवी को पीवै मधु सूक्त न अंध कहै,
सेवती सेवन कही सेई गंधफलिनी ।
औरै हौं कहति बात कान्ह काहे को लजात,
ऐसे तौ खियाइ सो जु होइ मनमलिनी ।
देखौ नहीं प्रानपति निलज अली की गति,
मालती सो मिल्यो चाहै लिये साथ अलिनी ॥२२॥

अथ प्रसंग-विध्वंस-लक्षण—(दोहा)

उपजि परै भय चित्त भ्रम, छूटि जाइ जहँ मान ।
सो प्रसंग-विध्वंस कबि, 'केसवदास' बखान ॥२३॥

श्रीराधिकाजू को प्रसंग-विध्वंस, यथा—(सवैया)

केकी न 'केसव' काम के किंकर बोलत डोलत देत दुहाई ।
काम-निसा यह कामिनि कोऊ रिसाइगी तासहु हैंहै रिसाई ।
गाजति नाहिंन मेघघटा यह बाजति डौंड़ी सखी सुखदाई ।
भोर भएँ फिरि कीबो अबोलौ सु बोलौ अबै बलि बोलि कन्हाई ॥२४॥

श्रीकृष्णजू को प्रसंग-विध्वंस, यथा—(कवित्त)

कोकनि को कारिका कहति काहू सारिका सों
दुरि दुरि हित चित चौगुनो चढ़ायो है ।
सूकि रही सकुचानि बापुरी सुकी तौ, कहि
काहू सों सकै न देह दुखनि डढ़ायो है ।
उठि चलौ न्याउ कीजै अबकै मनाइ दीजै,
नीकै ही में 'केसोदास' कलह बढ़ायो है ।
मानत न एते पर उलटी मनावै वह,
ऐसो ही सयान स्याम सुकहिँ पढ़ायो है ॥२५॥

(दोहा)

देस काल बुधि बचन तें कल घुनि कोमल गान ।
सोभा सुभ सौगंध तें, सुख ही छूटत मान ॥२६॥

यथा—(कवित्त)

घननि की घोर सुनि, मोरनि को सोर सुनि,
सुनि सुनि 'केसव' अलाप अलीजन को ।
दामिनी दमक देखि देह की दिपति देखि,
देखि सुभ-सेज देखि सदन सु बन को ।
कुंकम की बास घनसार की सुवास भयो,
फूलनि की बास, मन फूलि कै मिलन को ।
हँसि हँसि बोले दोऊ, अनहीं मनाएँ मान
छूटि गयो एकै बार राधिकारमन को ॥२७॥

(दोहा)

इहि बिधि मान छुड़ावहीं, आपुस में नर नारि ।
पल पल प्रीति बढ़ावहीं, 'केसवदास' बिचारि ॥२८॥
प्रिया न प्रीतम सों करै, अति हठ 'केसवदास' ।
बहुखौ हाथ न आवई, जौ है जाइ उदास ॥२९॥

[१५] चढ़ायो-बढ़ायो (रस०) । सूकि-सोचि (बाल०) । डढ़ायो-बढ़ायो (बाल०);
उठायो (नवल०) । नीकै ही-नेकही (बाल०, नवल०) ।

[२७] सदन-सुंदर (नवल०) । गयो०-गौ एकहि (रस०) ।

बारहिं बार न कीजई, बारक कीजै मान ।
 कहि 'केसव' ज्यो आप में, सदा बदै सनमान ॥३०॥
 प्रीति बिना भय होय नहिं, भय बिनु होइ न प्रीति ।
 प्रीति रहे जहँ भय रहै, यहै मान की रीति ॥३१॥
 गर्ब, व्यसन, धनत्याग तैं, निष्ठुर बचन प्रवास ।
 लालच बिप्रियकरन तैं, पिय तैं होइ उदास ॥३२॥
 मान बिबिध बरने बिबुध, जहाँ बिबिध बुधिवास ।
 'केसव' करुना करि कछु कहियत विरह-प्रवास ॥३३॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारहंद्रजोतसिंहविरचितयां रसिकप्रियायां
 विप्रलंभशृंगारमानमोचनं नाम दशमः प्रभावः ॥१०॥

११

अथ करुणा-विरह-लक्षण—(दोहा)

छूटि जात 'केसव' जहाँ सुख के सबै उपाय ।
 करुना रस उपजत तहाँ, आपुन तैं अकुलाय ॥१॥
 सुख में दुख क्यों बरनियै, यह बरनत ब्योहार ।
 तदपि प्रसंगहि पाय कछु, बरनत मति-अनुसार ॥२॥

अथ राधिकाजू को प्रच्छन्न करुणा-विरह, यथा—(सवैया)

मैं पठई मति लेन सखी सु रही मिलि कै मिलिबे कहँ आनै ।
 जाइ मिलैं दिन ही दृग-दूत दयाल सों देह-दसा न बखानै ।
 प्रेरत पैज किये तन प्राननि जोग के और प्रयोग निदानै ।
 लाज तैं बोलन पाऊँ न 'केसव' ऐसैं ही कोऊ कहा दुख जानै ॥३॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश करुणा-विरह, यथा—(कवित)

हरित हरित हार हेरत हियो हरत,
 हारी हौं हरिननैनी हरि न कहूँ लहौं ।

[३२] करन तैं—करन तिय (बाल०, रस०) ।

[३] निदानै—निधानै (रस०); निधानै (नवल०) ।

बनमाली ब्रज पर बरषत बनमाली,
बनमाली दूरि दुख 'केसव' कैसें सहौं।
हृदय-कमल नैन देखि कै कमलनैन,
होहुगी कमलनैनि और हैं कहा कहौं।
आप घने घनस्याम घनहीं से होत घन,
सावन के दौस घनस्याम बिनु क्यों रहौं ॥४॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न करुणा विरह, यथा—(कवित्त)

जैसें मिल्यो प्रथम श्रवन-मग जाइ मन,
रवन भवन कीने अलिक अलक में।
मनु मिलें मिले नैन 'केसोदास' सबिलास,
छबि-आस भूलि रहे कपोल-फलक में।
नैन मिलें मिल्यो ज्ञान सकल सयान सजि,
तजि अभिमान भूल्यो तन की मलक में।
तैसें छल बल साधि राधिकै मिलन कहैं,
चाहत कियो पयान प्रानहूँ पलक में ॥५॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश विरह, यथा—(सवैया)

है तरुनाई तरंगिनि-पूर अपूरब पूरब राग रंगे पय।
'केसवदास' जिहाज मनोरथ सभ्रम बिभ्रम भूरि भरे भय।
तर्क-तरंग-तरंगित तुंग तिमिगिल मूल बिसालनि के चय।
कान्ह कछु करुनामय हे सखि ते ही किये करुना-बरुनालय ॥६॥

अथ प्रवास विरह-लक्षण—(दोहा)

'केसव' कौनहु काज तैं पिय परदेसहिं जाइ।
तासें कहत प्रवास सब कवि कोषिद समुझाइ ॥७॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न प्रवास विरह, यथा—(सवैया)

तू करिहै कब धौं कहि गौनहिं नंदकुमार तौ गौन कियौई।
मोहि महा डरु तो घर को न रहै लटि लै जिनि कोधौं लियौई।

[४] सावन-स्यामनि (बाल०, रस०)।

[५] जैसे-ऐसे (नवल०)।

[७] 'बाल०' में संख्या ७ के अनंतर यह छंद अधिक है—

जाने कहा मेरी दीरघ साँस लै नैन नवाइ दुकाइ ब्याहू।
माथो न दूखिहै सुखो निहारौ पलारौ नहीं मुखु जो न अन्हाहू।
ऐसें ही 'केसव' क्यों रहे प्रान सु आपनी पीर सुनावहु काहू।
कै डुती मोरी कि भोबनौ छाड़थो तौ पान्यो न पीवो जो पान न लाहू ॥

ऐसी न बूझियै 'केसव' तोहि बिचारै जु बीच बिचार बियौई ।
तेरे ही जीय जियै जिनको जिय रे जिय ! ता बिनु तूख जियौई ॥८॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश प्रवास विरह-वर्णन, यथा—(कवित)

कौन के न प्रीति, को न प्रीतमहिं बिछुरत,
या ही के अनोखो पतिव्रत गाइयतु है ।
'केसोदास' जतन किये ही भले आवै हाथ,
और कहा पच्छिनि के पाछे धाइयतु है ।
उठि चलि जौ न मानै काहू की बलाइ जानै,
मानसै जु पहिचानै ताके आइयतु है ।
याके तौ है आजु ही मिलौ कि मरि जाऊँ ऐसे,
आगि लागे मेरी माई मेहु पाइयतु है ॥९॥

श्रीराधिकाजू को विरह-भय-विभ्रम, यथा—(सवैया)

कोकिल केकी कुलाहल हलि उठी उर में मति की गति लली ।
'केसव' सीत सुगंध समीर गयो उड़ि धीरज ज्यों तन तूली ।
जै मुनि जै मुनि कै बची जोन्ह की जामिनी पै न अजौ सुधि भूली ।
क्यों जियौ कैसी करौ बहुखौ बिसु सी बिसनी बिसवासिनि फूली ॥१०॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न प्रवास-विरह, यथा—(सवैया)

जिनि बोलि सुबोल अमोल सबै अँग केलि-कलोलनि मोल लिये ।
जिनिको चित लालची लोचन रूप अनूप पिपूष सु पीय जिये ।
जिनिके पद 'केसव' पानि छिये सुख मानि सबै दुख दूर किये ।
तिनको सँग छूटत हौं फिटु रे फटि कोटिक दूक भयो न हिये ॥११॥

श्रीकृष्णजू को विरह प्रकाश प्रवास, यथा—(सवैया)

'केसव' क्यों हूँ चले चलि कोरि सँदेस कहे फिरि पैड़क दूर पर ।
आगे धरे अपनो सो कै साहस पाछे हौं पेलि परै पग भू पर ।
होत जहीं तहीं ठाढ़े ठगे से 'चलौ' न कह्यो परै कान्ह हितू पर ।
लोक की लाज फिखो न परै, पै मिलान करै अधकोसक ऊपर ॥१२॥

श्रीकृष्णजू को विरह-भय-विभ्रम, यथा—(सवैया)

प्रेत की नारि ज्यों तारे अनेक चढ़ाह चले चितवै चहुँघाँ तो ।
कोदिनि सी ककुरे कर-कंजनि 'केसव' सेत सबै तन तातो ।

[८] कव-कहि (बाल०) ।

[९] किये ही-कैं ही (नवल०) । मानसै-मानुसै (बाल०) ।

[११] छिये-छवै (बाल०) ।

भेटत हौं बरहौं अबही तौ बखाइ गई ही सुखै सुख सातो ।
कैसी करौं कहि कैसें बचौं बहुखो निसि आई किये मुहँ रातो ॥१३॥

श्रीराधिकाजू की निद्रा, यथा—(सवैया)

आएँ तें आवैगी आँखिनि आगें ही डोलिहै मानहु मोल लई है ।
सोवै न सोवन देइ न यों तब सोवन में उन साथ दर्ई है ।
मेरियै भूलि कहा कहौं 'केसव' सौत कहूँ तें सहेली भई है ?
स्वारथ ही हितु है सबकें परदेस गएँ हरि नौंदौ गई है ॥१४॥

श्रीकृष्णजू की निद्रा, यथा—(सवैया)

'केसव' कैसहुँ कोरि उपाइन आनि सु तौ उर लागति है ।
चकचौँधत सी चितवै चित में चित सोवत हूँ महुँ जागति है ।
परदेस प्रिया पल मोहिं पत्याति न जानै को याकी कहा गति है ।
तजि नैननि नौंद नवाढ़ बधू लहुँ आधिक राति तें भागति है ॥१५॥

श्रीराधिकाजू की सखी की पत्नी, यथा—(सवैया)

'केसव' कुँवरि ! वृषभान की कुँवरि आजु
देवता ज्यों वन उपवन बिहरति है ।
कमला ज्यों थिर न रहति कहूँ एक छिन
कमलाम्रजा ज्यों कमलानि तें डरति है ।
कली ज्यों न केतकी के फूल रुचै, सीता जू ज्यों
निसिचर-मुख तिन देखे ही जरति है ।
बदन उचारत ही मदन सुयोधन हीं
द्रौपदी ज्यों नाम मुख तेरो ही करति है ॥१६॥

पुनर्यथा—(कवित्त)

भौरिनी ज्यों भवत रहति बन-बीथिकानि,
हंसिनी ज्यों मृदुल मृनालिका बहति है ।
पीउ पीउ रटति रहति चित चातकी ज्यों,
चंद चितै चकई ज्यों चुप है रहति है ।

[१२] 'बाल०' में छंदसंख्या १२ के बाद यह दोहा अधिक है—

खान पान परिधानु पुनि जान जान दुति अंग ।
सुभ संजोग बियोगु बिनु मानौ सुख तिअ भंग ॥

[१४] मेरियै—मेरि सौँ (बाल०) ।

[१६] आजु—वन (नवल०, बाल०) । छिन—ठौर (नवल०) । डरति—दुरति (रस०) ।
रुचै—सुँघै (नवल०) ।

हरिनी ज्यों हेरति न केसरि के काननहि
 केका सुनि ब्याली ज्यों बिलान हीं चहति है ।
 'केसव' कुँवर कान्ह बिरह तिहारे ऐसी,
 सूरति न राधिका की मूरति गहति है ॥१७॥

श्रीकृष्णज की सखी की पत्री, यथा--(कवित्त)
 दीरघ दरीनि बसैं 'केसोदास' केसरी ज्यों
 केसरी को देखि बन करी ज्यों कपत हैं ।
 बासर की संपदा छलूक ज्यों न चितवत
 चकवा ज्यों चंद चितै चौगुनो चपत हैं ।
 केका सुनि ब्याल ज्यों बिलात जात घनस्याम,
 घननि की घोरनि जवासे ज्यों तपत हैं ।
 भौर ज्यों भँवत बन जोगी ज्यों जगत रैन
 साकत ज्यों स्याम नाम तेरोई जपत हैं ॥१८॥

(दोहा)

'केसवदास' प्रवास को कछो जथामति साज ।
 राधा हरि बाधाहरन बरनौ सखी-समाज ॥१९॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
 संभोगशृंगारप्रवासवर्णनं नामैकादशः प्रभावः ॥ ११ ॥

१२

अथ सखी-वर्णन--(दोहा)

धाइ, जनी, नाइन, नटी प्रगट परोसिनि नारि ।
 मालिनि बरइनि सिलिपनी चुरिहेरनी सुनारि ॥१॥
 रामजनी संन्यासिनी पटु पटुवा की बाल ।
 'केसव' नायक-नायिका सखी करहिं सब काल ॥२॥

धाइ को वचन राधिका सौं, यथा--(सवैया)

मोहन-साथ कहा निसि द्यौस रहै सतरंजहि के मिस बैठी ।
 'केसव' क्योंहूँ सुनै महितारी तौ राखहि री ! घर ही मह पैठी ।

[१७] बहति--चहति (नवल०) ।

[१८] साकत चातक (नवल०) ।

हौं सिखऊँ सुखदै सिख तोहि तें भौह चढ़ाइ कै ढीठि अनेठी ।
को न लड़ैती सरूप न काहि तुहीं कछु जाति अकासहिं ऐंठी ॥३॥

धाइ को वचन कृष्ण सों, यथा--(कवित्त)

थोरी सी सुदेस बैस दीरघ नयन केस,
गौरा जू सी गोरी भोरी भवजू की सारी सी ।
साँचे की सी ढारी अति सूछम सुढार कटि,
'केसोदास' अंग अंग भाइ कै उतारी सी ।
सौँधे कैसी सौँधी, देह सुधा सों सुधारी, पाइ
धारी देवलोक तें कि सिंधु तें उधारी सी ।
आजु यासों हँसि खेलि बोलि चालि लेहु लाल
काल्हि ऐसी ग्वालि लाऊँ काम की कुमारी सी ॥४॥

जनी को वचन राधिका सों, यथा--(कवित्त)

सोभा को सघन बन मेरो घनस्याम नित,
नई नई रुचि तन हेरत हिराइयै ।
'केसोदास' सकल सुवास को निवास करि
बिबिध बिलास हास त्रास बिसराइयै ।
ऊख-रस केतक महुख-रस मीठो है
पियूष हू की पैली घाँ है जाको नियराइयै ।
चोरीचोराँ नैननि चुराएँ सुख कौन जौ लौँ
पिय-मन माँहिं मन मेलि न चराइयै ॥५॥

जनी को वचन श्रीकृष्ण सों, यथा--(कवित्त)

ऐसी बातें ऐसे ही धौँ कैसेँ कै कही परति,
जाकी मति-गति लाज-पट सों लपेटी है ।
मेरेँ ही न आवै, मेरी बीर पती बेर बे तौ
जानति हौँ धाइ ही के साथ लोटि लेटी है ।
ऐसी तौ है चेरिन की चेरी वाकी 'केसोदास'
जैसी तुम हा हा करि पाइ परि भेटी है ।
जानति हौँ नंदजू के ढोटा हौ जू, जानें बोल
उतहिं वेऊ तौ बृषभानजू की बेटी है ॥६॥

[३] सुखदै-सिखदै (नवल०, बाल०) । अनेठी-अमंठी (रस०) ।

[४] सुढार-सुधारि (रस०, नवल०) । कटि-कढ़ी (नवल०) ।

[६] पट-पाट (बाल०, रस०) । जानति हौँ-जात धाइ ही के घर साथ लौटि लेटी है (नवल०) । दोय-बेया (बाल०) । बोल-बाहु (बाल०) ।

नाइनि को वचन राधिका सों, यथा—(सवैया)

अब ही तौ गए उठि पौरहूँ लौं न पै बोलन जाहि री पीछहि लागें ।
करिहौ तब कैसी पराए जु ढोटहि हैहै कछू निसिद्यौस के जागें ।
जौ न रहौ परै 'केसव' कैसहुँ देखतही सुख स्याम सभागें ।
देती हौ जान क्यों राखत काहे न आरसीयै करि आँखिन आगें ॥७॥

नाइन को वचन कृष्ण सों, यथा—(सवैया)

बड़ी जिय लाज बड़ो उर आली बड़ी लहुरीयौ चलै चित लीनें ।
बड़ी बड़ी आँखि, बड़ी छवि सों चितवै बड़ि बेर बड़ो सुख दीनें ।
बड़े ही बिचार बड़ी रुचि 'केसव' क्यों हूँ मिलै तौ मिलै हमहीनें ।
बड़ीनि हूँ सों तौ बड़े दुख बोलै, इतै बड़े मान बड़ो मन कीनें ॥८॥

नटी को वचन राधिका सों, यथा—(सवैया)

जौ हौं दिखावन तोहि गई री तैं मेरियै प्रीवैं गही फिरि माई ।
आजु कहा दिखसाध लगी है दिखाऊँगी जाइ तौ बेई कन्हाई ।
देखे तैं सीरी हैं जाति भट् अनदेखें जरै तु यहै अधिकारी ।
राति की वे गति द्यौस की ए अब हौं तेरी बातनि बाजहि आई ॥९॥

नटी को वचन कृष्ण सों, यथा—(कवित्त)

जहाँ जहाँ दुरै तहाँ जोन्ह ऐसी जगमगै
कैसेँ हूँ जु 'केसव' दुराऊँ लियेँ रंग की ।
पवन के पथ अलि, अलिनि के पीछेँ आली,
अलिनी ज्यों लागी फिरै जिन्हें साध संग की ।
निपट अमिल वह तुम्हें मिलिबेँ की जक,
कैसेँ कै मिलाऊँ गति मोपै न बिहंग की ।
इक तौ दुसह दुख देति हुती दुति दूजें,
बीस बिसे बिसु भई बास वाके अंग की ॥१०॥

परोसिन को वचन राधिका सों, यथा—(सवैया)

पाइ परेँ पलिका परस्यो सु लगी रति तोलन मेलि रती हो ।
सौहैं कियेँ मुँह सौहैं कियो अब लौं तुम पै गति ऐसी न ती हो ।

[७] उठि-पुनि (बाल०, नवल०) । सुख-मुख (बाल०) ।

[८] तौ मिलै-जौ कहूँ (बाल०); सु बड़ी (नवल०) ।

[९] ए अब-वे गति (रस०); ए पुन (नवल०) । बातनि-बालनि (नवल०) ।
बाजहि-बाजिनि (नवल०) ।

[१०] लिये-ल्याऊँ (नवल०) । बिसु भई बास-बिसु बास भई (बाल०, नवल०) ।

‘केसव’ कैसेहुँ देखन कोँ तिनहँ भोरहँ भोरी है आनि दती हो ।
पान खवावत हीँ तिन सों तुम राति कहा सतराति हती हो ॥११॥

परोसिन को वचन कृष्ण सों, यथा—(सवैया)

हाँसी में बातक वासों कही हँसि वे हूँ कही सु हितै करि लेख्यो ।
आँखें मिली न मिली सखियाँ मिलबोई सु ‘केसव’ क्यों अवरेख्यो ।
चिन्त्याइ मरै चुप साधे कि चातक स्वाति समें ही सवै सु बिसेख्यो ।
आजु हीँ क्यों वह आवै इहाँ जिनि अगि लगो हूँ न आँगन देख्यो ॥१२॥

मालिन को वचन राधिका सों, यथा—(कवित)

दुरिहै क्यों भूषन बसन दुति जोवन की
देह ही की जोति होति द्यौस ऐसी राति है ।
नाह को सुवास लागेँ हैहै कैसी ‘केसव’
सुभाव ही की बास भौरँ भीर फारे खाति है ।
देखि तेरी मूरति की मूरति बिसूरति हौँ
लालन को दृग देखिबे कोँ ललचाति है ।
चलिहै क्यों चंदमुखी कुचनि के भार भएँ
कचनि के भार तौ लचकि लंक जाति है ॥१३॥

मालिन को वचन श्रीकृष्ण सों, यथा—(कवित)

घेरौ जिनि मोहि घर जान देहु घनस्याम,
घरिक में लागी उर देखिबी ज्यों दामिनी ।
होइ कोऊ ऐसी वैसी आवै इत उत है कै
वह बृषभानजू की बेटी गजगामिनी ।
आदित को आयो अंत, आवौ बलि बलि जाउँ
आवती हँ वेऊ बनी आई बनि जामिनी ।
काम के डरनि तुम कुंज गह्यो ‘केसोदास’
भौरँन के भय उन मौन गह्यो भामिनी ॥१४॥

बरहनि को वचन राधिका सों, यथा—(कवित)

मैन ऐसो मन मृदु मृदुल मृनालिका के
सूत ऐसे सुर धुनि मनहि हरति हँ ।
दाखो कैसे बीज दाँत, पात से अरुन ओठ
‘केसोदास’ देखि दृग आनँद भरति हँ ।

[१२] सवै-सवै (रस०) ।

[१३] सुभाव-सुवास (नवल०) ।

[१४] बनि जामिनी-अरु जामिनी (नवल०) ।

परी मेरी तेरी मोहि भावति भलाई तातें
 ब्रूमति हौं तोहि और ब्रूमत डरति हैं ।
 माखन सी जीभ, मुख कंज सो कोवर कहु
 काठ सी कठेठी बातें कैसें निकरति हैं ॥१५॥
 बरइनि को वचन कृष्ण सों, यथा—(कवित्त)

नैननि नवाबौ नेक अति ही अनीति करें
 जानत न तुम जैसे ब्रज जानियत हैं ।
 चंचल चरित्र चित चेटक चटक लावौ
 चेरे कै चितनि अभिसार सौंपियत हैं ।
 एकनि के पैठे उर उररि उरोजन में
 उर डोलें 'केसोदास' कैसें वै जियत हैं ।
 ऐसी कहूँ होति है जो बालनि के चोरि चोरि
 मन मनमथ ही के हाथ बेचियत हैं ॥१६॥

शिल्पिनी को वचन राधिका सों, यथा—(सबैया)

अबहीं पुनि बोलि री बोलि, लगी जक पौरिहूँ लौं उठि जान न दीने ।
 मेरे ही जान भई उलटी तुमहीं बस 'केसव' वे कहँ कीने ।
 जौ तौ इतौ दुख पावति हौ तलफें दग मीन मनो जल भीने ।
 तौ कत छाड़ति हौ छिन एक रहौ किनि चित्र ज्यो हाथहिं लीने ॥१७॥

शिल्पिनी को वचन कृष्ण सों, यथा—(सबैया)

खोट तुरी जिमि खूँट रहौ गहि ठौर कुठोरनि जानिहू जाहू ।
 लाज न आवति मारें समाजन लागें अलोक के ताजन ताहू ।
 कोरि बिचार बिचारहु 'केसव' देखहु ब्रूमि हितू सब काहू ।
 नेह ही के फिरि लागिहो संग न नैननि के संग और निबाहू ॥१८॥

चुरिहारिन को वचन राधिका सों, यथा—(कवित्त)

मन मन मिलें कहा मिलिहै मिले को मुख,
 मिलिहू धौं देखहु बोलाइ काहू बाल सों ।

- [१५] ऐसे-कैसे (बाल०, रस०) । तातें-यातें (रस०) । कोवर-कोमल (रस०) ।
 [१६] चेटक०-चेटकी चेटका जायो (नवल०) । चेरे कै-चोरिकै (नवल०) ।
 उररि-उर्राभि (बाल०) । वे जियत हैं-ति जियतु है (बाल०) । ही के-चाक
 (बाल०) ।
 [१७] उलटी तुमही बस-उलटी बस (नवल०) । वे कहँ कीने-हैं कहिबे कह कीने
 (नवल०) । पावति-देखति (रस०) । भीने-हीने (रस०, नवल०) ।
 [१८] खोट-खाट (बाल०) । लाज-लाल (नवल०) । समाजन-समाजन (बाल०) ।

भूलि परे भौहनि हौं बाँधिहौं कितेक दिन,
 बाँधौ बलि जाउँ बनमाली बनमाल सों।
 मुहुँ मोरें मारें न मरति रिस 'केसोदास'
 मारहु धौं मेरे कहें कमल सनाल सों।
 नैननि ही बिहसि बिहसि कौ लौं बोलिहौ जू,
 कबहुँ तौ बोलियै बिहसि मुख लाल सों ॥१६॥

चुरिहेरिन को वचन कृष्ण सों, यथा—(सवैया)

आपु न हूँ जै दुखी दुख जाके सु ताहि कहा कबहुँ दुख दीजै।
 जा बिन और सुहाइ न 'केसव' ताहि सुहाइ सु तौ सब कीजै।
 भाग बड़े जु रची तुम सों वह तौ बिभकाइ कहौ कह लीजै।
 जौ रिस जाइ तौ जैयै मनावन, तातो है दूध सिराइ तौ पीजै ॥२०॥

सुनारिन को वचन राधिका सों, यथा—(सवैया)

लोल अमोल कटाछ कलोल अलोलिक सों पट ओलि कै केरे।
 पानिप सों अति पैने रसाल बिसाल बने मनभावते मेरे।
 'केसव' चीकने चौगुने चोखे चितै कै भए हरि न्यायनि चेरे।
 सोच सकोचन श्रीरति-रोचन धीरज-भोचन लोचन तेरे ॥२१॥

सुनारिन को वचन कृष्ण सों, यथा—(कवित्त)

हाँसी में हँसे तें हरि हरे कै झुकति मन-
 हारि कै हँसति, हेरि हियें अनुरागी है।
 प्रेम की पहेली गूढ़ जानत जनावतहाँ
 आजु अधरातक लौं मेरे सँग जागी है।
 अब लौं ज्यों धरी धीर तैसें दिन द्वैक और
 धरौ, गिरिधर तुम तें को बड़भागी है।
 भावती तिहारी वह काल्हि ही तें 'केसोराइ'
 काम की कथानि कछू कान देन लागी है ॥२२॥

रामजनी को वचन राधिका सों, यथा—(कवित्त)

कोमल कमल वे तौ अमल ये तिह चल,
 मलिन नलिन नवनील के से पात हैं।
 सूखे साधु सुद्ध वे तौ कुटिल प्रसिद्ध ये तौ
 'केसव' परम चोर परम किरात हैं।

[१६] मन—नाम (नवल०)। केसोदास—प्यारे लाल (बाल०)।

[२०] बिभकाइ—विरचाइ (बाल०, रस०)।

[२२] हँसे तें—भक्ते तें (रस०)। हरे कै—हरि कै (रस०, नवल०)। हारि कै—हरि कै (रस०)।

पाइहैं पकरि तब पाइहैं न कैसें हू तू
 थोरो इठलाति ये तौ अति इठलात हैं ।
 बरजति क्यों न तो सों कब की कहति मेरे
 मोहन के नैन तेरे नैन छवै छवै जात हैं ॥२३॥

रामजनी को वचन कृष्ण सों, यथा—(सवैया)
 कौनहूँ तोष कहा भयो 'केसव' कामिनि कोटिक सों हित ठाँटे ।
 रंच न साध सधै मुख की बिनु राधिकै आधिक लोचन डाँटे ।
 क्यों खरी सीतल बास करै मुख जौ भखियै घनसार के साँटे ।
 लालच हाथ रहै, ब्रजनाथ पै प्यास बुझाह न ओस के चाँटे ॥२४॥

संन्यासिनी को वचन राधिका सों, यथा—(कवित्त)
 छूटे न छुटाएँ जब करिहौ घौँ कैसी बात
 'केसोदास' अनयास प्यास भूख भागिहै ।
 खेल भूलि जाइगो, जुड़ाइगो न चित्त चेति,
 कछु ना सुहाइगो री रैन दिन जागिहै ।
 ताते तें तपति दूनी सीरे तें सहसगुनी
 उपजि परैगी वर ऐसी और आगि है ।
 ऐंड सो ऐंडाइ जिनि अंचलु उड़ात, ओली,
 ओड़ति हौँ, काहू की जु डीठि उड़ि लागिहै ॥२५॥

संन्यासिनी को वचन कृष्ण सों, यथा—(कवित्त)
 सीतल हू हीतल तिहारें न बसति वह
 तुम न तजत तिल ताको वर ताप-गेहु ।
 आपनो ज्यौ हीरा सो पराएँ हाथ ब्रजनाथ
 दै कै तौ अकाथ हाथ मै न ऐसो मन लेहु ।
 पते पर 'केसोदास' तुम्हें ना प्रवाह वाहि
 वहै जक लागी, भागी भूख सुख भूल्यौ देहु ।
 माढ़ो मुख, छाड़ै छिनु छल न छबीले लाल
 ऐसी तौ गँवारिनि सों तुमहीं निबाहौ नेहु ॥२६॥

[२३] कमल—अमल (बाल०, रस०, नवल०) । प्रसिद्ध—करम (बाल०, रस०, नवल०) । चोर परम—चोर मरम (बाल०, रस०) । तो सों—तू हो (रस०) । मोहन के नैन—मोहन के मने (बाल०, रस०, नवल०) ।

[२४] जौ भखियै—जोर भखी (बाल०, रस०) ।

[२५] बात—तब (नवल०) । भागिहै—लागिहै (बाल०) । जुड़ाइगो न—जुड़ाइगो री (बाल०) ।

[२६] हाथ—साथ (बाल०, रस०) । मै न ऐसो—मालिन सो (बाल०) । माढ़ो—माँचो (नवल०) ।

पटङ्गि को वचन राधिका से, यथा—(सवैया)

याही कौ मेरी गुसाईनि में मिलई पहिले बतियाँ छलि छैलो ।
बाते मिलै आँखियाँ मिलई सखियानि के आँखिन पारि कै ऐलो ।
आँखि मिले मुहुँ लागि रहै मनु लेहु मिलै अब गहँ हम गैलो ।
मिले मन माई कहा करिहौ मुँह ही के मिले तौ कियो मन मैलो ॥२७॥

पुनः (सवैया)

गेह की नेह की देह की दीबे की भूषन की जिन भूख भगाई ।
मोहिँ हँसी दुख दोऊ दई तिनहौँ सो जनावति है चतुराई ।
'केसवदास' बड़ाई दई तौ कहा भयो जाति-सुभाव न जाई ।
सोने सिंगारहु सोधे चढ़ावहु पीतर की पितराई न जाई ॥२८॥

पटङ्गि को वचन कृष्ण से, यथा—(सवैया)

वा मृगनैनो ज्यों औरन हीं जु लगावत हौ मुहँ ऐसे न हूजै ।
सोनेई सोसु जु पीतर होइ तौ 'केसव' कैसहुँ हाथ न छूजै ।
आप गिरा गुन जौ सिखवै तऊ काकन कोकिल ज्यों कल कूजै ।
सुंदर स्याम बिराम करौ कलु आम की साध न आमिली पूजै ॥२९॥

(दोहा)

बैन ऐन-सुख मैन करि कहे सखिन के धर्म ।
'केसव' कहाँ कलूक अब, तिनके कोबिद कर्म ॥३०॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां

सखीजनवर्णनं नाम द्वादशः प्रभावः ॥ १२ ॥

१३

अथ सखीजन-कर्म-वर्णन—(दोहा)

सिद्धा, बिनय मनाइबो, मिलिबो करि सिंगार ।
मुकि अरु देइ उराहनो यह तिनके व्योहार ॥३१॥

[२७] मुहुँ-मनु (रस०) । लागि रहै-सौँ मिलिहै (बाल०) ।

[२८] भगाई-भराई (नवल०) । चढ़ावहु-बिनायन (बाल०) ।

[३०] धर्म-नर्म (बाल०) ; कर्म (रस०) ।

राधिका से शिद्दा-(सवैया)

नाह लगेँ सुख सौति दहेँ दुख 'नाहिँ' लगेँ दुख देह दहैगो ।
 'नाहीं' अब सुख देति है 'केसव' नाह सदा सुख देत रहैगो ।
 'नाहीं' तेँ नाहीं री नाहीं भलाई भली सब नाह ही तेँ पै कहैगो ।
 नाह सोँ नेह निबाहि बलाइ ल्यौँ 'नाहीं' सोँ नेह कहाँ निबहैगो ॥२॥

कृष्ण की शिद्दा-(कवित्त)

कुंकुम चबटि कुमकुमा के न्हाइ जल
 सोंधो सिर लाइ याहि लाए कहा रास में ।
 चंदन चढ़ाइ फूल-माल पहिराइ भूलि
 बे ही काज आँजि माँजि कीनी है प्रकास में ।
 'केसव' कपूर पूरि काहे कौँ खवावौ पान
 जौ पै मन भगन है ऐसे ही बिलास में ।
 बाही न मनावौ हरि हाहा करि पाइ परि
 सबही सुवास बसै जाके मुखबास में ॥३॥

राधा की विनय-(सवैया)

ऐसेँ ही क्यों चुप है रहिहौँ सखि हौँ सहिहौँ सतराहत सौ लों ।
 क्यों सरिहै मिलिबे बिन तोहि तऊ मिलियै मिलियै दिन जौ लों ।
 'केसव' कोरि करौ उपचार मिले को कहा मिलिहै सुख तौ लों ।
 देखि धौँ अंगनि आरसी लै मिलिहै पिय सों मनहीं मन कौ लों ॥४॥

कृष्ण से विनय-(कवित्त)

कंज के से फूल नैन दाख्यौँ से दसन ऐन
 बिब से अधर हास सुधा सो सुधाख्यो है ।
 बँनी पिकबँनी की त्रिबँनी सी बनाइ गुही
 बार कै सेवार करिहाँ कौँ करि हाख्यो है ।
 कीने कुच अमल कलपतरु के से फल
 'केसोदास' यातें बिधि सुगध बिचाख्यो है ।
 देखौ न गुपाल सखी मेरी को सरीर सब
 सोने सों सँवारि सब सोंधे सों सँबाख्यो है ॥५॥

[२] बलाइ ल्यौँ-री बावरी (बाल०) ।

[५] कंज-सुख (रस०) । बिब-लाल (बाल०, रस०) । गुही-बीर (बाल०) । बार कै सेवार-घार से बारीक (बाल०) ; बारिक बारि सों (रस०) । सब सोंधे-मानो मैन (बाल०) ; मन मैन (रस०) । सँबाख्यो-सुबाख्यो (बाल०) ।

राधा को मनाइबो—(सवैया)

‘नाहीं’ सिखावतिं नाहीं भली सखि पावक सों तिनको मुँह ढाढ़ौ ।
भौंहनि के मुलबौ भट्ट भावनि नैननि के मत सों हित ढाढ़ौ ।
कालि तैं कालि कै होन दर्ई हँसी, पाई परौ न परौ मुँहु ढाढ़ौ ।
राजु करौ यह राजु सदा रहै ‘केसव’ चित्र ज्यो आगे ही ठाढ़ौ ॥६॥

पुनः—(सवैया)

रीफि रिफाई झरोखनि फाँकि रही मुख देखि दिखाई सुभाहीं ।
बोलन आएँ अबोली भई अब ‘केसव’ ऐसी हमें न सुहाहीं ॥
मैं बहुतै बहराई हँ तो सी री तू बहरावति मोहि बृथाहीं ।
एहीं सयान सदा चलिहौ हरि सों हँसि ‘हाँ’ करै मोही सों नाहीं ॥७॥

कृष्ण को मनाइबो—(सवैया)

भूषन-भेद बनाइ कै ‘केसव’ फूल बनाइ बनाइ कै बागे ।
भाग बढ़ाई सुहाग बढ़ाई कै राग बढ़ाई हियेँ अनुरागे ॥
पाइनि लागत, सोंधो चढ़ावत पान खवावतहीं निसि जागे ।
कान्ह चलौ उठि बैठे कहा ? मन मूसि परायोऽब रुसन लागे ॥८॥

राधा को मिलैबो—(सवैया)

दुर्लभ देवनि हूँ कों सु तौ हरि को मन हाँसिन ही हरि लीनो ।
दारहु जें हिय तें कबहूँ अब ज्यो गुरु को दियो मंत्र प्रवीनो ।
क्षेति लियो तौ न देत दियो अब मानहु ता दिन दुख्ख नवीनो ।
माँगन आवै तौ दीजै भट्ट अपनो मन, जौ वह जाइ न दीनो ॥९॥

पुनः यथा

आजु देवारि की राति जौ कीजै तौ आजु के घोस लौं हैहै सभागी ।
बात सुनी जननी पै जबै तब ही मति मान की नौद तें जागी ।
अंग सिंगारि निहारि निसा तिन चित्त बिहारनि सों अनुरागी ।
दीप दै देवनि जाइ जुवा मिलि ‘केसवराइ’ सों खेलन लागी ॥१०॥

राधिका को मिलैबो—(कवित)

जौ हौं गनौं औगुननि तौ तू गनै गुन गन
जौ हौं गनौं गुन तौ तू औगुन के गन में ।

[३] पावक—जावक (बाल०) । न परौ तनप्यौ (नवल०) । यह छंद रस० में नहीं है ।

[८] चढ़ावत—लगावत (बाल०, नवल०) ।

[९] मन—पुन (बाल०) । हरि—हठि (नवल०) । मानहु—मानिहो (बाल०) । यह छंद रस० में नहीं है ।

[१०] यह छंद रस० में नहीं है ।

‘केसोदास’ ऐसैं प्रीति छिपावति छलनि में
 जैसें छनछवि छूटै छिपै जाइ घन में ।
 भारी है निठुर निसि भादों की भयावनी में
 सु क्यों बसै घर जाको पीउ बसै बन में ।
 बैठे तैं उठावै, उठि चले तैं मचलि रहै,
 सोई मेरी क्यों न कहै जोई तेरे मन में ॥११॥
 कृष्ण को मिलैबो—(कवित्त)

सिलै हारी सखी डरपाइ हारी कादंबिनी
 दामिनी दिखाइ हारी दिसि अधरात की ।
 मुकि मुकि हारी रति मारि मारि हाखो मार
 हारी झकझोरत त्रिविध गति बात की ।
 दई निरदई दई याहि काहे ऐसी मति
 जारति जु रैन दिन दाह ऐसे गात की ।
 कैसैं हूँ न मानै हौं मनाइ हारी ‘केसोदाइ’
 बोलि हारी कोकिला बुलाइ हारी चातकी ॥१२॥
 राधिका को शृंगार—(सवैया)

दीनो में पाइ मँवाइ महावर आँज्यो में आँजन आँखि सुहाई ।
 भूषन भूषित कीने में ‘केसव’ माल मनोहर में पहिराई ।
 दर्पन लै अब दीपति देखि सखी, सब अंग सिंगारि सिधाई ।
 बंक बिलोकनि अंक लै पान खवावै को कान्ह-कुमार की नाई ॥१३॥

कृष्ण को शृंगार—(सवैया)

पाग बनी अरु बागो बन्यो बटुवा पटुका कटि राजत नीको ।
 सोंधो बन्यो अति चारु, मनोहर हार बन्यो हर भावतो जी को ।
 बीरा बन्यो मुख खात मनोहर मोहिं सिंगार लग्यो सब फीको ।
 भाल भली बिधि जौ लौं गुपाल कियो उहिं बाल बनाइ न टीको ॥१४॥

राधा को मुकिबो—(कवित्त)

फिरि फिरि फेरि फेरि फेखो में हरी को मन,
 मन फेरें फिरी पुन भाग को भली घरी ।
 पल पल पाइनि परति हुती जिनके सु
 पखो पीय तेरे पाइ पी के पाइ हौं परी ।

[११] ओगुन के गन-अगुनै गुनन (नवल०) । जैसें-जैसे छन छूटि छवि छूटि छुवै छन में (बाल०) ।

[१२] दिसि-निसि (रस०) । याहि-वाहि (बाल०, नवल०) । दिन-येन (बाल०, रस०, नवल०) ।

[१३] में-हूँ (नवल०) । अब-कर (बाल०) ।

[१४] कटि राजत-कहरा कटि (बाल०, रस०) । घरी-घरी (नवल०) ।

बढ़िनि की बेटिनि की बढ़ीयै बढ़ाई मेदि,
 'केसोदास' बढ़िनि में जौ तू हौं बढ़ी करी।
 हौं तौ जानी मनाएँ तैं मेरो गुन मानिहैं मैं
 ताहि क्यों मनाई तैं जु मो ही सों मनी धरी ॥१५॥

पुनः—(सवैया)

'केसवराइ' बुलावत हैं चित चारु बिलोचन नीचे करौ जू।
 कालि करै वर एक बिसौ परौं बीस बिसे व्रत तैं न टरौ जू।
 आगि लगै तेरे कालि के सीस, परौं पर जाइ बजागि परौ जू।
 आजु मिलौ तो मिलौ ब्रजराजहि नाहिं तौ नीके है राज करौ जू ॥१६॥

कृष्ण को भुकिबो—(सवैया)

ताखों बसाइ कहा कहि 'केसव' कामलता तरु तेंदु रई।
 बिधि की लिपि लोपी न जाइ अमोलिक लै मनि सीस भुजंग दई।
 अपनो मुख देखहु आरसी लै पुनि बात कहौ परमान लई।
 वृषभान-सुता पर और सुहागिल बाउ कहाँ लगि जीभ गई ॥१७॥

राधिका सों उराइनो—(कवित्त)

'केसोदास' कौन बढ़ी रूप कुलकानि पै
 अनोखो एक तेरे हौं अनूप उर ओलियै।
 आपनै सयान काहू मानसै न मानै तू
 गुमान के बिमान बैठि ब्योम ब्योम डोलियै।
 पेंड़ सों पेंड़ाइ अति अंचल उड़ाइ ऐसी
 छाड़ि पेंड़ बैड़ चितवनि निरमोलियै।
 दीनो मन हाथ जिनि हीरा सो हरषि कै ता
 हरि सों हरिननैनी हरेँ हूँ तौ बोलियै ॥१८॥

कृष्ण को उराइनो—(कवित्त)

सौँहनि को सोच न सकोच काहू बीच की को
 पोंछौ प्यारे पीक-लीक लोचन किनारे की।
 माखन की चोरी की है थोरी थोरी मोहू मुधि
 जानति बिसेष वहै जोरो है जु बारे की।

[१५] बढ़िनि की—बढ़ी बढ़ी बहुन की (बाल०, रस०)। जानी—जान्यो मन में तू (नवल०)। मनी धरी—मलो करी (नवल०)।

[१६] नीचे करौ—चित्त चेतहु (बाल०)। करै वर—कलेवर (बाल०)। एक—बीब (नवल०)। है—है (नवल०)। यह छंद रस० में नहीं है।

[१७] लिपि—गति (नवल०)। बाउ—बारो (बाल०, नवल०)। कहाँ—बहाँ (नवल०)।

[१८] अनूप—अनल (बाल०, नवल०)। काहू—कान्ह (अल०)।

मेरियै कुमति और कहा कहौ 'केसोदास'
 लागति है लाल लाज इहाँ पाई धारे की ।
 पती है झुठाई, वह अबहीं ठठाई यह
 छारहू तौ छूटी नाहिँ पाइनि के पारे की ॥१६॥
 राधावचन सखी सौँ अपरं च-(सवैया)

आँधी सी घाइ है दाई दवारि सी दासिनि के दुख देह दही है ।
 ताप के तूल तबोलिनि मालिनि-नाइनि नाह के नेह नही है ।
 तेरी सौँ तेरी सौँ मेरी सखी मुनि तेरी अकेली की आस रही है ।
 कान्ह मिलाच कि मोहि न पाइहै आपने जी की मैं तोसौँ कही है ॥२०॥
 (दोहा)

इहि बिधि स्याम-सिंगार-रस बहु बिधि बरनो लोइ ।
 चारि बरन चहुँ आश्रमनि कहत मुनत सुख होइ ॥२१॥
 राधा राधा-रमन के कखो सिंगार सुबेष ।
 रस आदिक आगे कहौँ और रसनि को भेष ॥२२॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां सखीजन-
 कर्मवर्णनं नाम त्रयोदशः प्रभावः ॥१३॥

१४

अथ हास्यरस-लक्षण-(दोहा)

नयन बयन कछु करत जब मन को मोद उदोत ।
 चतुर चित्त पहिचानियै, तहाँ हास्य रस होत ॥१॥
 हास के भेद-(दोहा)

मंदहास कलहास पुनि, कहि 'केसव' अतिहास ।
 कोबिद कबि बरनत सबै अरु चौथो परिहास ॥२॥
 मंदहास-लक्षण-(दोहा)

बिगसहिं नयन, कपोल कछु दसन, दसन के बास ।
 मंदहास तासौँ कहत कोबिद 'केसवदास' ॥३॥

[१६] विशेष वहै-वहै किसोरी (बाल०) । ठठाई-ठढ़ाई (रस०) ।

[२०] लल-सब (रस०) । लोइ-सोइ (रस०) ।

[३] दसन के-बसन के (रस०) ।

बरनत बाढ़े ग्रंथ बहु, कहे न 'केसवदास'।
औरौ रस यों जानियौ सबै प्रछन्न प्रकास ॥४॥

राधिका को मंद हास, यथा—(सवैया)

भेद की बात सुने तैं कछु वह मासक तैं सुसुन्यान लगी है।
बैठति है तिनमें इठि कै जिनकी तुमसों मति प्रेम पगी है।
जानति हौं नलराज दमैती की दूतकथा रस-रंग रंगी है।
पूजैगी साध सबै सुख की बड़भाग की 'केसव' ज्योति जगी है ॥५॥

अपरं च—(सवैया)

जानै को पान खवावत क्यों हूँ गई गड़ि अंगुरी ओठ नवीने।
तैं चितयो तबहौं तिह रीति री लाल के लोचन लीलि से खीने।
बात कही हरए हँसि 'केसव' में समुझी वे महारस भीने।
जानति हौं पिय के जिय के अभिलाष सबै परिपूरन कीने ॥६॥

श्रीकृष्ण को मंद हास, यथा—(कवित)

दसन-बसन माँक दमकै दसन-दुति
बरषि मदन सर करत अचेत हौ।
भाई मलकत लोल लोचन कपोलनि में
मोल लेत मन क्रम बचन समेत हौ।
भाई कहें देत भाउ सुनौ मेरी भावती के
भावते छबीले लाल मौन कौन हेत हौ।
'केसव' प्रकास हास हँसि कहा लेहुगे जू
ऐसी ही हँसे तैं तौ हिये को हरे लेत हौ ॥७॥

कल हास-लक्षण—(दोहा)

जहँ सुनियै कल ध्वनि कछु कोमल बिमल बिलास।
'केसव' तन मन मोहियै, बरनहु कवि कल हास ॥८॥

राधिका को कल हास, यथा—(सवैया)

काजें सितासित काछनी 'केसव' पातुर ज्यौं पुतरीनि बिचारौ।
कोटि कटाच्छ नचै गति भेद नचावत नायकु नेह निनारौ।

[४] बहु-बिह (रस०)।

[५] यह छंद रस० में नहीं है।

[६] रीति-भाँति (रस०, नवल०)। केसव-कै सुनि (रस०, नवल०)।

[७] दमकै-दरसे (बाल०, नवल०, रस०)। सर-दुति (रस०)। देत-भेद (बाल०)। सुनो-कहो (रस०, नवल०)। हँसे तैं-तौ हँसनि ही तैं हियो हरि (रस०)।

बाजत है मृदुहासु मृदंग सु दीपति दीपनि को वज्रियारौ ।
देखत हौ हरि देखि तुम्हें यह होतु है आँखिन ही में अखारौ ॥६॥

अपरं च, यथा—(सवैया)

प्रेम घने रसबैन सने गति नैननि की सर-मैन भई ही ।
बाल-बहिक्रम-दीपति देह त्रिबिक्रम की गति लीलि लई ही ।
भौं हँ चढ़ाई सखीनि दुराई इतै मुसुकाई उतै चितई ही ।
'केसव' पाइहौ आजु भलें चित चोरि लै कालि गुवालि गई ही ॥१०॥

श्रीकृष्ण को कल हास, यथा—(सवैया)

आजु सखी हरि तोसों कछू बड़ी बार लौं बात कही रस भीनी ।
मोलि गरें पटुका पुनि 'केसव' हारि हियें मनुहारि सी कीनी ।
मोहि अचंभो महा सु हहा कहि बाँह कहा बड़ी बार लौं लीनी ।
तैं सिर हाथ दियो उनिकें उनि गाँठि कहा हँसि आँचरु दीनी ॥११॥

अतिहास-लक्षण—(दोहा)

जहाँ हँसहि निरसंक है प्रकटहि मुख मुख-बास ।
आधे आधे बरन पद, उपजि परत अतिहास ॥१२॥

राधिका को अतिहास, यथा—(कवित)

तैसीयै जगत ज्योति सीस सीसफूलनि की,
चिलकत तरुनि तिलक तेरे भाल को ।
तैसीयै दसन-दुति दमकति 'केसोदास'
तैसोई लसतु लाल लाल कंठमाल को ।
तैसीयै चमक चारु चिबुक कपोलनि की
चमकत तैसो नकमोती चल चाल को ।
हरें हरें हँसि नेक चतुर चपलनैन
चित्त चकचौंधै मेरे मदन गुपाल को ॥१३॥

श्रीकृष्ण को अतिहास, यथा—(कवित)

गिरि गिरि उठि उठि रीम्नि रीम्नि लागें कंठ
बीच बीच न्यारे होत छबि न्यारी न्यारी सों ।

[६] निनारो-निन्यारो (रस०); निहारो (बाल०, नवल०) । हो में-बीच (नवल०) ।

[१०] सर मैन-रस मैन (नवल०) । यह छंद रस० में नहीं है ।

[११] बाँह-चाह (नवल०) । बड़ी-बहु (बाल०, नवल०) ।

[१३] चिलकत-भिलकत (बाल०, नवल०) । तरुनि-तिलनि (बाल०) ।

चमकत-भलकत (बाल०, रस०) ।

आपुस में अकुलाइ आधे आधे आखरनि
 आछी आछी बात कहँ आछी एक यारी सौँ ।
 सुनत सुहाइ सब समुझि परै न कछु
 'केसोदास' की सौँ दुरि देखे में दुस्यारी सौँ ।
 तरनि-तनूजा-तोर तरवर-तर ठाढ़े
 तारी दै दै हँसत कुँवर कान्ह प्यारी सौँ ॥१४॥

अथ परिहास-लक्षण—(दोहा)

जहँ परिजन सब हँसि उठै तजि दंपति की कानि ।
 'केसव' कौनहु बुद्धिबल सो परिहास बखानि ॥१५॥

राधा को परिहास, यथा—(सवैया)

आई है एक महावन तें तिय गावति मानो गिरा पगु भारी ।
 सुंदरता जनु काम की कामिनि, बोलि कह्यो बृषभानु-दुलारी ।
 गोपिकै ल्याइ गुपालहि वै अकुलाइ मिली उठि आदर भारी ।
 'केसव' भेटत ही भरि अंक हँसौ सब कीक दै गोपकुमारी ॥१६॥

श्रीकृष्ण को परिहास, यथा—(सवैया)

सखि बात सुनो इक मोहन की निकसी मटुकी सिर रो हलकै ।
 पुनि बाँधि लई सुनिये नतनारु कहँ कहँ वुंद करी छलकै ।
 निकसीं उहि गैल हुते जहँ मोहन लोनी उतारि जवै चल कै ।
 पतुकी धरी स्याम खिसाइ रहे उत ग्वारि हँसी मुख आँचल कै ॥१७॥

अथ करुण रस-लक्षण—(दोहा)

प्रिय के बिप्रिय करन तें आनि करुन रस होत ।
 ऐसो बरन बखानियै जैसो तरुन कपोत ॥१८॥

[१४] कछु—अब (बाल०, रस०) ।

[१६] मानो—गीत (बाल०) । उठि—करि (रस०) । आदर—सदर (नवल०) ।
 कीक—कूक (रस०) । कीक दै—की कहै (बाल०) ।

[१७] सखि—जुवती सुनि औगुन मोहन के (रस०) । रो हल कै—रीतिवै लै
 (रस०) । सुनिए—सु नए (रस०) । नतनारु—नतनासु (रस०) । पतुकी—
 पितुखी (रस०) । यह छंद बाल० में नहीं है । यह दोहा रस० में
 अधिक है—

कह्यो हास रस बरनि यौँ अरु रस सुगम कवित्त ।
 करुनादिक सिंगारमय बरने समझहु चित्त ॥

राधिकाजू को करुण रस, यथा—(कवित्त)

तेज सूर से अपार, चंद्रमा से सुकुमार,
 संभु से उदार उर उर धरियतु है।
 इंद्रजू से प्रभु पूरे, रामजू से रन, सूर
 कामजू से रूप हरे हिय हरियतु है।
 सागर से धीर गनपति से चतुर अति
 ऐसे अबिबेक कैसे दिन भरियतु है।
 नंद मति मंद महा यमुदा से कहौं कहा,
 ऐसे पूत पाइ पसुपाल करियतु है ॥१६॥

श्रीकृष्ण को करुण रस, यथा—(कवित्त)

चपे की सी कली भली 'केसव' सुबास भरी,
 रूप की सी मंजरी मधुप मन भाइयै।
 बेद की सी बानी अति बानी तैं सयानी देव
 राइ की सी रानी जानी जग सुखदाइयै।
 काम की कला सी, चपला सी, काम अबला सी
 कमला सी देह घरेँ पूरे पुन्य पाइयै।
 कौनेँ कीनी निपट कुचालि जाति ग्वारि ऐसी
 राधिका कुँवरि पर गोरस बिचाइयै ॥२०॥

अथ रौद्र रस-लक्षण—(दोहा)

होहि रौद्र रस क्रोधमय विग्रह उग्र सरीर।
 अरुन वरन वरनत सबै कहि 'केसव' मति धीर ॥२१॥

राधिकाजू को रौद्र रस, यथा—(कवित्त)

केहरी कपोत करि केर मृग मीन फनि
 सुक पिक कंज खंजरीट बन लीनो है।
 मृदुल मृनाल बिंब चंपक मराल बेलि
 कुंकुम दाबिम कहँ दूनो दुख दीनो है।

[१६] उदार उर—उदार अति (नवल०)। अति-चर (बाल०)। यह छंद रस० में नहीं है।

[२०] भली-अली (नवल०)। भरी-भली (नवल०)। बेद की-देव की (रस०)। कुचालि-कुबालि (बाल०, नवल०)। पर-पहँ (रस०)।

[२१] केहरी कपोत करि केर-केहरी कुबास करि केरि (बाल०); केहरी की हरी कटि करी (नवल०); केहरी कपोत ककुरी कोक (रस०)।

आरत कनक तन तनक तनक ससि,
बढ़त घटत बंधुजीव गंधहीनो है।
'केसोदास' दास भए कोबिद कुँवर कान्ह
राधिका कुँवरि कोप कौन पर कीनो है ॥२२॥

श्रीकृष्ण को रौद्र रस, यथा—(कवित्त)

मीँडि माखो कलह बियोग माखो बोरि कै
मरोरि माखो अभिमान माखो भय भान्यो है।
सबको सुहाग अनुराग लूटि लीनो दीनो
राधिका कुँवरि कहँ सब सुख सान्यो है।
कपट कपटि डायो निपट कै औरनि सों
मेटी पहिचानि मन में हूँ पहिचान्यो है।
जीत्यो रति रन मथ्यो मनमथ हू को मन
'केसोदास' कौन कहँ रोष उर आन्यो है ॥२३॥

अथ वीर रस-स्तक्षण—(दोहा)

होहि वीर उत्साहमय गौर बरन दुति अंग।
अति उदार गंभीर कहि 'केसव' पाइ प्रसंग ॥२४॥

राधिकाबू को वीर रस, यथा—(कवित्त)

गति गजराज साजि देह की दिपति बाजि,
हाव रथ भाव पतिराजि चली चाल सों।
'केसोदास' मंदहास असि कुच भट भिरे
भेंट भए प्रतिभट भाले नखजाल सों।
लाज साजि कुलकानि-सोच पोच भय भानि,
भौँहँ धनु तानि बान लोचन बिसाल सों।
प्रेम को कवच कसि साहस सहायक लै
जीत्यो रति-रन आजु मदन गुपाल सों ॥२५॥

श्रीकृष्ण को वीर रस, यथा—(कवित्त)

अब ज्यों उदारिहौ कि बक ज्यों बिदारिहौ कि,
केस गहि 'केसोदास' केसी ज्यों पछारिहौ।
हरिहौ कि प्राननाथ पूतना के प्राननि ज्यों
बन तें कि बनमाली काली ज्यों निकारिहौ।

[२३] कहँ-कर (रस०) ।

[२४] हाव रथ-हास रथ (रस०) । चाल-बाल (बाल०) । बाल-बान (बाल०) ।
कसि-साजि (बाल०) । रति-राग (बाल०) । जीत्यो-जीति (बाल०, नवल०) ।

हरिहौ विमद घनबाहन ज्यौँ घनस्वाम
 काहू सौँ न हारे हरि याही सौँ क्यौँ हरिहौ ।
 बे ही काम काम बर ब्रज की कुमारिकानि
 मारतु है नंद के कुमार कब मारिहौ ॥२६॥

अथ भयानक रस-लक्षण--(दोहा)

होइ भयानक रस सदा 'केसव' स्याम सरीर ।
 जाको देखत सुनतहीँ, उपजि परति भय-भीर ॥२७॥

राधिकाजू को भयानक रस, यथा--(सवैया)

भुवमंडल मंडित कै घनघोर उठे दिविमंडल मंडि गटी ।
 घहराति घटा घन बात के संघट घोष घटै न घटी हूँ घटी ।
 दस हूँ दिसि 'केसव' दामिनि देखि लगी प्रिय कामिनि-कंठ-सटी ।
 जनु पंथहिं पाइ पुरंदर के बन पावक की लपटें फपटी ॥२८॥

श्रीकृष्ण को भयानक रस, यथा--(कवित्त)

रोष में रस के बोल बिष तें सरस होत
 जानै सो प्रबल पित्त दाखें जिन चाखी हैं ।
 'केसोदास' दुख दीबे लायक भयेउत्र तुम
 आज लगि जाकी जी में आँखें अभिलाषी हैं ।
 सूधे है सुधारिबे कोँ आए सिखवन मोहिं
 सूधे हूँ में सूधी बातें मो सौँ उन भाखी हैं ।
 ऐसे में हौँ कैसे जाऊँ दुरि हूँ धौँ देखौ जाइ
 काम को कमान सी चढ़ाइ भौँह राखी हैं ॥२९॥

अथ बीभत्स रस-लक्षण--(दोहा)

निंदा भय बीभत्स रस, नील वरन बपु तास ।
 'केसव' देखत सुनत ही तन मन होइ उदास ॥३०॥

राधिकाजू को बीभत्स रस, यथा--(कवित्त)

माता ही को मास तोहि लागतु है मीठो मुख
 पियत पिता को लोहू नेक ना घिनाति है ।
 भैयनि के कंठनि को फाटत न कसकति
 तेरो हियो कैसो है जु कहति सिहाति है ।

[२६] केम गदि-कंस ज्यौँ कि (बाल०, रस०) । करिहौ-हरिहौ (रस०) ।

[२८] गदी-घटी (नवल०) । घन-घट (बाल०, रस०) । पंथहिं-पारथ (नवल०) ।

जब जब होत भेंट तब तब मेरी भटू
ऐसी सौँहें दिन छठि खाति न अघाति है ।
प्रेसिनी पिसाचिनी निसाचरी की जाई है तू
'केसोदास' की सौँ कहि तेरी कौन जाति है ॥३१॥

श्रीकृष्ण को बीभत्स रस, यथा—(कवित्त)

टूटे ठाट धुन धुने धूम धूरि सौँ जु सने
मीँगुर छगोड़ी साँप बीछिन की घात जू ।
कंटक-कलित त्रिन-बलित विगंध जल
तिनके तलप-तल ताकेँ ललचात जू ।
कुलटा कुचील गात अंध तम अघरात
कहि न सकत बात अति अकुलात जू ।
छँड़ी में घुसौ कि घर ईंधन के घनस्याम
पर-घरनोनि पहुँ जात न घिनात जू ॥३२॥

अथ अद्भुत रस-लक्षण—(दोहा)

होइ अर्चभो देखि सुनि सो अद्भुत रस जानि ।
'केसोदास' बिलास-निधि, पीत बरन बपु भानि ॥३३॥

राधिकाजू को अद्भुत रस, यथा—(कवित्त)

'केसोदास' बाल बैस दीपति तरुनि तेरी
बानी लघु बरनत बुधि परमान की ।
कोमल अमल उर उरज कठोर जाति
अबला पै बलवीर-बंधन-बिधान की ।
चंचल चितौनि चित्त अचल सुभाव साधु
सकल असाधु भाव काम की कथान की ।
बेचति फिरति दधि, लेत तिन्हें मोल लेत
अदभुत रसभरी बेटी बृषभान की ॥३४॥

अन्यन्त्र, यथा—(कवित्त)

ब्रज की कुमारिका वे लीनें मुक-सारिका
पढ़ावैं कोक-कारिकानि 'केसव' सबै निबाहि ।
गोरी गोरी भोरी भोरी थोरी थोरी बैस फिरें
देवता-सी दौरी दौरी आई चोराचोरी चाहि ।

[३१] नेक-क्योंहूँ (रस०) । घिनाति—अघाति (रस०; नवल०) ।

[३२] धुने-घने (रस०, नवल०) । धूरि सौँ जु-धूम सनि (रस०); धूरि सैनि (बाल०) । अघरात—अभिराति (रस०) ।

[३४] बरनत—बरनन (बाल०, रस०) ।

बिन गुन तेरी आनि शृकुटी कमान तानि
कुटिल-कटाक्ष-बान यहै अचरज आहि ।
पते मान डीठ ईठ तेरो को अदीठ मन
पीठ दै दै मारती पै चूकती न कोऊ ताहि ॥३५॥

श्रीकृष्ण को अद्भुत रस, यथा—(कवित्त)

माखन के चोर मधु-चोर दधि-दूध-चोर
देखै नाहिं देखत ही चित चोरि लेत हैं ।
पुरुष पुरान अरु पूरन पुरान इन्हें
पुरुष पुरान सु कहत किहिं हेत हैं ।
'केसोदास' देखि देखि सुरनि को सुंदरी बे
करतिं बिचार सब सुमति-समेत हैं ।
देखि गति गोपिका की भूलि जात निज गति
अगतिन कैसें धौं परम गति देत हैं ॥३६॥

अथ सम रस-लक्षण—(दोहा)

सब तें होय उदास मन, बसै एक हीं ठौर ।
ताही सों समरस कहत 'केसव' कवि-सिरमौर ॥३७॥

राधिकाजू को सम रस, यथा—(सवैया)

देखैं नहीं अरविंदनि त्यों चित चंद की आनंद-कंद निफाई ।
कामिनि काम-कथा करै कान न ताकै त्रिधाम की सुंदरताई ।
देखि गई जब तें तुमको तब तें कछु बाहि न देख्यो सुहाई ।
झाड़ेगी देह जु देखैं बिना अहो देहु न कान्ह कहूँ है बिखाई ॥३८॥

[३५] कुटिल-नयन (बाल०) । मान-पर (रस०) ।

[३६] चोरि लेत-हरि लेत (रस०, नवल०) । पुरुष-पूरन (बाल०, रस०) । पूरन-
पूरष (बाल०, रस०) । सब-सच (बाल०) । सुमति-सुरनि (रस०) ।
अगतिन-अगतनि (रस०) ।

नवल० में नीचे के सवैयाकी टीका इसलिए नहीं की गई है कि 'या कवित्त बहुत प्राचीन पुस्तकन में नहीं मिलत'—

बन मोहिं मिले हुते केसवराइ कहा बरनो गुन गूढ़ उधारे ।
बसुदा पै गई तब रोहिनी पै जुटि आहि गुहावत बाइ निहारे ।
घर जाउँ तु सोवत हैं फिर जाउँ तौ नंद पै खात बरा दधिबारे ।
सपनो यह सत्त किबौं सबनी हरि बाहिर होत बड़े घरबारे ॥३७॥
३८] देह-प्राण (बाल०) ।

श्रीकृष्ण को समरस, यथा—(सवैया)

खारिक खात न दाखौँ दाख न माखन हूँ सहुँ मेटी इठाई ।
 'केसव' उख महुखहु दूखत आई हैं तो पह छाड़ि जिठाई ।
 तो रदनच्छद को रस रंचक चाखि गए करि केहूँ ढिठाई ।
 ता दिन तैं छनि राखी उठाय समेत-सुधा बसुधा की मिठाई ॥३६॥

अपरं च—(कवित्त)

दनुज मनुज जीव जल थल जननि को
 पखोई रहत जहाँ काल सो समरु है ।
 अजर अनंत अज अमरौ मरत परि,
 'केसव' निकसि जानै सोई तौ अमरु है ।
 बाजत स्रवन सुनि समुझि सबद करि,
 बेदन को बाद नाहिँ सिव को डमरु है ।
 भागहु रे भागौ भैया भागनि ज्योँ भाग्यो परै
 भव के भवन माँझ भय को भमरु है ॥४०॥

(दोहा)

इहिं विधि बरन्यो बरन बहु, नवरस रसिक बिचारि ।
 बाँधौँ वृत्ति कवित्त की कहि 'केसव' विधि चारि ॥४१॥
 इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
 नवरसवर्णनं नाम चतुर्दशः प्रभावः ॥१४॥

१५

अथ वृत्ति-वर्णन—(दोहा)

प्रथम कैसिकी भारती आरभटी भनि भाँति ।
 कहि 'केसव' सुभ सात्त्वती चतुर चतुर बिधि जाति ॥१॥

अथ कैशिकी-लक्षण—(दोहा)

कहियै 'केसवदास' जहँ करुन हास सिंगार ।
 सरल बरन सुभ भाव जहँ सो कैसिकी बिचार ॥२॥

[३६] महुखहु—पियूखहि (रस०); मयूखहि (बाल०, नवल०) ।

[४०] जल०—जलज थलजनि (रस०) ।

यथा-(कवित्त)

मिलिबे कौँ एक मिली मिली फिरेँ दूतिकानि
 मिलि मन ही मन बिलास बिलसति है ।
 बोलिबे कौँ एक बाल बोल सुनिबे कौँ एक
 बोलि बोलि तीरथनि व्रतनि बसति है ।
 देखिबे कौँ फिरेँ एक देवता सी दौरि दौरि,
 देवता मनाइ दिन दान मनसति है ।
 कीजै कहा करम कौँ इहिं रूप मेरी माई
 ये तौ मेरे कान्हजू के नामहिं हँसति है ॥३॥

अथ भारती लक्षण-(दोहा)

बरनिय जामेँ बीररस रसमय अद्भुत हास ।
 कहि 'केसव' सुभ अर्थ जहँ सो भारती प्रकास ॥४॥

यथा-(कवित्त)

काननि कनक-पत्र चक्र चमकत चारु,
 धुजा मुलमुली मलकति अति सुखदाइ ।
 'केसव' छबीलो छत्र सीसफूल सारथी सो,
 केसरि की आड़ि अधिरथिक रची बनाइ ।
 नीकोई नकीब सम नीको नकमोती नाक
 एक ही बिलोकनि गोपाल तौ गए बिकाइ ।
 लोचन बिसाल भाल जरित जराऊ टीको
 मानों चढ़यो मीनन के रथ मनमथ राइ ॥५॥

अथ आरभटी लक्षण-(दोहा)

'केसव' जामेँ रौद्ररस, भय बीभत्सहि जान ।
 आरभटी आरंभ यह, पद पद जमक बखान ॥६॥

यथा-(संवैया)

धेरि घने घन घोरत सज्जल उज्जल कज्जल की रुचि राँचै ।
 फूले फिरेँ इम से नभ पाइक सावन की पहली तिथि पाँचै ।

[३] मिलि०-मिलि मिलि मही बिलास (रस०)। मनसति-मै नसति (बाल०, नवल०)।

[५] अधिरथिक-अधिराधिका (नवल०, रस०)। नीकोई नकीब सम०-नीकेँ हीँ नकीब सम नीको मोती नीको नाक (रस०); नीके ही में नीकी नाक नीको मोती उरजात (बाल०)। टीको-ताल (रस०, नवल०)। चढ़यो-बैठे (बाल०)।

चौहूँ कुघा तड़िता तड़पै डरपै बनिता कहि 'केसव' साँचै ।
जानि मनो ब्रजराज बिना ब्रज ऊपर काल-कुटुंबिनि नाँचै ॥७॥

अथ सात्त्वती-लक्षण-(दोहा)

अदभुत बीर सिंगार रस समरस बरनि समान ।
सुनतहिं समुझत भाव जिहिं सो सात्त्वकी सुजान ॥८॥

यथा-(कवित्त)

'केसोदास' लाख लाख भाँतिनि के अभिलाष
बारि दै री बावरी न बारि हियो होरी सी ।
राधा हरि केरी प्रीति सबतें अधिक जानि
रति रतिनाथ हू में देखौ रति थोरी सी ।
तिन महिं भेद न भवानि हू पै पाख्यो जाइ
भानत में भारती की भारती है भोरी सी ।
एकै गति एकै मति एकै प्रान एकै मन
देखिबे कौं देह द्वं हें नैननि की जोरी सी ॥९॥

(दोहा)

इहिं बिधि केसवदास कबि, नवरस बरनि कवित्त ।
पाँच भाँति अनरस सुनौ, ताहि न दीजै चित्त ॥१०॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
चतुर्विधकवित्ववृत्तिवर्णनं नाम पंचदशः प्रभावः ॥१५॥

१६

अथ अनरस-वर्णन-(दोहा)

प्रत्यनीक नीरस बिरस 'केसव' दुःसंधान ।
पात्रादुष्ट कवित्त बहु, करहिं न सुकवि बखान ॥१॥

[७] कुघा-कुदौ (बाल०, रस०) ।

[८] बीर सिंगार-रुद्र र बीर (बाल०, रस०) ।

[९] देखौ-जानौ (बाल०) । महि-हू में (रस०) । भानत-भारत (रस०) ।

अथ प्रत्यनीक-लक्षण-(दोहा)

जहँ सिंगार बीभत्स भय, बीरहि बरनै कोइ ।
रौद्र सु करुना मिलत ही प्रत्यनीक रस होइ ॥२॥

उदाहरण-(सवैया)

हँसि बोलत ही सु हँसै सब 'केसव' लाज भगावत लोक भगै ।
कछु बात चलावत घैरु चलै मन आनतहौं मनमथ जगै ।
सखि तू जु कही सु हुती मन मेरेहु जानि यहै न हियो उमगै ।
हरि त्यों टुक दीठि पसारत ही अँगुरीन पसारन लोग लगै ॥३॥

अथ नीरस-लक्षण-(दोहा)

जहाँ दंपती मुँह मिलै सदा रहै यह रीति ।
कपट करै लपटाय तन नीरस रस की प्रीति ॥४॥

उदाहरण-(सवैया)

गाहत सिंधु सयाननि के जिनकी मति की अति देह दहेली ।
मोहि हँसी दुख दोऊ दर्ई तिनहूँ सो जनावति प्रेम-पहेली ।
आजु लौं कानन हूँ न सुनी सु तौ देखि चली हम सौति-सहेली ।
जानी है जानी मिली मुँह ही हिय नाहिचै भावति गर्ब गहेली ॥५॥

अथ विरस-लक्षण--(दोहा)

जहीं सोक महिं भोग को बरनतु है कवि कोइ ।
'केसवदास' हुलास सों, तहीं बिरस रसु होइ ॥६॥

उदाहरण-(कवित)

'केसोदास' न्हान दान खान पान भूल्यो ध्यान
गयो ज्ञान भयो प्रान पीठि की सी पीठि है ।
झाँडहु रसिक लाल यह जक वह बाल
देखत ही सब सुख तुमहीं उबीठिहै ।
ऐसी सों बसीठी, सीठी चीठी अति दीठो सुनै
मीठी मीठी बातनि, जु नीके हूँ मैं नीठि है ।
ईठनि सों टूटी ईठी ताके सोक की अँगठी
छठी जाके घर मैं सु कैसे हँसि डीठिहै ॥७॥

अथ दुःसाधन-लक्षण-(दोहा)

एक होइ अनुकूल जहँ, दूजो है प्रतिकूल ।
'केसव' दुःसाधन रस, सोभित तहाँ समूल ॥ ८ ॥

उदाहरण--(सवैया)

‘दे दधि’ ‘दीनो उधार हो केसव !’ ‘दान कहा जब मोल ले खैहै’ ।
 ‘दीने बिना तौ गई जु गई !’ ‘न गई न गई घर ही फिरि जैहै’ ।
 ‘गो हितु बैर कियो’ ‘कब हो हितु बैर किये बरु नीकी छे रहैहै’ !
 ‘बैरु कै गोरस बेचहुगी’ ‘अहो बेच्यो न बेच्यो तौ ढारि न दैहै’ ॥६॥

अथ पात्रादुष्ट रस-लक्षण--(दोहा)

जैसो जहाँ न बूझियै, तैसा करियै पुष्ट ।
 बिनु बिचार जो बरनियै, सो रस पात्रादुष्ट ॥१०॥

उदाहरण--(कवित्त)

कपट कृपानी मानी प्रेम-रस लपटानी
 प्राननि को गंगाजू के पानी सम जानियै ।
 स्वारथ-निधानी परमारथ की राजधानी
 काम की कहानी ‘केसोदास’ जग मानियै ।
 सुबरन अरुमानी, सुधा सौँ सुधारि आनी
 सकल-सयान-सानो ज्ञानी सुखदानियै ।
 गौरा औ गिरा लजानी मोहे मुनि मूढ़ प्रानी
 ऐसी बानी मेरी रानी बिषु कै बखानियै ॥११॥

(दोहा)

‘केसव’ करुना हास्य कहूँ अरु बीभत्स सिँगार ।
 बरनत बीर भयानकहि संतत बैर बिचार ॥१२॥
 भय उपजै बीभत्स तैं अरु सिँगार तैं हासु ।
 ‘केसव’ अदभुत बीर तैं, करुना कोप प्रकासु ॥१३॥
 इहि बिधि ‘केसवदास’ रस, अनरस कहे बिचारि ।
 बरनत भूल परी जहाँ कबिकुल लेहु सुधारि ॥१४॥
 जैसे रसिकप्रिया बिना देखिय दिन दिन दीन ।
 त्यों ही भाषा-कवि सबै, रसिकप्रिया बिन हीन ॥१५॥
 बाढ़ै रति मति अति परे जाने सब रस-रीति ।
 स्वारथ परमारथ लहै, रसिकप्रिया की प्रीति ॥१६॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारहृद्रजितविरचितायां रसिकप्रियायां
 रस-अनरसवर्णनं नाम षोडशः प्रभावः ॥१६॥

[१०] पात्रादुष्ट--पातरदुष्ट (नवल०) ।

[११] मानी- जानी (बाल०) । बिषु कै--मुख तैं (बाल०) ।

कविप्रिया

१

(दोहा)

गजमुख सनमुख होत ही बिघन बिमुख है जात ।
ज्यो पग परत पयाग-मग पाप-पहार बिलात ॥१॥
बानीजू के बरन जुग सुबरनकन-परिमान ।
सुकवि सुमुख कुरुखेत परि होत सुमेर समान ॥२॥

(दंडक)

सत्व सत्व गुन को कि सत्य ही की सत्या सुभ,
सिद्धि की प्रसिद्धि की सुबुद्धि-वृद्धि मानियै ।
ज्ञान ही की गरिमा कि महिमा विवेक की कि
दरसन ही को दरसन उर आनियै ।
पुन्य को प्रकास वेद विद्या को बिलास किधौं,
जस को निवास 'केसोदास' जग जानियै ।
मदन-कदन-सुत-वदन-रदन किधौं
बिघन-बिनासन की बिधि पहिचानियै ॥३॥

(दोहा)

प्रगट पंचमी को भयो कविप्रिया-अवतार ।
सोरह सै अट्ठावना फागुन सुदि बुधवार ॥४॥
नृपकुल बरनौं प्रथम ही अरु कवि 'केसव'-बंस ।
प्रगट करी जिन कविप्रिया कविता के अवतंस ॥५॥

अथ नृपवंश-वर्णन-(दोहा)

ब्रह्मादिक की बिनय तैं हरन सकल भुवभार ।
सूरज-बंस कखो प्रगट रामचंद्र अवतार ॥६॥
तिनकें कुल कलिकालरिपु कहि 'केसव' रनधीर ।
गहरवार इहि ख्याति जुत प्रगट भयो नृप बीर ॥७॥
करन नृपति तिनकें भए धरनी-धर्म-प्रकास ।
जीति सबै जगती कखो बारानसी निवास ॥८॥

[३] सत्या-सत्ता (सरदार०, हरि०) ।

[५] यह छंद सरदार० में नहीं है ।

[७] इहि-विल्यात जग (सरदार०, हरि०) ।

[८] कखो-कियौ (याशिक०, याशिक अ०) । [६] जिनके-जाको (याशिक अ०) ।

प्रगट करन तीरथ भयो जग में जिनके नाम ।
 तिनकेँ अर्जुनपाल नृप भए महोनी प्राम ॥६॥
 गढ़कुँडार तिनकेँ भए राजा साहन पाल ।
 सहजईद्र तिनकेँ भए, कहि 'केसव' रिपुकाल ॥१०॥
 राजा नौनगद्यौ भए तिनकेँ पूरनसाज ।
 नौनगद्यौ के सुत भए, पृथु ज्यो पृथिवाराज ॥११॥
 रामसिंघ राजा भए तिनकेँ सूर समान ।
 राजचंद्र तिनकेँ भए राजा चंद्र प्रमान ॥१२॥
 राजा मेदिनिमल भए, तिनकेँ 'केसवदास' ।
 अरि-मद-मर्दन मेदिनी कीनो धर्म-प्रकास ॥१३॥
 राजा अर्जुनद्यौ भए तिनकेँ अर्जुन रूप ।
 श्रीनारायन को सखा कहै सकल भुवभूप ॥१४॥
 महादान षोडस दए जीती जग-दिसि चारि ।
 चारौ बेद अठारहौ सुने पुरान बिचारि ॥१५॥
 रिपुखंडन तिनकेँ भए राजा श्रीमलखान ।
 जुद्ध जुरे न मुखो कहूँ जानत सकल जहान ॥१६॥
 नृप प्रतापरुद्र सु भए तिनकेँ जनु रनरुद्र ।
 दयादान को कल्पतरु गुननिधि सीलसमुद्र ॥१७॥
 नगर ओरछो जिन रच्यो, जग में जागति कृत्ति ।
 कृत्स्नदत्त मिश्रहिं दई जिन पुरान की वृत्ति ॥१८॥
 भरथखंड मंडन भए तिनकेँ भारतिचंद्र ।
 देस रसातल जात जिहि फेख्यो ज्यो हरिचंद्र ॥१९॥
 सेरसाह असलेम केँ उर साली समसेर ।
 एक चतुर्भुज ही नयो ताको सिर तिहि बेर ॥२०॥
 उपजि न पायो पुत्र तिहि गयो सु प्रभु सुरलोक ।
 सोदर मधुकर साहि तब भूप भए भुवलोक ॥२१॥
 जिनकेँ राज रसा बसै 'केसव' कुसल किसान ।
 सिंधु दिसा नहि बार ही पार बजाय निसान ॥२२॥

[१०] सहजईद्र—सहजकरन (याज्ञिक अ०) ।

[११] नौनगद्यौ—नौनिकदे (सरदार०, हरि०, लाला०) । पृथु—पृथ्वी (बाल०) ।

[१२] प्रमान—बलान (याज्ञिक अ०) । [१३] मद-मर्दन—मर्दन करि (बाल०);
 मर्दन तिन (याज्ञिक०) ।

[१४] तिनकेँ—राजा (याज्ञिक०) । भुव—भव (बाल०) ।

[१५] मंडन—भूषण (बाल०) । जिहिं—जिन (बाल०, लाला०) ।

[२०] ताको—जाको (याज्ञिक०) । तिहि—इहि (याज्ञिक०) ।

[२१] तिहि—नहि (बाल०) ।

तिन पर चढ़ि आए जु रिपु 'केसव' गए ते हारि ।
 जिन पर चढ़ि आपुन गए आए तिन्हें सँघारि ॥२३॥
 सबरसाहि अकबर अबनि जीति लई दिसि चारि ।
 मधुकरसाह नरेस गढ़ तिनके लीन्हे मारि ॥२४॥
 खान गनै सुलतान को राजा रावत बादि ।
 हाथ्यो मधुकरसाहि सों आपुन साहि मुरादि ॥२५॥
 साथ्यो स्वारथ साथ ही परमारथ सों नेह ।
 गयो सु प्रभु बैकुंठ-मग ब्रह्मरंध्र तजि देह ॥२६॥
 तिनकेँ दूलहराम सुत लहुरे होरिलराव ।
 रिपुखंडन कुलमंडनौ पूरन पुहुमि प्रभाव ॥२७॥
 रनरूरो रनसिंघ पुनि, रतनसेन मुनि ईस ।
 बाँध्यो आपु जलालदौ बानो जाके सीस ॥२८॥
 इंद्रजीत रनजीत अरु सत्रुजीत बलबीर ।
 बिरसिंघ देव प्रसिद्ध पुनि, हरसिंघ द्यौ रनधीर ॥२९॥
 मधुकरसाह नरेस के इतने भए कुमार ।
 रामसाह राजा भए, तिनकेँ बुद्धि अपार ॥३०॥
 घर बाहिर जहँहीं तहाँ, 'केसव' देस बिदेस ।
 सब कोऊ यहई कहै, जीत्यो राम नरेस ॥३१॥
 रामसाह सों सूरता, धर्म न पूजै आन ।
 जाहि सराहत सबदा, अकबर सो सुलतान ॥३२॥
 कर जोरें ठाढ़े जहाँ, आठौ दिसि के ईस ।
 ताहि तहाँ बैठक दई, अकबर से अबनीस ॥३३॥
 जाके दरसन कोँ गए, उधरे देव किंवार ।
 सपजी दीपति देह की, 'केसव' एकहि बार ॥३४॥

- [२३] रिपु—अरि (बाल०) । जिन पर चढ़ि—चढ़ि जापर (बाल०) ।
 सँघारि—सँहारि (लाला०, हरि०, सरदार०) ।
- [२४] सबर—सबल (लाला०, हरि०, सरदार०) । जीति—जीतो जग दिसि
 चारि (बाल०) ।
- [२८] रनसिंघ—दलसिंह (लाला०, सरदार०); रनसिंधु (हरि०) । मुनि—मुत (लाला०,
 सरदार०) ।
- [२९] देव प्रसिद्ध—द्यौ सिंघ (याज्ञिक अ०) । द्यौ—भो (लाला०, हरि०, सरदार०) ।
- [३०] अपार—उदार (लाला०, हरि०, सरदार०) ।
- [३४] देह—दीप (याज्ञिक अ०, लाला०, हरि०, सरदार०) । केसव—देखत (लाला०,
 याज्ञिक, हरि०) ।

ता राजा को राज अब, राजत जगती माहँ ।
 राजा राना राउ सब, सोवत जाकी छाहँ ॥३५॥
 तिनकेँ सुत ग्यारह भए, जेठे साह सँग्राम ।
 दच्छिन दच्छिनराज सौं जिन जीत्यो संग्राम ॥३६॥
 भरथखंडभूषन भए, तिनकेँ भारथिसाहि ।
 भरथ भगीरथ पारथहि उनमानत सब ताहि ॥३७॥
 सुत सोदर नृप राम के जदपि बहुत परिवार ।
 तदपि सबै ईंद्रजीत-सिर राज लाज को भार ॥३८॥
 कल्पवृच्छ सो दानि दिन सागर सो गंभीर ।
 'केसव' सूरु सूर सो अर्जुन सो रनधीर ॥३९॥
 ताहि कछोवा कमल सो गढ़ दीनो नृप राम ।
 बिधि ज्यौं साजत बैठि तहँ 'केसव' बाम अग्राम ॥४०॥
 कख्यो अखारो राज कै सासन सब संगीत ।
 ताको देखत ईंद्र ज्यौं ईंद्रजीत रनजीत ॥४१॥
 बालबहिक्रम बाल सब, रूप सील गुन बृद्ध ।
 जदपि भख्यो अवरोध षट पातुर परम प्रसिद्ध ॥४२॥
 रायप्रबीन प्रबीन अति, नवरंगराय सुबेस ।
 अति बिचित्रनयना निपुन, लोचन ललित सुदेस ॥४३॥
 सोहति सागर राग की, तानतरंग तरंग ।
 रंगराय रंगबलित गति रंगमूरति अँग अँग ॥४४॥
 तंत्री तुंबुरु सारिका मुद्ध सुरन सौं लीन ।
 देवसभा सां सोभिजै रायप्रबीन प्रबीन ॥४५॥
 सत्या रायप्रबीन जुत, सुरत 'रु' सुरतरु गेह ।
 ईंद्रजीत तासों बंधे, 'केसवदास' हि-देह ॥४६॥
 नरी किनरो आसुरी, सुरी रहति सिर नाइ ।
 नवरस नवधा भगति स्यौं जोजति नवरंगराइ ॥४७॥

[३८] लाज-काज (लाला०) ।

[४०] बिधि ज्यौं-ता महि (बाल०) । केसव-भूषति (बाल०) ।

[४२] बहिक्रम-त्रयक्रम (सरदार०, हरि०, दीन०) ।

[४४] तानतरंग-तानै तान (याज्ञिक अ०); नागर तान (याज्ञिक०) । रंगबलित-
 करचलित (बाल०) ।

[४५] सोभिजै-देखिये (याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०); सोहिये (याज्ञिक०) ।

[४६] हि-देह-सनेह (याज्ञिक० अ०, सरदार०) ।

[४७] जोजति-राजति (हरि०, दीन०); जोजित (सरदार०) ।

हाव भाव संभावना, दोला सम सुखदाय ।
 पियमन देति भूलाय गति, नव नव नवरँगराय ॥४८॥
 भैरौ-जुत गौरी-सँजुत, सुरतरंगिनी लेखि ।
 चंद्रकला सी सोभियै, नयनबिचित्रा देखि ॥४९॥
 नयन बयन रतिसयन सम, नयनबिचित्रा नाम ।
 जयनसील पति मयन मन, सदा करति बिल्लाम ॥५०॥
 नागरि सागर राग की, सागर तानतरंग ।
 पति पूरन ससि दरस दिन, बाढ़त तान तरंग ॥५१॥
 तानेँ तानतरंग की, तनु तनु बेधति प्रान ।
 कला कुसुमसर-सरनि की अति अयान तनत्रान ॥५२॥
 रंगराय कर अंगुली सकल गुननि की मूरि ।
 लागत मूढ़ मृदंग मुख, सन्द रहत भरपूरि ॥५३॥
 रंगराय कर, मुरजमुख, रँगमूरति पद चारु ।
 मनो पढ़्यो है साथ ही, सब संगीत बिचारु ॥५४॥
 अंग जिते संगीत के गावत गुनी अनंत ।
 रँगमूरति अंग अंग प्रति, राजत मूरतिवंत ॥५५॥
 नाचति गावति पढ़ति सब, सबै बजावति बीन ।
 तिनमें करति कबित्त इक, रायप्रबीन प्रबीन ॥५६॥
 रायप्रबीन प्रबीन सोँ, परबीनन मन सुख ।
 अपरबीन 'केसव' कहा, पर-बीननि मन दुख ॥५७॥
 रतनाकर लालित सदा, परमानंदहि लीन ।
 अमल कमल कमनीय कर, रमा कि रायप्रबीन ॥५८॥
 रायप्रबीन कि सारदा, सुचि रुचि रंजित अंग ।
 बीना-पुस्तक-धारिनी, राजहंस-सुत संग ॥५९॥
 वृषभवाहिनी अंग उर, बासुकि लसत प्रबीन ।
 सिव-सँग सोहै सर्वदा, सिवा कि रायप्रबीन ॥६०॥

[४८] नवनव-नवरंग (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[४९] संजुत-सहित (बाल०); गौरीसयुत (सरदार०) ।

[५०] सम-रति (बाल०) ।

[५१] सागर तान०-सोहत तान० (दीन०) ।

[५२] तनु तनु-तनु मनु (बाल०) । अयान-आघात (बाल०) ।

[५३] मूढ़-मूक (दीन०) । मुख-मुख (दीन०) ।

[५४] पढ़्यो है-सीख्यो, (याज्ञिक अ०) ।

सखिता जू कबिता दर्ई, ताकहँ परम प्रकास ।
ताके काज कविप्रिया, कीन्हो केसवदास ॥६१॥
इति श्रीमत्त्रिविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां राजवंश-
वर्णनं नाम प्रथमः प्रभावः ॥१॥

२

अथ कविवंश-वर्णन- (दोहा)

ब्रह्माजू के बिनय तें प्रगट भए सनकादि ।
उपजे तिनके चित्त तें सकल सनावद्ध आदि ॥१॥
परसुराम भृगुनंद तव तिनके पायँ पखारि ।
दए बहत्तर ग्राम तिन उत्तम बिप्र बिचारि ॥२॥
जगपावन बेकुंठपति रामचंद्र इहि नाम ।
मथुरा-मंडल मँ दए तन्हें सात सै ग्राम ॥३॥
सोमवंस जदुकुलकलस त्रिभुवनपाल नरेस ।
फेरि दए कालकाल पुर तई तिनाह सुदस ॥४॥
कुंभवार उदंसकुल प्रगटे तिनके बंस ।
तिनके देवानंद सुत उपजे कुल-अवतंस ॥५॥
तिनके सुत जयदेव जग थापे पृथ्वीराज ।
तिनके दिनकर सुकुलसुत प्रगट पांडतराज ॥६॥
दिल्लीपति अल्लावर्दा काना कृपा अपार ।
तीरथ गया समेत जिन अकर करे बहु बार ॥७॥
गया गजाधर सुत भए तिनके आनंदकंद ।
जयानंद तिनके भए विद्याजुत जगबंद ॥८॥

[६१] ताकहँ-ताको (बाल०) ।

[१] बिनय-चिह्न (हरि०, सरदार०, दीन०) । सकल०-सब सनौढ़िया (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[२] इहि-जिहि (याज्ञिक०) ।

[७] बहु बार-कै बार (सरदार०) ।

[८] गया-गयो (बाल०) गजाधर-गदाधर (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

भए त्रिविक्रम मिश्र तब तिनके पड़ितराय ।
 गोपाचलगढ़ दुर्गपति तिनके पूजे पाय ॥६॥
 भाव सर्म तिनके भए तिनके बुद्धि अपार ।
 भए सुरोत्तम मिश्र तब षट-दरसन-अवतार ॥१०॥
 मानसिंघ सों रोष करि जिन जीती दिसि चारि ।
 ग्राम बीस तिनको दए राना पायँ पखारि ॥११॥
 तिनके पुत्र प्रसिद्ध जग कीने हरि हरिनाथ ।
 तोंवरपति तजि और सों भूलि न ओढ़थो हाथ ॥१२॥
 पुत्र भए हरिनाथ के कृस्तदत्त सुभ वेष ।
 सभा साहि संग्राम की जीते गढ़ा असेष ॥१३॥
 तिनको वृत्ति पुरान की दीनी राजा रुद्र ।
 तिनके कासीनाथ सुत सोभे बुद्धिसमुद्र ॥१४॥
 जिनको मधुकरसाह नृप बहुत करथो सनमान ।
 तिनके सुत बलभद्र सुभ प्रगटे बुद्धिनिधान ॥१५॥
 बालक ते मधुसाहि नृप जिनपै सुन्यो पुरान ।
 तिनके सोदर द्वय भए 'केसवदास' कल्याण ॥१६॥
 भाषा बोलि न जानई जिनके कुल को दास ।
 भाषा-कवि भो मंदमति तिहि कुल 'केसवदास' ॥१७॥
 इंद्रजीत तासों कह्यो माँगन माँझ प्रयाग ।
 माँग्यो सब दिन एकरस कीजै कृपा सभाग ॥१८॥
 यों ही कह्यो जु बीरवर माँगि जु मन में होइ ।
 माँग्यो तब दरबार में मोहि न रोकै कोइ ॥१९॥
 गुरु करि मान्यो इंद्रजित तन मन कृपा बिचारि ।
 ग्राम दए इकबीस तब ताकं पायँ पखारि ॥२०॥

[६] तिनके-जिनके (बाल) ।

[१०] तिनके-जिनके (दीन) ; जिनमें (याज्ञिक) । सुरोत्तम-सिरोमनि
(याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[११] बीस-बीस (बाल०) ।

[१२] ओढ़थो-वोह्यो (बाल०) ।

[१५] बलभद्र सुभ-पूरन सुमति (याज्ञिक०); बलिभद्र बुध (याज्ञिक०अ०) ।

[१६] बालक ते-बालहि ते (हरि०, दीन०) । सुन्यो-सुनै (हरि०, दीन०) ।

[१८] तासों-जासों (बाल०) । माँझ-मध्य (याज्ञिक० हरि०, सरदार०, दीन०);

मझि (याज्ञिक अ०) । कीजै-कृपा करौ बड़भाग (बाल०) ।

[१९] जु-सु (बाल०) ।

इंद्रजीत के हेत तब राजा राम सुजान ।
मान्यो मंत्री मित्र कै 'केसवदास' प्रमान ॥२१॥

इति श्रीमत्त्रिविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां कविवंश-
वर्णनं नाम द्वितीयः प्रभावः ॥२॥

३

(दोहा)

समझै बाला-बालकनि बरनन पंथ अगाध ।
कविप्रिया 'केसव' करी, छुमिजौ बुध अपराध ॥१॥
अलंकार कवितानि को सुनि सुनि विविध विचार ।
कविप्रिया 'केसव' करी कविता को सिंगार ॥२॥
सगुन पदारथ अर्थजुत, सुबरनमय सुभ साज ।
कंठमाल ज्यों कविप्रिया, कंठ करहु कविराज ॥३॥
राजत रंच न दोषजुत कविता बनिता मित्र ।
बुंदक हाला होत ज्यों गंगाघट अपवित्र ॥४॥
बिप्र न नेगी कीजियै मूढ़ न कीजै मित्त ।
प्रभु न कृतघ्नी सेइयै दूषनसहित कवित्त ॥५॥

अथ सदोष कवित्त--(दोहा)

अंध बधिर अरु पंगु तजि नग्न मृतक मतिमुद्ध ।
अंध बिरोधी पंथ को, बधिर ति सबदबिरुद्ध ॥६॥
छंदबिरोधी पंगु गनि, नग्न जु भूषनहीन ।
मृतक कहावै अर्थ बिनु, 'केसव' सुनहु प्रवीन ॥७॥

[२०] इकवीस-इकईस (बाल), इकतीस (याज्ञिक०) ।

[२१] तब-कुनि (याज्ञिक०); पुनि (हरि०, दीन०) ।

[१] छुमिजौ-छुमियो कवि (याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०); छुमियो सब (याज्ञिक०) ।

[२] कवितानि-करतानि (बाल०) ।

[३] इसके बाद हरि० और दीन० में यह दोहा अधिक है—

चरन धरत चिंता करत, नींद न भावत सोर ।

सुबरन कौं सोधत फिरत, कवि व्यभिचारी चोर ॥

[४] होत-परत (हरि०, दीन०) ।

[५] कीजियै-कीजई (बाल०) । [७] कहावै-कहावत (बाल०) ।

अथ पंथविरोधी अंध-वर्णन—(सवैया)

कोमल कंज से फूलि रहे कुच देखतहीं पति चंद बिमोहै ।
 बानर से चल चारु बिलोचन कोए रचे रुचि रोचन को है ।
 माखन सो मधुरो अधरामृत 'केसव' को उपमा कह टोहै ।
 ठाढ़ी यों कामिनि दामिनि सी मृगभामिनि सी गजगामिनि सोहै ॥२॥

अथ शब्दविरोधी-छंदविरोधी वधिर-पंगु-वर्णन—(सवैया)

सिद्ध सिरामनि संकर सृष्टि सँघारत साधु समूह भरी है ।
 सुंदर मरति आतमभूत की जारि घरीक में छार करी है ।
 सुभ्र बिरूप त्रिलोचन सों मति 'केसवदास' की ध्यान अरी है ।
 वंदत देव अदेव सबै मुनि गोत्रसुता अरधंग घरी है ॥६॥

(दोहा)

तौलत तुल्य रहै न ज्यों कनक तुलित तिल आधु ।
 त्यों ही छंदोभंग को सहि न सकत स्तुति साधु ॥१०॥

अथ अलंकारहीन नग्न-वर्णन—(सवैया)

धीरज मोचन लोचन लोल त्रिलोकि कै लोक की लीकति छूटी ।
 फूटि गए स्तुति ज्ञान के 'केसव' आँखि अनेक बिबेक की फूटी ।
 छोड़ि दई सरता सब काम मनोरथ के रथ की गति खुटी ।
 त्यों न करै करतारउ वारक ज्यों चितयो इहिं बारबधूटी ॥११॥

अथ रसहीन नग्न-वर्णन—(सवैया)

तोरि तनी टकटोरि कपोलनि जोरि रहे कर त्यों न रहौंगी ।
 पान खवाय सुधाधर पान कै पायँ गहे तैसँ हौँ न गहौंगी ।
 'केसव' चक सबै सहिहौँ मुख चूमि चले यह पै न सहौंगी ।
 कै फिर चूमन दै मुख मोहिं कि आपनि धाइ सों जाइ कहौंगी ॥१२॥

अथ अर्थहीन मृतक-वर्णन—(सवैया)

कील कमाज कलाल करालनि साल बिसालनि चाल चली है ।
 हाल बिहालनि ताल तमाल प्रवाल कवाल कलाल लली है ।

[८] ठाढ़ी यों-ठाढ़ी है (बाल०) ।

[९] सुंदर-उत्तम (बाल०) । गोत्र-गोत (बाल०) ।

[१०] तुलित-तुला (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

सहि-सुनि (हरि०, दीन०) ।

[११] फूटि-भूलि (बाल०) । छोड़ि दई-दूरि करी (बाल०) ।

[१२] सबै सहिहौँ-सहीं बहुतै (बाल०) ; सही सबही (याज्ञिक अ०) ।

लोल बिलोल कलोल अलोल कबोल कमोल कलोल कली है ।
बोलन बाल कपोलनि टोलनि गोलकि गोल निगोल गली है ॥१३॥

अथ दूषण-वर्णन-(दोहा)

अगन न कीजै हीनरस, अरु 'केसव' जतिभंग ।
व्यर्थ अपारथ हीनक्रम, कबिकुल तजहु प्रसंग ॥१४॥
बर्नप्रयोग न कर्नकटु सुनहु सकल कबिराज ।
सबै अर्थ पुनरुक्ति के छाड़हु सिगरे साज ॥१५॥
देसबिरोध न बरनियै, कालबिरोध निहारि ।
लोक न्याय आगमन के, तजौ बिरोध बिचारि ॥१६॥

अथ गणागण-वर्णन-(दोहा)

'केसव' गन सुभ सर्वदा, अगन असुभ उर आनि ।
चारि चारि बिधि चारु मति, गन अरु अगन बखानि ॥१७॥
मगन नगन भनि भगन अरु यगन सदा सुभ जानि ।
जगन रगन अरु सगन पुनि तगनहि असुभ बखानि ॥१८॥
मगन त्रिगुरुजुत त्रिलघुमय 'केसव' नगन प्रमान ।
भगन आदिगुरु आदिलघु यगनहि भनत सुजान ॥१९॥
जगन मध्यगुरु जानियै, रगन मध्यलघु होइ ।
सगन अंतगुरु, अंतलघु तगन कहै सब कोइ ॥२०॥
आठौ गन की देवता, अरु गुन-दोष-विचार ।
छंदोमंथनि में कह्यो, तिनको बहु बिस्तार ॥२१॥

अथ गणागणदेवता-वर्णन-(दोहा)

मही देवता मगन की, नाग नगन को देखि ।
जल जिय जानहु यगन को, चंद भगन को लेखि ॥२२॥
सूरज जानहु जगन को, रगन सिखीमय मानु ।
काल समुझियै सगन को, तगन अकास बखानु ॥२३॥

अथ गणागणजाति-वर्णन-(दोहा)

मगन नगन को मित्र गन, भगन यगन भनि दास ।
बदासीन ज त जानियै, र स रिपु 'केसवदास' ॥ २४ ॥

[१५] सबै-जितै (बाल०) ।

[१६] भनत-बखान (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[२१] यह दोहा बाल० में नहीं है ।

[२३] काल-वायु (हरि०, दीन०) ।

अथ गणगण-फलाफल-(छन्द)

भूमि भूरि सुख देइ, नीर नित आनन्दकारी ।
 आगि अंग दिन दहै, सूर सुख सोखै भारी ।
 'केसव' अफल अकास, काल किल देस उदासै ।
 मंगल चंद अनेक, नाग बहु बुद्धि प्रकासै ।
 इहि विधि कवित्त सब जानियै, करता अरु जाकौं करै ।
 तजि कै प्रबंध अरु देव, गन सदा सुभासुभ फल करै ॥२५॥

अथ द्विगण-विचार-(दोहा)

जौ कहूँ आदि कवित्त की, अगन होइ बड़भाग ।
 तातें द्विगुन-विचार चित कीनो बासुकि नाग ॥२६॥

(कवित्त)

मित्र तें जु होइ मित्र बाढ़ै बहु बुद्धि रिद्धि,
 मित्र तें जु दास त्रास जुद्ध तें न जानियै ।
 मित्र तें उदास गन होत गोत दोष उदौ,
 मित्र तें जु सत्र होइ मित्रबंधु हानियै ।
 दास तें जु मित्रगन काजसिद्धि 'केसोदास',
 दास तें जु दास सब जीव बस मानियै ।
 दास तें उदास होत धननास आसपास,
 दास तें जु सत्र मित्र दास सो बखानियै ॥२७॥
 जानियै उदास तें जु मित्रगन तुच्छ फल,
 प्रगट उदास तें जु दास प्रभुताइयै ।
 होइ जौ उदास तें उदास तौ न फलाफल,
 जौ उदास ही तें सत्र तौ न सुख पाइयै ।
 सत्र तें जु मित्रगन ताहि तौ अफल गन,
 सत्र तें जु दास आसु बनिता नसाइयै ।
 सत्र तें उदास कुलनास होत 'केसोदास',
 सत्र तें जु सत्र नास नायक को गाइयै ॥२८॥

अथ गणगण को उदाहरण-(दोहा)

राधा राधारमन कैं, मन पठयो है साथ ।
 उद्धव तुम ह्यौ कौन सौं, कही जोगी की गाथ ॥२९॥

[२५] काल-वायु (हरि०, दीन०) । जाकौं-जा हित (दीन०) । देव-दोष (दीन०) ।

[२७] बुद्धि रिद्धि-रिद्धि सिद्धि (दीन०) । दोष उदौ-दुःख देत (दीन०) ।
 बस मानियै-सनमानियै (बाल०) । दास सो-सत्रु सो (दीन०) ।

कहौ कहाँ तुम पाहुने, प्राननाथ के मित्त ।
फिरि पीछे पछिताहुगे, ऊधो समुझौ चित्त ॥३०॥
दोहा दुहूँ उदाहरन, आठौ आठ्यौ पाइ ।
'केसव' गन अरु अगन के, समुझौ बुद्धि सुभाइ ॥३१॥

अथ गुरुलघु-भेद-वर्णन—(दोहा)

संजोगी की आदि जुतबिंदु जु दीरघ होइ ।
सोई गुरु, लघु और सब कहत सयाने लोइ ॥३२॥
दीरघ हूँ लघु करि पढ़ै, सुख ही मुख जिहि ठौर ।
सोई लघु करि लेखियै, कहत रसिक-सिरमौर ॥३३॥

(सवैया)

पहिलैँ सुख दै सब ही को सखी उत ही हठि कै जु हरी मति मीठी ।
दूजे लै जीवनमूरि अकूर गयो अंग अंग लगाइ अंगीठी ।
अब धौँ किहि कारन 'केसव' ये उठि धाए हूँ ऊधव भूठी बसीठी ।
माथुर लोगनि के संग की वह बैठक तोहिं अजौँ न उबीठी ॥३४॥

(दोहा)

संजोगी की आदि को कबहुँक बरन बिचारु ।
'केसवदास' प्रकास-बस, लघु करि ताहि निहारु ॥३५॥
अमल जुन्हाई चंदमुखि ठाढ़ी भई अन्हाइ ।
सौतिन के मुख-कमल ज्यौँ देखि गए कुम्हिलाइ ॥३६॥

अथ हीनरस-वर्णन—(दोहा)

बरनत 'केसवदास' रस, जहाँ बिरस है जाइ ।
ता कबित्त सोँ हीनरस, कहत सकल कबिराइ ॥३७॥

(सवैया)

दै दधि, दीनो उधार हो 'केसव', दान कहा अरु मोल लै खैहँ ।
दीने बिना तो गईँ जु गईँ, हौँ गईँ न गईँ घर ही फिर जैहँ ।

[३१] बुद्धि सुभाइ—सब कबिराइ (बाल०) ।

[३३] कहत०—केसव कवि (याशिक०, सरदार०, दीन०) ।

[३४] हठि कै—हिठु कै (याशिक०, याशिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) । दूजे लै—दूसरौ (बाल०) । अकूर—लै कूर (बाल०) ।

[३५] कबहुँक—गुरुवरन बिषै ही जान । और रीति गणना बिषै (याशिक०) । कुबरन—कुवस्तु (बाल०) । निहारु—बखान (याशिक०) ।

[३६] कुम्हिलाइ—मुरभाइ (याशिक अ०, दीन०) ।

[३७] बरनत—उपजत (बाल०) ।

गो हितु बैरु कियो, कब हो हित बैरु कियेँ बरु नीके है रैहै ।
बैरु कै गोरस बँचहुगी, अहो बेच्यो न बेच्यो तौ डारिन दैहै ॥३८॥

अथ यतिभंग-वर्णन—(दोहा)

और चरन के बरन जहँ, और चरन सौँ लीन ।
सो यतिभंग कवित्त कहि 'केसव' कहत प्रवीन ॥३९॥
हरि हरि 'केसव' मदन मोहन घनस्याम सुजान ।
यौँ ब्रजबासी द्वारिकानाथ रटत दिन मान ॥४०॥

अथ विरोध-वर्णन—(दोहा)

एक कवित्त प्रबंध में, अर्थविरोध जु होइ ।
पूरब पर अनमिल सदा, व्यर्थ कहँ सब कोइ ॥४१॥
(मरहटा)

सब सत्रु सँघारहु जी जिनि मारहु सजि जोधा उमराउ ।
बहु बसुमति लीजै, मोमत कीजै, दीजै आपन दाउ ।
कोउ न रिपु तेरो सब जग हेरो तुम कहियत अतिसाधु ।
कछु देहु मँगावहु भूख भगावहु हौँ पुनि धनी अगाधु ॥४२॥

अथ अपार्थ-लक्षण—(दोहा)

अर्थ न जाको समुझियै, ताहि अपारथ जानि ।
मतवारे उनमत्त ज्यों सिमु के बचन बखानि ॥४३॥
पिये लेत नरसिंधु को हाँ अति सज्जर देह ।
ऐरावत हरि भाउतो, देखो गरजत मेह ॥४४॥

अथ क्रमहीन-लक्षण—(दोहा)

क्रम ही गुननि बखानि कै गुनी गनै क्रमहीन ।
सो कहिजै क्रमहीन कवि, 'केसवदास' प्रवीन ॥४५॥

(तोटक)

जग की रचना कहि कौन करी ।
किहि पारन कौँ जिय पैज धरी ।
अति कोपि कै कौन सँघार करे ।
हरि जू हर जू बिधि बुद्धि ररे ॥४६॥

[४१] कहँ—कहावै सोइ (याज्ञिक०); कहँ सयाने लोइ बाल०) ।

[४२] जिनि मारहु—जीवन मारहु हरि०, दीन० । दीजै—लीजै (सरदार०, दीन०) ।
पुनि—उम (दीन०) । धनी—धर्म (सरदार०) ।

[४५] कवि—जग (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[४६] पारन कौँ—राखन की (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार० दीन०) ।

अथ कर्णकटु-लक्षणा—(दोहा)

कहत न नीको लागई, सो कहिजै कटुकनु ।
‘केसवदास’ कविन में, भूल न ताको वनु ॥४७॥
बारनु बन्यो बनाउ तन, सुबरन बली विसालु ।
चढ़िजै राज मंगाई कै, मानौ राजत कालु ॥४८॥

अथ पुनरुक्त-लक्षणा—(दोहा)

एक बार कहिजो कट्ट, वदुरि जु कहिजतु सोइ ।
अर्थ होइ कै सवद पुनि, सुनि पुनरुक्त सु होइ ॥४९॥

(सोरठा)

मघवा घन आरुढ़, इंद्र आजु अति मोभिजै ।
ब्रज पर कोण्यो मूढ़, मेघ दसौ दिसि देखियै ॥५०॥

(दोहा)

दोष नहीं पुनरुक्ति को, एक कहै कबिराज ।
छाँड़ि अर्थ पुनरुक्ति को, सवद कहौ इहि साज ॥५१॥
लोचन पैने सरनि तँ, हँ कछु तो कहँ सुद्धि ।
तन बेध्यो, मनु बेध्यो, बेधी मन की बुद्धि ॥५२॥

अथ देशविरोध-वर्णन—(दोहा)

मलयानिल मन हरत हठि, सुखद नर्मदाकूल ।
सुवन सघन घनसारमय, तरवर तरल सफूल ॥५३॥
मरुत देस मोहन महा, देखहु सकल सभाग ।
अमल कमल-कुल-कलित जहँ, पूरन सलिल तड़ाग ॥५४॥

अथ कालविरोध-वर्णन—(दोहा)

प्रफुलित नव नीरज रजनि, वासर कुमुद विसाल ।
कोकिल सरद, मयूर मधु, वरषा मुदित मराल ॥५५॥

अथ निगमविरोध-वर्णन—(दोहा)

स्थाई वीर सिंगार के, करुना घृना प्रमान ।
तारा अरु मंदोदरी, कहत सतीनि समान ॥५६॥

[५२] सुद्धि—लाज (बाल०) । बुद्धि—ज्ञान (बाल०) ।

[५४] मरुत देस—मरु सुदेस (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[५५] विसाल—विलास (बाल०) ।

अथ न्याय-आगम-विरोध-वर्णन-(दोहा)

पूजिय तीन्यौँ बरन जहँ करि बिप्रनि सौँ भेद ।
 पुनि लीबो उपबीत हम, सुनि लोजै सब बेदु ॥१७॥
 इहि बिधि औरहु जानिजहु, कबिकुल सकल विरोध ।
 'केसव' जे हे कहूँ हयौँ, मूढ़नि के अबिरोध ॥१८॥
 'केसव' नीरस बिरस अरु, दुस्संधान बिधानु ।
 पात्र जु दुष्टादिकन को, रसिकप्रिया तँ जानु ॥१९॥

इति श्रीमत्त्रिविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां
 कवित्तदूषणवर्णनं नाम तृतीयः प्रभावः ॥३॥

४

अथ कविभेद-वर्णन-(दोहा)

'केसव' तीनिहु लोक में, त्रिविध कविनि के तात ।
 मति पुनि तीनि प्रकार की बरनत मति-अवदात ॥१॥
 उत्तम मध्यम अधम कवि, उत्तम हरि-रस-लीन ।
 मध्यम मानत मानसनि, दोषनि अधम प्रवीन ॥२॥

(सवैया)

हेँ अति उत्तम ते पुरुषारथ जे परमारथ के पथ सोहेँ ।
 'केसवदास' अनुत्तम ते नर सतत स्वारथ-संजुत जो हेँ ।
 स्वारथ हूँ परमारथ भोगनि मध्यम लोगनि के मन मोहेँ ।
 भारथ पारथमीत कह्यो परमारथ-स्वारथ-हीन ते को हेँ ॥३॥

अथ कविरीति-वर्णन-(दोहा)

साँची बात न बरनहीं, भूठी बरनन बानि ।
 एकनि बरनत नियम करि, कवि-मत बिबिध बखानि ॥४॥

[५७] जहँ-जग (दीन०); वर (सरदार०) । सुनि-पढ़ि (वही) ।

[५८] जे हे०-कहे कहूँ क अब (हरि०, दीन०) । अबिरोध-अनुरोध (हरि०) ।

[५९] दुष्टादिकन-दुष्टाकविनि (बाल०) ।

[१] तात-राय (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) । मति-अवदात-सब सुखदाय (वही) ।

[२] मानसनि-मानुषनि (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[४] बिबिध-त्रिविध (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

अथ सत्य बात को वर्णन—(दोहा)

‘केसवदास’ प्रकास सब चंदन के फल फूल ।
कुसुन पक्ष की जोन्ह ज्यों, सुकल पक्ष तम तुल ॥५॥

अथ मिथ्या बात को वर्णन—(दोहा)

जहँ जहँ बरनत सिंधु कों, तहँ तहँ रतननि लेखि ।
सुखम सरबर हू कहत ‘केसव’ हंस बिसेषि ॥६॥
लेन कहँ भरि मूठि तम, सूजनि सियनि बनाइ ।
अंजलि भरि पीवन कहँ, चंद्र-चंद्रिका पाइ ॥७॥
सष के कहत उदाहरन, बाढ़ै ग्रंथ अपार ।
कहँ कहँ ताते कह्यो, कबिकुल चतुर बिचार ॥८॥

अथ तम को उदाहरण—(कवित्त)

कंटक न अटकतु फाटै न चरन चँपि,
बात तँ न जात उड़ि आँगु न उधारियै ।
नेक ही न भीजत मुसलधार बरसत,
कीच न रुचत रंच चित्त में बिचारियै ।
‘केसोदास’ सावकास परम प्रकास सों,
उसारियै पसारियै न पिय पै बिसारियै ।
चलियै जू ओढ़ि पट तम ही को गाढ़ो तम,
पातरो पिछौरा सेत पाट को उतारियै ॥९॥

अथ चंद्रिका को उदाहरण—(कवित्त)

भूषन सकल घनसार ही के घनस्याम,
कुसुम-कलित केस रही छबि छाई सी ।

[५] सब-बहु (हरि°, सरदार°, दीन°) ।

[६] कों—सब (याज्ञिक°, हरि°, सरदार°, दीन°) । कहत-कहँ (याज्ञिक°, हरि°, सरदार°, दीन°)

[७] सूजनि—सुजनी सियत (याज्ञिक°) ।

[८] सब के—केसव (बाल°) । चतुर—लेहु (याज्ञिक°) ।

[९] अटकत-अटकै न (याज्ञिक°, हरि°, सरदार°, दीन°) । आँगु-अंग (हरि°, सरदार°, दीन°) । रुचत-रंचत (याज्ञिक°, हरि°, सरदार°, दीन°) । प्रकास सो—प्रकासन (याज्ञिक°, हरि°, सरदार°, दीन°) । गाढ़ो तम-गाढ़ो तन (याज्ञिक°, हरि° सरदार° दीन°) ।

मोतिनि की सरि सिर कंठ कंठमाल हार,
 ओर रूप जोति जात हेरत हिराई सी।
 चंदन चढ़ाई चारु सुंदर सरीर सब,
 राखी सुभ्र सोभा सुनि बसन बसाई सी।
 सारदा सी देखित देखो जाइ 'केसोराइ,'
 ठाढ़ा वह कुंवर जुन्हाई मँ अन्हाई सी ॥१०॥

अथ कविनियम-दर्शन—(वोह)

बरनत चंदन मलय ही, हिमगिरि हो भुजपात।
 बरनत देवनि चरन तँ, सिर तँ मानुष-गात ॥११॥
 अति लज्जाजुत कुलबधू गनिका गनि निर्लज्ज।
 कुलटनि सों कोविद कहत, अंग सलज्ज अलज्ज ॥१२॥
 बरनत नारिनि नरनि तँ, लाज चौगुनी चित्त।
 भूख द्विगुन साहस छगुन, काम अठगुनै मित्त ॥१३॥
 कोकिल को कल बोलियो, बरनत हँ मधुमास।
 बरपा ही हरषित कहँ, केकी 'केसवदास' ॥१४॥
 वनुजन सों दितिसुतन सों, असुरै कहत बखानि।
 ईस-सीस साँस वृद्ध की, बरनत बालक-बानि ॥१५॥
 सहज सिंगारत सुंदरो, जदपि सिंगार अपार।
 तदपि बखानत सकल कवि, सोरहई सिंगार ॥१६॥

(कवित्त)

प्रथम सकल सुचि, मज्जन, अमल वास,
 जावक, सुदेस केसपास को सुधारिबो।
 अंगराग, भूषन विविध, मुखवास राग,
 कज्जल-कालत लोल लोचन निहारिबो।
 बोलनि हँसनि मृदु चातुरी चलनि चारु,
 पल पल प्रति पतिव्रत प्रतिपारिबो।
 'केसोदास' सबिलास करहु कुँवर राधे,
 यहि विधि सोरहू सिंगारनि सिंगारिबो ॥१७॥

[१०] ओर—बाकी (दीन) । सुनि—सर (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[१४] बोलियो—बुझिया (याज्ञिक०) । कहँ—पढ़ा (बाल०) ।

[१५] वृद्ध—वृद्धि (हरि०, दीन) ।

[१७] मृदु—चित्त (याज्ञिक०, हरि०, दीन०) । प्रति पतिव्रत—पतिव्रत प्रीति (सरदार०) ।

(दोहा)

कुलटा को पति प्रेमवस बारवधुनि केँ जानु ।
जाहि दई पितु मातु सो कुलजा को पति मानु ॥१८॥
महापुरुष को प्रगट ही, वरनत वृषभ समान ।
दीप, थंभ, गिरि, गज, कलस, सागर, सिंघ प्रमान ॥१९॥

(कवित्त)

गुनमनि वैरागर, धीरज को सागर,
उजागर धवल धर धर्मधुर धाए जू ।
खलतर तोरिबे कौँ राजे गजराज सम,
अरि गजराजनि कौँ सिंह सम गाए जू ।
वामनि कौँ वामदेउ, कामनि कौँ कामदेउ,
रन-जयथंभु रामदेउ मन आए जू ।
कासीस-कुल-कलस, जंबूदीप-दीप 'केसो-
दास' को कलपतरु इंद्रजीत आए जू ॥२०॥

(दोहा)

वृषभ कंध सुर मेघ-सम, भुज धुज अहि परिमान ।
उर सम सिला कपाट अंग, ओर त्रियाणि समान ॥२१॥

(कवित्त)

मेघ ज्यौँ गँभीर बानी सुनत सखा सिखीनि,
सुख अरि उर के जवासे ज्यौँ जरत हैं ।
जाके भुजदंड भुवलोक में अभय धुज,
देखि देखि दुज्जन भुजंग ज्यौँ डरत हैं ।
तोरिबे कौँ गदतरु होत हैं सिला सुरूप,
राखिबे कौँ द्वारनि किवार ज्यौँ अरत हैं ।
भूतल कौँ इंद्र इंद्रजीत राजे जुग जुग
'केसोदास' जाकेँ राज राज सो करत हैं ॥२२॥

इति श्रीमत्विषयभूषणभूषितायां कविप्रियायां कविव्यवस्था-

वर्णनं नाम चतुर्थः प्रभावः ॥४॥

[१८] बारवधुनि केँ-बारवधूधन (सरदार०) । जानु-दान (हरि०) ।

यह दोहा याज्ञिक और दीन में नहीं ।

[१९] प्रमान-सुजान (बाल) । सिंघ-सील (याज्ञिक०) ।

[२१] समान-प्रमान (बाल०) ।

५

अथ कविता-अलंकार-वर्णन-(दोहा)

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुवरन सरस सुवृत्त ।
भूषन बिनु न बिराजहाँ, कविता बनिता भित्त ॥१॥
कविनि कहे कवितानि के, अलंकार द्वै रूप ।
एक कहे साधारनै, एक बिसिष्ट सरूप ॥२॥

अथ सामान्यालंकार-(दोहा)

सामान्यालंकार को चारि प्रकार प्रकास ।
वर्न बर्न्य भू-राज-श्री, भूषन 'केसवदास' ॥३॥

अथ वर्णालंकार-(दोहा)

स्वेत पीत कारे अरुन, धूमर नीले वर्न ।
मिश्रित 'केसवदास' कहि, सात भाँति सुभकर्न ॥४॥

अथ श्वेतवर्णन-(दोहा)

कीरति, हरिहय, सरद घन, जोन्ह, जरा, मंदार ।
हरि, हर, हरगिरि, सूर, ससि, सुधा, सौध, घनसार ॥५॥
बल, बक, हीरा, केवरो, कौड़ी, करका, कास ।
कुंद, काँचरी, कमल, हिम, सिकता, भस्म, कपास ॥६॥
खाँड, हाड़, निर्भर, चँवर, चंदन, हंस, मुरार ।
छत्र, सत्यजुग, दूध, दधि, संख, सिंघ, उडुमार ॥७॥
सेष, सुकृति, सुचि, सत्वगुन, संतनि के मन, हास ।
सीपि, चून, भोड़र, फटिक, खटिका, फेन, प्रकास ॥८॥
सुक्र, सुदर्सन, सुरसरित, बारन बाजि समेत ।
नारद, पारद, अमल जल, सारदादि सब सेत ॥९॥

(कवित्त)

कीने छत्र छित्तिपति, 'केसोदास' गनपति,
दसन, बसन बसुमति कखो चारु है ।
बिधि कियो आसन सरासन असमसर,
आसन कौ कीनो पाकसासन तुषारु है ।

[१] सरस—वरन (बाल०) ।

[७] दधि—बुधु (बाल०)

हरि करी सेज हरिप्रिया कखो नाकमोती,
हर कखो तिलक हरा हूँ कखो हार है ।
राजा दसरथसुत सुनौ राजा रामचंद्र,
रावरो सुजसु सब जग को सिंगारु है ॥१०॥
देहुदुति हलधर कीने निसिकर कर,
जगकर बानी वर, बिमल बिचारु है ।
मुनिगन मन मानि, दुजनि जनेऊ जानि,
संख संखपानि-गानि सुखद अपारु है ।
'केसोदास' सखिलास विलसै विलासिनीन,
सुख मुख मृदु हास, उदय उदारु है ।
राजा दसरथसुत सुनौ राजा रामचंद्र,
रावरो सुजसु सब जग को सिंगारु है ॥११॥
नारायन कीनी मनि उर अवदात गुनि,
कमला की बीना अनि सोभा सुभ सारु है ।
'केसव' सुरभि केस, सारदा सुदेस वेग,
नारद को उपदेस, बिमल बिचारु है ।
सौनक ऋषी विसेषि सीरप सिखानि लेखि,
गंगा की तरंग देखि, बिमल बिहारु है ।
राजा दसरथसुत सुनौ राजा रामचंद्र,
रावरो सुजसु सब जग को सिंगारु है ॥१२॥

(सवैया)

बिलोकि सिरोरुह सेत समेत, तनूरुह 'केसव' यों गुन गायो ।
उठे किधौँ आयु की ओधि के अंकुर, सूल कि मुख सख समूल नसायो ।
लिख्यो किधौँ रूपे के पानी पराजय रूप को भूप कुरूप लिखायो ।
जरा सरपंजर जीउ जख्यो कि जरा जरकंवर सो पहिरायो ॥१३॥
अभिराम सचिक्कन स्थाम सुगंध के धामहु तेँ जे सुभाइक के ।
प्रतिकूल भए दगसूल सबै किधौँ साल सिंगार के घाइक के ।
निज दूत अभूत जरा के किधौँ अविताली जरा जन जाइक के ।
सित केस हियँ इहि बेस लसे जनु साइक अंतक नाइक के ॥१४॥

[११] सखिलास-सो विलसि (दीन०) । राजा रामचंद्र-राजिवनयन राम (बाल०) ।

[१२] बीना-बाणी (दीन०) । बिमल बिचारु-विसद बिचारु (दीन०) । सिखानि-सिखीनि (बाल०) । बिमल बिहारु-विसद बिहारु (बाल०) ।

[१३] केसव-कोविद (बाल) । लिखायो-भजायौ (याज्ञिक०) । रूपे-रूप (हरि०, दीन०) जरा जरकंवर-जुरा जरकंवर (दीन०) ।

[१४] अविताली-अफताली (हरि०, दीन०) । जाइक-लाइक (वही) ।

लसेँ सित लोम सरीर सबै कि जरा जस रूपे के पानी लिखायो ।
 सुरूप के देस उदास की कीलनि कीलित कै कि कुरूप नसायो ।
 जरेँ किधौ 'केसव' व्याधिन की किधौ औधि के अंकुर अंत न पायो ।
 जरा सरपंजर जीव जखो कि जरा जरकंवर सो पहिरायो ॥१५॥

अथ पीत-वर्णन-(दोहा)

हरिबाहन, विधि, हरजटा, हरी, हरद, हरतालु ।
 चंपक, दीपक, वीररसु, सुरगुरु, मधु, सुरपालु ॥१६॥
 सुरगिरि, भू, गोरोचना, गंधक, गोधनमूत ।
 चक्रवाक, मनसिल, सदा द्वापर, वानरिपूत ॥१७॥
 कमलकोस, केसववसन, केसर, कनक सभाग ।
 सारामुख, चपलादि सब, पीतरि पीत पराग ॥१८॥

(संकेया)

मंगल ही जु करी रजनी विधि, याही तें मंगली नाउ धख्यो है ।
 दूसरें दामिनि देह सँवारि, उड़ाइ दई घनु जाइ बख्यो है ।
 रोचन कौं रचि केतकि चंपक फूलनि में अंगवास भख्यो है ।
 गौरि-करि गुराई की मैल मिलै हाटक कै करहाट कख्यो है ॥१९॥

अथ कृष्ण-वर्णन-(दोहा)

बिंध्य बृक्ष आकास, असि, अर्जुन, खंजन, साँप ।
 नीलकंठ को कंदु, सनि, व्यास, विसासी, पाप ॥२०॥
 राकस, अग्ररु, लँगूरमुखु राहु, छाँह, मद, रोर ।
 रामचंद्र, घन, द्रौपदी, सिंधु, असुर, तम, चोर ॥२१॥
 जामू, जमुना जानियै, तिल, खल, मनसिज, चीर ।
 भोल, करा, बन, नरक, मसि, मृगमद, कज्जलनीर ॥२२॥
 मधुप, निसा सिंगाररस, काली, कृत्या, कोल ।
 अपजसु, रीछ, कलंक, कलि, लोचन-तारे लोल ॥२३॥

[१५] रूप-रूप (बाल०) । कीरति (अन्यत्र) ।

कहीं कहीं यह छंद और है—

चंद्रमनि चंद्रचूड़ चारुता विचारि चित्त चामर चाँदनी चंद्र वारि वारि डाख्यो है ।
 'केसव' कुमुद कुंद कंबुकंठ कंठारव कामिनी कटाक्ष कमनीयता पसाख्यो है ।
 पारद नारद मुनि सारद सरदधन घन घनसार जीति मिलै मन माख्यो है ।
 ऐसो जस उज्जल जगत इंद्रजीतजू को बिसद प्रभाव बर जासौं हंस हाख्यो है ॥

[१८] दि सब-दिवस (हरि, दीन) ।

[१९] दूसरें-दीपति (दीन) । मैल मिलै करि-मेलहि लै करि (दीन०) । कै-लै (बाल०); तें (दीन०) ।

मारग अग्नि, किसान नर, लोभ, छोभ, दुख, मोह ।
 बिरह, जसोदा, गोपिका, कोकिल, महिषी लोह ॥२४॥
 काँच, कीच, कच, काम, मल केकी, काक, कुरूप ।
 कलह, लुद्र, छल आदि दै कारे कृस्न सरूप ॥२५॥

(कवित्त)

बैरिनि कँ बहु भाँति देखतहीं लागि जाति,
 कालिमा कमलमुख सव जग जानी है ।
 जतन अनेक करि जदपि जनम भरि,
 धोवत हू छूटति न 'केसव' बखानी है ।
 निज दल जागँ जोति, परदल दूनी होति,
 अचला चलति यह अकह कहानी है ।
 पूरन प्रताप-दीप-अंजन की राजि राजै,
 राजति श्रीरामचंद्र-पानि न कृपानी है ॥२६॥

अथ श्वेत-कृष्ण-विश्रित-वर्णन- (कवित्त)

हंसनि के अवतंस रचे रंच कोच करि,
 सुधा सौं सुधारे मठ काँन के कलस सौं ।
 गंगाजू के अंग-संग जमुना-नरंग बल-
 देव को बदन रस्यो बारुनी के रस सौं ।
 'केसव' कपाली-कंठ-कूल कालकूट जैसेँ,
 अमल कमल अलि सोहै ससि सस सौं ।
 राजा रामचंद्रजू के त्रास बस भारे भूप,
 भूमि छाड़ै भागे फिरै ऐसे अपजस सौं ॥२७॥

अथ आरक्त-वर्णन- (दोहा)

इंद्रगोप, खद्योत, वुज, केसरि, कुसुम बिसेधि ।
 'केसव' गजमुख, बिबरबि, ताँबो, तक्षक लेखि ॥२८॥
 रसना, अधर, द्विगंत, पल, कुक्कुटसिखा समान ।
 मानिक सारससोस, सुक, बानर-बदन प्रमान ॥२९॥

[२६] राजि राजै-राजै रज (याज्ञिक) ; राजै रेख (. रि० सरदार०, दीन०) ।

[२७] रस्यो-रस्यो (सरदार०, दीन०) ।

[२८] केसव-भदिरा (हरि , सरदार , दीन०) । बिब-बिबि (याज्ञिक०) ; बिदु (बाल०) ; बाल० (दीन०)

कोकिल, चास, चकोर, पिक, पारावत नख नैन ।
 चिंचु चरन कलहंस के, पकी कँदूरी ऐन ॥३०॥
 जपाकुसुम, टाड़िमकुसुम, किंसुक, कंज, असोक ।
 पावक, पल्लव, बीटिका, रंग रुचिर सब लोक ॥३१॥
 रातो चंदन रुद्ररस, क्षत्रिय-धर्म मँजीठ ।
 अरुन महावर, रुधिर, नख, गेरू, संध्या ईठ ॥३२॥

(सवैया)

फूले पलास विलासथली बहि 'केसवदास' हुलास न थोरे ।
 सेष असेष मुखानल की जनु, ज्वाल बिसाल चली दिवि वोरे ।
 किंसुकश्री सुकतुंडनि की रुचि राचै रसातल मँ चित चोरे ।
 चिंचुनि चापि चहूँ दिसि डोलत चारु चकोर अंगारनि भोरे ॥३३॥

अथ धूम्र वर्णन—(दोहा)

काकवंठ, खर, मृषिका, ग्राह, गोध, भनि भूरि ।
 करभ, कपोतनि आदि दै धूम, धूमिली धूरि ॥३४॥

राघव की चतुरंग चमू बहु धूरि उठी जल हू थल छाई ।
 मानौ प्रताप-हुतासन-धूम सु 'केसवदास' अकास न माई ।
 मेदि कै पंच प्रभूति किधौ बिधि रेनुमई नव रीति चलाई ।
 दुख-निवेदन कौ भवभार को भूमि मनौ सुरलोक सिधवाई ॥३५॥

अथ बाल-वर्णन—(दोहा)

दूष, बंस, कुवलय, नलिन, अनिल, व्योम तन बाल ।
 मरकत मनि, हय सूर के, नीलवर्ण सैवाल ॥३६॥

(सवैया)

कंठ दुकूल सु ओर दुहूँ दिसि यौ उरमै बल कँ बलदाई ।
 'केसव' सूरज-अंसुनि मंडि मनौ जमुना जलधार धसाई ।
 संकरसैल-सिलातलमध्य किधौ सुक की अवली फिरि आई ।
 नारद-बुद्धिबिसारद-हीय किधौ तुलसीदल-माल सुहाई ॥३७॥

[३०] चास-चाख (दीन०); चारु (अन्यत्र) । कँदूरी-कुंदुरु (दीन०); किंदुरी (अन्यत्र) ।

[३३] कहि-बहु (याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) । थोरे-खोरे (बाल०) ।

[३४] भूरि-धूरि (बाल०) । ग्राह-गृहगोघा (याज्ञिक०, हरि०, दीन०) । धूमिली-धूमरी (वही) ।

[३५] बहु-बस (याज्ञिक अ०, सरदार०, हरि०); चापि (दीन०) ।

[३७] दिसि-उर (याज्ञिक अ०, हरि०, दीन०) ।

अथ श्वेत-कृष्ण-मिश्रित-वर्णन-(दोहा)

सिंघ कृष्ण हरि सन्द गनि, चंद बिन्दु बिधु देखु ।
 अभ्रक धातु अकास पुनि कृष्ण स्याम सिति लेखु ॥३८॥
 घन कपूर घन मेघ अरु, नागराज गज सेपु ।
 पयोरासि कहु सिंधु सौँ, अरु छिति छीरहि लेखु ॥३९॥
 राहु सिंघ सिर्घाजु भनि, हरि बलभद्र अनंतु ।
 अर्जुन कहिजौ सेत सौँ अरु पारथ बलवंतु ॥४०॥
 हरिगज सुरगज समुझियै, हरिगज हरिगज जानि ।
 कोकिल सौँ कलकंठ कहि, अरु कलहंस बखानि ॥४१॥
 कृष्णनदीवर सन्द सौँ, गंगा सिंधु बखानि ।
 नीरद निकसे दांत सौँ, अरु जु नीर को दानि ॥४२॥

अथ श्वेत पात-वर्णन-(दोहा)

सिव बिरंचि सौँ संभु भनि, रजत रजत अरु हेमु ।
 स्वर्न सरभ सौँ कहत हँ, अष्टापद करि नेम ॥४३॥
 सोम स्वर्न कहि चंद, कलधौत रजत अरु हेमु ।
 तारकूट रूपो रुचिर, पीतारि कहि करि प्रेमु ॥४४॥

अथ श्वेत-आरक्त-वर्णन- दोहा)

श्वेत वस्तु सुचि, अग्नि सुचि, सूर सोम हरि होइ ।
 पुष्कर तीरथ सौँ कहै, पंकज सौँ सब लोइ ॥४५॥
 हंस हंस रवि बरनियै, अर्क फटिक रवि मानु ।
 अब्ज संख सरसिज दुआँ, कमल कमल जल जानु ॥४६॥

इति श्रीमत्त्रिविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां

सामान्यालंकारवर्णने श्वेतादिवर्णवर्णनं

नाम पंचमः प्रभावः ॥५॥

[३८] कृष्ण-पाख (दीन०) ।

[४०] कहिजौ-कहिये (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) । सेत-चेत (बाल०) ।

[४१] हरिगज-हरि हरिगज गज (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०) ;
 फिर हरिगज गज (दीन०) ।

[४४] स्वर्न-स्वर्ग (बाल०) । कहि-अरु (दीन०) ।

६

अथ वर्यालंकार-(दोहा)

संपूरन, आवर्त, कहि कुटिल, त्रिकोन सुबृत्त ।
 तीक्ष्ण, गुरु, कोमल, कठिन, निश्चल, चंचल चित्त ॥१॥
 सुखद, दुखद, अरु मंदगति, सीतल, तप्त, सुरूप ।
 कूरस्वर, सुस्वर मधुर, अबल बलिष्ठ अनूप ॥२॥
 सत्य, भूठ, गंडल बरनि, अगति, सदागति, दानि ।
 अष्टविंश विधि में कहे, बर्ण्य अनेक बखानि ॥३॥

अथ संपूर्ण-वर्णन-(दोहा)

इतने संपूरन सदा बरने 'केसवदास' ।
 अंबुज, आनन, आरसी संतत प्रेम प्रकास ॥४॥
 (कवित्त)

हरि-कर-मंडन, सकल-दुख-खंडन,
 मुकुर महिमंडल के कहत अखंडमति ।
 परम सुवास पुनि पीयूष-निवास, परि
 पूरन प्रकास 'केसोदास' भू-आकास-गति ।
 बदन मदन कैसो श्रीजू के सदन जाहि,
 सोदर सुभोदर दिनेसजू के मित्र अति ।
 सीताजू के मुख मुख सुखमा का उपमा कौं,
 कोमल न कमल, न अमल रयनिपति ॥५॥

अथ आवर्त-वर्णन-(दोहा)

ये आवर्त बखानिजै, 'केसवदास' सुजान ।
 चकरी, चक्र, अलात अरु आतपत्र, खरसान ॥६॥
 (कवित्त)

दुहूँ रुख मुख मानौ पलट न जानी जात,
 देखि कै अलातजात जोति होति मंद लाजि ।
 'केसोदास' कुसल कुलाल-चक्र चक्रमन,
 चातुरी चित्त कै चारु आतुरी चलत भाजि ।
 चंदजू के चोहूँ कोद बेप परिवेष कैसो,
 देखत ही रहिये न कहिये बचनु साजि ।
 धाप छाँड़ि आपनिधि जानि दिसि दिसि रघु-
 नाथजू के छत्र तर भ्रमत भ्रमीनि बाजि ॥७॥

[५] गति-रति (बाल) । जाहि-जहि (हार्ग० दीन०) । मुख मुख सुखमा कौं-
 मुख मुखमा कौं सखि (सरदार० हरि०, दीन०) ।

अथ कुटिल-वर्णन-(दोहा)

अलक, अलिक, अ, कुंचिका, किंसुक, सुकमुख लेखि ।
अहि, कटाक्ष, धनु, बीजुरी कंकनभग्न बिसेखि ॥८॥
बालचंद्रिका, बालससि, हरि नख, सूकरदंत ।
कुहालादिक बरनियै कपटी कुटिल अनंत ॥९॥

(सवैया)

भोर जगी बृषभानुसुता अलसी धिलसी निसि कुंजबिहारी ।
'केसव' पौंछति अंचल-छोरनि पीक सु लांक गई भिटि कारी ।
बंक लगे कुच बीच नखच्छत देखि भई दग दूनी लजारी ।
मानौ बियोग-बराह हन्यो जुग सैल की संधिनि ईगवै डारी ॥१०॥

अथ त्रिकोण-वर्णन-(दोहा)

सकट, सिंघारो, बज्र, हल, हर के नैन निहारि ।
'केसवदास' त्रिकोन महि, पावककुंड बिचारि ॥११॥

(कवित्त)

लोचन त्रिलोचन को 'केसव' बिलोकि बिधि,
पावक के कुंड सी त्रिकोन कीन्ही धरनी ।
सोधी है सुधारि पृथु परम पुनीत नृप,
करि करि पूरन दसहुँ दिस करनी ।
ज्वालु सो जगतु जगु सुभग सुमेरु तामें,
जाकी जोति होति लोक लोक मन हरनी ।
थिर चर जीव हब्य होमिजत जुग जुग,
होता होत काल न जुगति जात बरनी ॥१२॥

अथ सुवृत्त-वर्णन-(दोहा)

वृत्त बेल भनि गुच्छ अरु, ककुद, साधु के अंग ।
कुम्भिकुंभ, कुच, अंड, मनि, कंदुक, कलस सुरंग ॥१३॥

(कवित्त)

परम प्रवीन अति कोमल कृपालु तेरे,
उर तें उदित नित चित हितकारी है ।
'केसोराइ' की सौँ अति सुंदर उदार सुभ,
सलज सुसील बिधि सूरति सुधारी है ।
काहू सौँ न जानै हाँस बोलि न बिलोकि जानै,
कंचुकी सहित साधु सूर्यी बैसवारी है ।
ऐसे हौँ कुचनि सकुचति न सकति बूझि,
हरि-हिय-हरनि प्रकृति कौनै पारी है ॥१४॥

अथ तीक्ष्ण-गुरु-वर्णन- (दोहा)

नख, कटाक्ष, सर, दुर्वचन, सेलादिक खर जानि ।
कच, नितब, गुन, लाज, मति, रति अति गुरु करि मानि ॥१५॥

(कविता)

सैहथी हथ्यार अैन अन्यारे, अनेक काम-
सर हू तेँ खरे खल-बचन बिसेषि
चोट न बचति ओट कीने हूँ कपाट कोट,
भौन भौहरे हू भारे भय अवरेखिये ।
'केसोदास' मंत्र, गद, जंत्रऊ न प्रतिपन्न,
रक्षै लक्ष लक्ष बज्र रक्षक न लेखिये ।
भेदियत मर्म, बर्म ऊपर कसेई रहे,
पीर घनी घाइलनि घाइ पै न देखिये ॥१६॥

(सवैया)

पहिले तजि आरस आरसी देखि घरीक घसे घनसारहि लै ।
पुनि पोंछि गुलाब तिलौछि फुलेल अँगोछे में आछे अँगोछनि कै ।
कहि 'केसव' मेद जुवादि सों माँजि इते पर आँज में आँजन दै ।
बहुरथी दुरि देखों तो देखि सखा मेरे लाज तो लोचन लागिय है ॥१७॥

अथ कामल-वर्णन- (दोहा)

पल्लव, कसुम, दयालुमन, माखन, मृदुल मुरारि ।
पाट, पामरी, जीभ, पद, प्रेम, सुपुन्य बिचारि ॥१८॥

(कविता)

मैन ऐसो मन मृदु, मृदुल मृनालिका के
सूत कैसे सुर धुनि मननि हरति है ।
दाख्यौ कैसे बाँज दंत, पात से अरुन ओँठ,
'केसोदास' देखि दग आनंद भरति है ।
परी मेरी तेरी मोहि भावति भलाई ताते,
बृभति हौं तोहि ओर बृभति डरति है ।
माखन सी जीभ, मुख कंज सो काँवरो, कहि,
काठ सी कठेठा बात कैसेँ निकरति है ॥१९॥

[१६] अैन-हू ते अति (दीन) । अन्यारे अनेक-अनियारे (दीन०) । भेदियत-भेदत हूँ (दीन०) ।

[१७] 'कहि' बाल० और याज्ञिक अ० में नहीं है । देखि सखी मेरे-देखौँ कहा सखि (दीन०, हरि०, सरदार०) ।

[१८] मृदुल-मैन (दीन०) ।

[१९] कैसे-ऐसी (दीन०) । मेरी-बीर (दीन०) । कहि-तासों (दीन०) ।

अथ कठोर-वर्णन-(दोहा)

कुच कठोर भुजमूल मनि वरनि बज्र कहि मित्त ।
घातु, हाड़, हीरा, हिये बिरही-जन के चित्त ॥२०॥
सूरनि के तन, सुम-मन, काठ, कमठ की पीठि ।
'केसव' सूखो चर्म अरु, हठ, सठ, दुर्जन-डीठि ॥२१॥

(कवित्त)

'केसोदास' दीरघ उसासनि को सदागति,
आयु को अकास है, प्रकास पाप भोगी को ।
देह जात जात रूप हाड़नि को रूपो रूप,
रूप को रूपक बिधु वासर-सँयोगी को ;
बुद्धिनि की बीजुरी है, नैननि को धाराधर,
छाती को घण्टार, घन घाड़नि प्रयोगी को ।
उदर को घाड़वा अग्नि-गेह मानत हौं,
जानत हों हीरा हीरा काहू पुत्रसोगी को ॥२२॥

अथ निश्चल-वर्णन-(दोहा)

सती, समर-भट, संत-मन, धर्म-अधर्म-निमित्त ।
जहाँ जहाँ ये बरनिचै, 'केसव' निश्चल चित्त ॥२३॥

(सवैया)

काय मनो बच काम न लोभ न मोह न मोहैं महाभय-जेता ।
'केसव' बाल, बहिक्रम, बृद्ध बिपत्तिनि हूँ अति धीरज-चेता ।
हूँ कलि में करुनावरुनालय कौन गनै कृत द्वापर त्रेता ।
एहै हूँ सूरज-मंडल भेदत सूर सती अरु ऊरधरेता ॥२४॥

अथ चंचल-वर्णन-(दोहा)

तरल तुरंग कुरंग-गन, वानर, चलदल-पान ।
लोभिन के मन, स्यारजन, बालक, काल-बिधान ॥२५॥
कुलटा, कुटिल कटाक्ष, मन, सपनो, जोवन, मीन ।
खंजन, अलि, गजश्रवन, श्री, दामिनि, पवन प्रवीन ॥२६॥

[२२] रूपो-पूरो (दीन०) । घन-तन (हरि०, सरदार०, दीन०) । हीरा-हियो (वही) ।

[२४] मोह न मोहैं-लोभ न मोहैं (दीन०) ।

[२५] गन-वन (हरि०, दीन०) ।

(कवित्त)

भौर ज्योँ भँवत लोल ललना लतानि प्रति,
 खंजन से थल, मीन मानौ जहाँ जल है ।
 सपनेऊ होत, कहूँ आपनो न अपनाए,
 भूलिये न बैन ऐन आक को सो फल है ।
 गहिये धौँ कौन गुन, देखत ही रहिये री,
 कहिये कछु न, रूप मोह को महल है ।
 चपला सी चमकनि सोहै चारु चहूँ दिसि,
 कान्ह को सनेह चलदल को सो दल है ॥२७॥

अथ सुखद-वर्णन—(दोहा)

पंडित पुत्र, पतिव्रता, बिद्या, बपु नारोग ।
 सुख ही फल अभिलाष के, संपति, मित्रसँजोग ॥२८॥
 दान, मान, धनजोग, जय, राग, बाग, गृह, रूप ।
 मुक्ति, सौम, सर्वज्ञता, ये सुखदानि अनूप ॥२९॥

(मालती छंद)

पंडित पूत सपूत सुधी पतिनी पतिप्रेम-परायन भारी ।
 जानै सबै गुन, मानै सबै जन, दानविधान दया उर धारी ।
 'केसव' रोगनि ही सौँ बियोग, सँजोग सुभोगनि सौँ सुखकारी ।
 साँच कहै जग माहि लहै जस, मुक्ति यहै चहूँ वेद बिचारी ॥३०॥

अथ दुखद-वर्णन—(दोहा)

पाप, पराजय, भूठ, हठ, सठता, मूरख मित्र ।
 बाँझन नेगी, रूप बिन, असहनसील चरित्र ॥३१॥
 आधि व्याधि, अपमान, रिन, परधर भोजन बास ।
 कन्या संतति, बृद्धता, बरषाकाल प्रबास ॥३२॥
 कुजन कुस्वामी, कुगति हय, कुपुरनिवास, कुनारि ।
 परबस, दारिद आदि दै, अरि दुखदानि बिचारि ॥३३॥

(कवित्त)

बाहन कुचालि, चोर चाकर, चपल चित्त,
 मित्त मतिहीन, सुम स्वामी उर आनिचै ।

[२७] सपनेऊ—सपनेऊ अपने न होत कहूँ आपन ए (याज्ञिक अ०); सपनो सो होत, कहूँ आपनो न अपनाये (दीन०) ।

[२८] सुख ही—सुखदा (दीन०) ।

[२९] जय—जय (सरदार०, दीन०) ।

परघर भोजन निवास, बास कुपुरनि,
 'केसोदास' बरषा प्रबास दुख-दानियै ।
 पापिन को अंगसंग, अंगना अनंगबस,
 अपजसजुत सुत, चित हित-हानियै ।
 मूढ़ता बुढ़ाई व्याधि दारिद मुठाई आधि,
 यहई नरक नरलोकनि बखानियै ॥३४॥

अथ मंदगति-वर्णन—(दोहा)

कुलतिय हास बिलास, बुध काम क्रोध मद मानि ।
 सनि, गुरु, सारस, हंस, गज, तियगति मंद बखानि ॥३५॥

(कवित्त)

कोमल बिमल मन, बिमला सो सखी साथ,
 कमला ज्यों लीन्हें हाथ कमल सनाल के ।
 नृपुर की धुनि सुनि, भोरें कलहंसनि के,
 चौंकि चौंकि परें चारु चेदुवा मराल के ।
 कचनि केँ भार, कुच-भारनि, सकुच-भार,
 लचकि लचकि जात कटितट बाल के ।
 हरेँ हरेँ बोलति बिलोकात हँसति हरेँ,
 हरेँ हरेँ चलति हरति मन लाल के ॥३६॥

अथ शीतल-वर्णन (दोहा)

मलयज, दाख, कलंद, सुख, ओरो, मिश्री, मीत ।
 प्रियसंगम-घनसार, ससि, जल, जलरुह, हिम सीत ॥३७॥

(कवित्त)

सीतल समीर टारि, चंद्रचंद्रिका निवारि,
 'केसोदास' ऐसे ही तौ हरषु हिरातु है ।
 फूलनि फैलाइ डारि, भारि डारि घनसार,
 चंदन काँ टारि चित्त चौगुनो पिरातु है ।
 नीरहीन मीन मुरझाइ जीवै नीर ही पै,
 छीर के छिरीकेँ कहा धीरज धिरातु है ।
 गई है तँ पीर किधौ यों धौँ उपचार करै,
 आग को तौ दाध्यो अंग आगि ही सिरातु है ॥३८॥

अथ तप्त-वर्णन—(दोहा)

रिपु प्रताप दुर्बचन तप, तप्त बिरह संताप ।
 सूरज आगि बजागि दुख, त्रिस्ना पाप बिलाप ॥३९॥

(कवित्त)

‘केसोदास’ नींद, भूख, प्यास, उपहास-त्रास,
 दुख को निवास बिष मुख हीँ गह्यो परै ।
 बाइ को बहन, दिन दाव को दहन, बड़ी
 बाढ़वा-अनल-जाल-ज्वाल में रह्यो परै ।
 जीरन जनम-जात जोर जु र घोर, परि-
 पूरन प्रगट परिताप क्यों कह्यो परै ।
 सहिहौँ तपन-ताप, पर को प्रताप, -रघु-
 बीर को बिरह बीर मोपै न सह्यो परै ॥४०॥

अथ सुरुप-वर्णन—(दोहा)

नल, नलकूबर, मुरभिपज, हरिसुत, मदन निहारि ।
 दमयंती सीतादि त्रिय सुंदर रूप बिचारि ॥४१॥

(कवित्त)

को है दमयंती इंदुमती रति राति दिन,
 हौं हि न छबीली छनछयि जो सिंगारियै ।
 ‘केसव’ लजात जलजात, जातवेद आप,
 जातरूप बापुरो बिरूप सो निहारियै ।
 मदन निरूप निरूपम तो निरूप भयो,
 चंद बहुरूप अनुरूपकै बिचारियै ।
 सीताजी के रूप पर देवता कुरूप को हँ,
 रूप ही के रूपक तौ वारि वारि डारियै ॥४२॥

अथ क्रूरस्वर-वर्णन—(दोहा)

भौंगुर, साँप, उलूक, अज, महिषी, कोल बखानि ।
 काल, काक, बृक, करभ, खर, स्थान क्रूरस्वर जानि ॥४३॥

(कवित्त)

मिल्ली तँ रसीली जीली रौंटे हू की रट लीली,
 स्याऊँ तँ सवाई भूतभावती तँ आगरी ।
 ‘केसोदास’ भैंसनि की भामिनी तँ भासै भास,
 खरी तँ खरी सी धुनि ऊँट तँ उजागरी ।

[४०] दिन दाव-वनदाव (याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) । ताप-पाप
 (बाल०) ।

[४३] काल-भैंडि (दीन०)

भेड़िन की मीड़ी 'मैंड', 'एँड' न्यौरा-नारिन की,
बोक हू तँ बाँकी बानी, कागनि की कागरी ।
सूकरी सङ्कुचि, सँकि कूकरियौ मूक भई,
घूघू की घरनि को है मोहै नाग-नागरी ॥४४॥

अथ सुस्वर-वर्णन—(दोहा)

कलरव, केकी, कोकिला, सक, सारो, कलहंस ।
तंत्री, कंठनि आदि दै सुभसर दुंदुभि, बंस ॥४५॥

(कवित्त)

केकिन की केका सनि काके न मथत मन,
मनमथ-मनोरथ रथपथ सोहिये ।
कोकिला की काकलीनि कलित ललित बाग,
देखत ही अनुराग उर अवरोहिये ।
कोकनि की कारिका कहत सुक-सारिकानि,
'केसोदास' नारिका कुमारिकाऊ मोहिये ।
हंसमाल बोलत ही मान की माला उतारि,
बोलै नंदलाल सों न ऐसी वाला को हिये ॥४६॥

अथ मधुर-वर्णन—(दोहा)

मधुर प्रियाधर, सोमकर, माखन, दाख समान ।
बालक बातें तोतरी, कविकुल-उक्ति प्रमान ॥४७॥
महुवा, मिश्री, दूध, घृत अति सिंगार रस मिष्ट ।
ऊख, महुख, पियूष गनि 'केसव' साँचो इष्ट ॥४८॥

(सवैया)

खारिक खात न दाख्योँ ईँ दाखन माखन हूँ सह मेटी इठाई ।
'केसव' ऊख महुखहु दूधत आई हों तो पाहं छोड़ि जिठाई ।
तो रदनच्छद को रस रंचक चाखि गए करि केहूँ ढिठाई ।
ता दिन तँ उन राखी उठाई समेत-सुधा बसुधा की मिठाई ॥४९॥

[४४] रसीली-लजीली (बाल) । स्याऊँ-स्यारि (हरि०, सरदार०, दीन०) ।
भावती-भामिनी (हरि०, सरदार०, दीन०) । भास-बेस (दीन०) । ऊँट-
ऊँटि (याशिक०, हरि०, दीन०) ।

[४५] तंत्री कंठनि-तोतक तंत्री (दीन०) ।

[४६] मेटी-छोड़ी (बाल०) । दिन-छिन (बाल०) ।

अथ अबल-वर्णन-(दोहा)

पंगु, गुंग, रोगी, बनिक, मीत भूखजुत जानि ।
अंध, अनाथ, अजादि सिसु, अबला अबल बखानि ॥५०॥

(कवित)

खात न अघात सब जगत खवावत है,
द्रौपदी के साकपात खातहीं अघाने हौ ।
'केसोदास' नृपतिमुता के सतिभाइ भय,
चोर तैं चतुरभुज चहूँ चक्क जाने हौ ।
माँगनेऊ, द्वारपाल, दास, दूत, सुत, सुनौ,
काठमध्य कौन पाठ बेदनि बखाने हौ ।
और है अनाथनि को नाथ कोऊ, रघुनाथ
तुम तौ अनाथनि के हाथी ही बिकाने हौ ॥५१॥

अथ बलिष्ठ-वर्णन-(दोहा)

पवन, पवन को पूत, अरु परमेसुर, सुरपाल ।
काम, भीम, बाली, हली, बलि राजा, पृथु, काल ॥५२॥
सिंघ, बराह, गरुड, गुर, सेष, सती सब नारि ।
गरुड, वैद, माता, पिता, बली अदिष्ट बिचारि ॥५३॥

(सवैया)

बालि विंध्यो, बलिराउ बँध्यो कर मूली के सल कपालथली है ।
काम जख्यो जग, काल पख्यो बँदि, सेष धरैं बिष हालाहली है ।
सिंधु मथ्यो, किल काली नथ्यो, कहि 'केसव' इंद्र कुचालि चली है ।
राम हू की हरी रावन वाम, चहूँ जुग एक अदिष्ट बली है ॥५४॥

अथ साँच-भूठ-वर्णन-(दोहा)

'केसव' चारि हू बेद को मन क्रम बचन बिचारि ।
साँचो एक अदिष्ट हरि, भूठे सब संसार ॥५५॥

(सवैया)

हाथी न साथी न घोरे न चरे न गाँउ न ठाँउ को नाँउ बिलैहै ।
तात न मात न पुत्र न मित्र न बित्त न अंगऊ संग न रैहै ।
'केसव' काम को राम बिसारत और निकाम न कामहि ऐहै ।
चेत रे चेत अजो चित-अंतर अंतक-लोक अकेलो ही जैहै ॥५६॥

(कवित)

अनही ठीक को ठग, जानै न कुठौर ठौर,
ताही पै ठगावै ठेलि जाही को ठगतु है ।

जाके तौ डर निडर डग न डगत डरि,
 डर के डरनि डगि डौंगी ज्यो डगतु है ।
 ऐसे बसबास तैं उदास होहि 'केसोदास',
 काहे सो न भजै कहि काहे को खगतु है ।
 झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई काहू
 साँचे को बनायो तातैं साँचो सो लगतु है ॥५७॥
 अथ मंडल-वर्णन—(दोहा)

'केसव' कुंडल मुद्रिका, बलया, बलय, बखानि ।
 आलवाल, परिवेष, रविमंडल मंडल जानि ॥५८॥
 (कवित)

मनिमय आलवाल थलज जलज रवि-
 मंडल में जैसे मति मोहै कवितानि की ।
 जैसे सबिसेष परिवेष रेख, में असेष,
 सोभित सुबेष सोम सीमा सुखदानि की ।
 जैसे बंकलोचनि कलित कर कंकननि
 बलित ललित दुति प्रगट प्रभानि की ।
 'केसोदास' तैसे राजै रास में रसिक लाल,
 आसपास मंडली बिराजै गोपिकानि की ॥५९॥
 अथ अगति-सदागति-वर्णन—(दोहा)

अगति सिंधु, गिरि, ताल, तरु, बापी, कूप बखानि ।
 महानदी, नद, पंथ, जग, पवन सदागति जानि ॥६०॥
 (कवित)

पंथ न थकत पल मनोरथ-रथनि के,
 'केसोदास' जग-मग जैसे गाए गीत में ।
 पवन बिचार चक्र चक्र मन चित्त चढ़ि,
 भूतल अकास भ्रमे घाम जल सीत में !
 कौ लौ राखौ थिर बपु बापी कूप सर सम,
 हरि बिन कीने बहु वासर बितीत में ।
 ज्ञान-गिरि फोरि, तोरि लाज-तरु जाइ मिलौ,
 आपु ही तैं आपगा ज्यो आपनिधि प्रीतमें ॥६१॥

[५७] काहे सो न भजै-कैसे न भगत (बासिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

बनायो-कियो है (दीन०) ।

[५९] बलित-कलित (बाल०) । तैसे-ऐसे (दीन०) ।

[६१] पल-मन (सरदार०, दीन०) ।

अथ दान-वर्णन-(दोहा)

गौरि, गिरीस, गनेस, विधि, गिरा, ग्रहनि को ईस ।
 चिंतामनि, सुरवृत्त, गो, जगमाता, जगदीस ॥६२॥
 रामचंद, हरिचंद, नल, परसुराम दुखहर्न ।
 'केसवदास' दर्धाचि, पृथु, बलि, सिबि, भीषम, कर्न ॥६३॥
 भोज, विक्रमाजीत नृप, जगदेव रनधीर ।
 दानिन हूँ के दानि दिन, इंद्रजीत, बलबीर ॥६४॥

गौरीजू को दान-(दोहा)

पावक, फनि, विष, भस्म, मुख हर पवर्गमय मानि ।
 देत जु हेँ अपवर्ग कहँ, पारवती-पति जानि ॥६५॥

गणेशजू को दान-(कवित्त)

बालक मृनालनि ज्योँ तोरि डारै सब काल,
 कठिन कराल वं अकाल दीह दुख को ।
 बिपति हरत हठि पंकज के पात सम,
 पंक ज्योँ पताल पेलि पठवै कलुष को ।
 दूरि कै कलंक-अंक भव-सोस-ससि सम,
 राखत है 'केसोदास' दास के बपुष को ।
 साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तौरै,
 दसमुख मुख जोवै गजमुख-मुख को ॥६६॥

महादेवजू को दान-(कवित्त)

काँपि उठ्यो आपपति तपनहि ताप चढ़ी,
 सीरी योँ सरीर-गति भई रजनीस की ।
 अजहूँ न ऊँचो चाहै अनल मलिन-मुख,
 लागि रही लाज मन मानौ मन बीस की ।
 छाबि सों छाबीली लच्छि छाती मँ छपाई हरि-
 छूटि गई दान-गति कोरि हू तैतीस की ।
 'केसोदास' तेही काल कारोई हूँ आयो काल,
 सुनत श्रवन बकसीस एक ईस की ॥६७॥

[६६] दसमुख मुख-दसमुख नग (बाल०, याज्ञिक अ०) ।

[६७] आपपति-आपनिधि (हरि०, दीन०) । मलिन-अगिल (बाल०)
 लाज मन-लाज मुख (दीन०); लोकलाज (याज्ञिक०); लाज मनमानी दसवी
 की (सरदार०) ।

ब्रह्माजू को दान—(कवित्त)

आसीविष, राकसनि, दैयतनि दै पताल,
 सुरनि, नरनि दियो दिव्य, भू निकेतु है ।
 थिर चर जीवनि कौं दीनी वृत्ति 'केसोराइ'
 दीबे कहँ और कोऊ कहँ कहा हेतु है ।
 सीत, बात, तेज, तोय आवत समय पाइ,
 काहू पै न नाकी जाति ऐसी सकसेतु है ।
 अब तब जब कब, जहाँ तहाँ देखिजत,
 बिधि ही को दयो सब सब ही कौं देतु है ॥६८॥

गिराजू को दान—(कवित्त)

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाति,
 ऐसी मति 'केसव' उदार कौन की भई ।
 देवता प्रसिद्ध सिद्ध रिषिराज तपवृद्ध,
 कहि कहि हारे सब कहि न काहू लई ।
 भावी, भूत, वर्तमान जगत बखानत है,
 'केसोदास' क्यों हू न बखानी काहू पै गई ।
 बनें पति चारिमुख पूत बनें पाँचमुख,
 नाती बनें पटमुख तदपि नई नई ॥६९॥

सूर्यजू को दान—(कवित्त)

बाधक विविध व्याधि त्रिविध अधिक आधि,
 बेद उपबेद बध बंधन विधानु हैं ।
 जग पारावार पार करत अपार नर,
 पूजक परम पद पावत प्रमानु हैं ।
 पुरुष पुरान कहैं पुरुष पुरानै सब,
 पूरन पुरान सुनि निगम निदानु हैं ।

[६८] दिव्य—दिवि (याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) । जाति—जाइ (याज्ञिक अ०, याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) । सक—सर (याज्ञिक०); बाँधो (हरि०, सरदार०, दीन०) । दयो—दियो (याज्ञिक०); दोनो (याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०); दीन्हो (दीन०) ।

[६९] जाति—जाइ (याज्ञिक अ०, याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) । केसव—कैसे क (याज्ञिक अ०); उदित (दीन०); उद्यत (सरदार०) ।

भोगवान भागवान भगतन भगवान,
करिवे कौँ 'केसोदास' भानु भगवानु हँ ॥७०॥

परशुरामजू को दान-(सवैया)

जो धरनी हिरनाछ हरी वर जङ्गवराह छिनाइ लई जू ।
मानव दानव देवन के जु तपोबल केहूँ न हाथ भई जू ।
जा लागि 'केसव' भारथ भो भव पारथ जीवन ही जु बई जू ।
सातौ समुद्रन मुद्रित राम सु बिप्रन बार अनेक दई जू ॥७१॥

रामजू को दा -(कवित्त)

पूरन पुरान अरु पुरुष पुराने परि-
पूरन बतावै न बतावै और उक्ति कौँ ।
दरसन देत जिनि दरसन समझै न,
नेति नेति कहै बेद छाँडि और जुक्ति कौँ ।
जानि यह 'केसोदास' अनुदिन राम राम,
रत रहत न डरत पुनरुक्ति कौँ ।
रूप देइ अनिमाहि, गुन देइ गरिमाहि,
महिमाहि देइ भक्ति नाम देइ मुक्ति कौँ ॥७२॥

(सवैया)

जो सतजज्ञ करै करी इंद्र कौँ सो प्रियता कपिपुंज सौँ कीनी ।
ईस दई जु दए दससीस सु लंक विभोषन ऐसहि दीनी ।
दानकथा रघुनाथ की 'केसव' को वरनै रस अद्भुत भीनी ।
जो गति ऊरधरेतन की सु तौ औध के सूकर कूकर लोनी ॥७३॥
कैटभ सो, नरकासुर सो, पल में मधु सो, मुर सो जिनि माख्यो ।
लोक चतुर्दस रक्षक 'केसव' पूरन बेद पुरान बिचाख्यो ।
श्रीकमला-कुच-कुंकुम-मंडन-पंडित, देव अदेव निहाख्यो ।
सो कर मांगन कौँ बलि पै करतारहु के करतार पसाख्यो ॥७४॥

[७०] पूजक-पूजन (बाल०) ।

[७१] केहूँ न-कैस हू (बाल०) । ही जु-बीज (हरि०, दीन०) । यह छंद सरदार० में नहीं है ।

[७२] और-भेद (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) । रत-कहत (याज्ञिक अ०, याज्ञिक०) ।

[७४] कहीं कहीं इसके अनंतर 'सूर्य के दान' का कवित्त है ।

इंद्रजीतजू को दान-(कवित्त)

कारे कारे तम कैसे प्रीतम सुधारे बिधि,
वारि वारि डारे गिरि 'केसोदास' भाखे हँ ।
थोरे थोरे मदनि कपोल फूले थूले थूले,
डोले जल थल बल थानुसुत नाखे हँ ।
धंटा टननात घननात घने घूँघुरानि,
भौरँ भननात भुवपति अभिलाषे हँ ।
दुज्जन-दलिद्र-दल-दलन बिदारिबे कौँ
इंद्रजीत हाथियै हथ्यार करि राखे हँ ॥७५॥

वीरबलजू को दान-(सवैया)

पाप के पुंज पखावज 'केसव' सोक के संख सुने सुषमा में ।
भूँठ कै भाँकि बड़े डर के डफ, आवभ जूथन जानी जमा में ।
भेद की भेरी, अलोक कै भालरि, कौतुक भो कलि के कुरमा में ।
जूमत ही बलधीर बजे बहु दारिद के दरबार दमामें ॥७६॥

इति श्रीमत्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां
सामान्यालंकारवर्णनं नाम षष्ठः प्रभावः ॥३॥

७

अथ भूमि-भूषण-वर्णन-(दोहा)

देस, नगर, बन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल ।
रबि, ससि, सागर, भूमि के भूषण, रितु सब काल ॥१॥

- [७५] टननात-घननात (याशिक अ०, याशिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।
दुज्जन-दुवन (दीन०) । दल-दीह (बाल०) । बिदारिबे कौँ-अमरसिंघ
(याशिक अ०, याशिक०, हरि०, दीन०) । इंद्रजीत-केसोदास (याशिक०,
याशिक अ०, हरि०); ऐसे ऐसे (दीन०) । करि-कै कै (याशिक०) ।
[७६] भूँठ कै-भूँठ के भालरि भाँकि अलोक के (याशिक०, याशिक अ०, हरि०,
सरदार०, दीन०) । अलोक कै भालरि-बड़े डर के डफ (याशिक अ०,
याशिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

अथ देश-वर्णन-(दोहा)

रतनखानि, पसु, पक्षि, वसु, बसन सुगंध सुबेस ।
नदी, नगर, गढ़ बरनियै भाषा-भूषित देस ॥२॥

(कवित्त)

आछे आछे असन, बसन, वसु, बासु, पसु,
दान, सनमान, जान, बाहन बखानियै ।
लोग, भोग जोग, भाग, बाग, राग, रूपजुत,
भूषननि भूषित, सुभाषा मुख जानियै ।
सातौ पुरीं तीरथ, सरित, सब गंगादिक,
'केसोदास' पूरन पुरान, गुन गानियै ।
गोपाचल ऐसे गढ़, राजा रामसिंघजू से,
देसन की मनि महि मध्यदेस मानियै ॥३॥

अथ नगर-वर्णन-(दोहा)

खाई, कोट, अटा, धुजा, बापी, कूप, तड़ाग ।
बारनारि, असती, सती, बरनहु नगर सभाग ॥४॥

(कवित्त)

चहूँ भाग बाग बन मानहु सघन घन,
सोभा की सी साला, हंसमाला सी सरितबर ।
ऊँचे ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची जनु,
कौसिक की कीनी गंगा खेलत तरल तर ।
आपने सुखनि आगे निदत नरिंद और,
घर घर देखिजत देवता से नारि-नर ।
'केसोदास' त्रास जहाँ केवल अदिष्ट ही को
वारियै नगर और ओढ़छे नगर पर ॥५॥

अथ वन-वर्णन-(दोहा)

सुरभी, इभ, वन-जीव बहु भूत प्रेत भय-भीर ।
भिल्ल भवन, बल्ली, बिटप, दव बन बरनहु धीर ॥६॥

(कवित्त)

'केसोदास' ओढ़छे कैं आसपास तीस कोस,
तुंगारन्य नाम बन बैरी कौं अजीत है ।

[२] भूषित-भूषन (सरदार०, दीन०) ।

[३] रामसिंघ-मानसिंघ (बाल०) ।

बिधि कैसो बंधु बर बारन-बलित, बाघ,
 बानर, बराह, बहु भिल्ल कौं अभीत है ।
 जम की जमाति सी कि जामवंत को सो दल,
 महिष सुखद स्वच्छ रिच्छन को मीत है ।
 अचल अनलवंत, सिंधु सो सरितजुत,
 संभु कैसो जटाजूट परम पुनीत है ॥७॥

अथ गिरि-वर्णन—(दोहा)

शृंग तुंग, दीरघ दरी, सिद्ध सुंदरी, घातु ।
 सुर-नर-जुत गिरि बरनियै, औषध, निर्भरपातु ॥८॥

(कवित्त)

रामचंद्र कीने तेरे अरिकुल अकुलाइ,
 मेरु के समान आन अचल घरोनि में ।
 सारो सुक हंस पिक कोकिला कपोत मृग,
 'केसोदास' कहूँ हय करभ करीनि में ।
 डारे कहूँ हार दूटे राते पीरे पट छूटे,
 फूटे हैं सुगंध घट श्रवत तरीनि में ।
 देखिजत सिखर सिखर प्रति देवता से,
 सुंदर कुँवर अरु सुंदरी दरीनि में ॥९॥

अथ आश्रम-वर्णन—(दोहा)

होम-धूम-जुत बरनियै, ब्रह्मघोष मुनिबास ।
 सिंघादिक मृग मोर अहि, इभ सुभ बैर-बिनास ॥१०॥

(कवित्त)

'केसोदास' मृगज बड़ेरु चोखे बाघिनीनि,
 चाटति सुरभि बाघ-बालक-वदन है ।
 सिंघनि की सटाएँचे कलभ करनि करि,
 सिंघनि को आसन गयंद को रदन है ।
 फनी के फननि पर नाचत मुदित मोर,
 क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है ।
 बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसनि,
 रिषि को निवास किधौं सिव को सदन है ॥११॥

[७] बिधि—बिंध्य (हरि०, दीन) ।

[९] कोकिला कपोत—पारावत केकी (बाल०) ।

[११] सिंघनि की सय—सिंघिनी की सय (याज्ञिक अ०) ।

अथ सरिता-वर्णन-(दोहा)

जलचर हय गय जलज तट जङ्गकुंड मुनिवास ।
स्नान दान पावन नदी बरनौ 'केसवदास' ॥१२॥

(सवैया)

ओढ़छे तीर-तरंगिनि बेतवै ताहि तरै रिपु 'केसव' को है ।
अर्जुन-बाहु-प्रवाह-प्रबोधित रेवा ज्यौँ राजन की रज मोहै ।
जोति जगै जमुना सी लगै जगलोचन-लालित पाप बिपोहै ।
सूरसुता सुभ संगम तुंग तरंग-तरंगित गंग सी सोहै ॥१३॥

अथ बाग-वर्णन-(दोहा)

ललित लता, तरुवर, कुसुम, कोकिल कलरव, मोर ।
बरनि बाग अनुराग स्याँ, भँवर भँवत चहुँ ओर ॥१४॥

(कवित्त)

सहित सुदरसन करुनाकलित कम-
लासन विलास मधुवन मीत मानियै ।
सोहिये अपना रूपमंजरी पै नीलकंठ
'केसोदास' प्रगट असोक उर आनियै ।
रंभा स्याँ सदंभ बोलै मंजुघोषा उरबसी,
हंस फूले सुमनसु सब सुखदानियै ।
देव को दिवान सो प्रबीनरायजू को बाग,
इंद्र के समान तहाँ इंद्रजोत जानियै ॥१५॥

अथ ताल-वर्णन-(दोहा)

ललित लहर, खग, पुष्प, पसु, सुरभि समीर, तमाल ।
करत केलि पंथी प्रगट, जलचर बरनहु ताल ॥१६॥

(सवैया)

आपु धरै मल औरनि 'केसव' निर्मल काय करै चहुँ ओरै ।
पंथिन के परिताप हरै हठि जे तर तूल-तनूरुह तोरै ।
देखहु एक सुभाउ बड़ा बड़भाग तड़ागनि के बित थोरै ।
ज्यावत जीवनहारिनि काँ निज बंधन कै जगबंधन छोरै ॥१७॥

[१३] रिपु-सिधु (बाल०) । रज मोहै-मन मोहै (याज्ञिक अ०) ।

[१५] पै-और (सरदार०, दीन०) । तहाँ-जहाँ (याज्ञिक अ०, याज्ञिक०) ।

[१६] करत-करभ (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[१७] निज बंधन-निज बंधक (बाल०) ।

अथ समुद्र-वर्णन-(दोहा)

तुंग तरंग गभीरता रतन जलज बहु जंतु ।
गंगा-संगम देवत्रिय, जान विमान अनंतु ॥१८॥
गिरि बड़वानल वृद्धि बहु चंद्रोदय तें जानि ।
पन्नग देव अदेव गृह ऐसो सिंधु बखानि ॥१९॥

(सवैया)

सेष धरै धरनी, धरनी धरै 'केसव' जीव रचे विधि जेते ।
चौदह लोक समेत तिन्हें हरि के प्रति रोमनि में चित चेतै ।
सोवत तेऊ सुने इनही में अनादि अनंत अगाध हैं एते ।
अद्भुत सागर की गति देखहु सागर ही महैं सागर केते ॥२०॥
भूति बिभूति पियूषहु को विष ईस सरीर कि पाप बिपोहै ।
है किधौ 'केसव' कस्यप को घर देव-अदेवनि के मन मोहै ।
संत हियो कि बसें हरि संतत सोभ अनंत कहै कवि कोहै ।
चंदन-नीर-तरंग-तरंगित नागर कोऊ कि सागर सोहै ॥२१॥

अथ सूर्योदय-वर्णन-(दोहा)

सूर-उदय तें अरुनता पय-पावनता होइ ।
संख-वेद-धुनि मुनि करैं पंथ लगै सब कोइ ॥२२॥
कोक, कोकनद सोकहत, दुख कषलय, कलटानि ।
तारा ओषधि दीप ससि घूक चोर तम हानि ॥२३॥

(कवित्त)

कोकनद-मोदकर मदन-बदन किधौ,
दसमुख-मुख कषलय-दुखदाई है ।
रोधक असाधु-जन, सोधक तमोगुन को,
उदित प्रबोध बुधि 'कैसोदास' पाई है ।
पावन-करन पय हरिपद-पंकज कै,
जगमगै मनु जगमग दरसाई है ।
तारापति तेजहर, तारका को तारक कै,
प्रगट प्रभातकर ही की प्रभुताई है ॥२४॥

अथ चंद्रोदय-वर्णन-(दोहा)

कोक कोकनद बिरहि तम मानिनि कलटनि दुख्ख ।
चंद्रोदय तें कषलयनि जलधि चकोरनि सुख्ख ॥२५॥

[२०] चेतै-जेते (बाल०) ।

[२२] लगै-चलै (बाल०, सरदार०) ।

[२४] मनु-मनि (याज्ञिक०) ।

(कवित्त)

‘केसोदास’ है उदास कमलाकर सौँ कर,
 सोषक प्रदोष ताप तमोगुन तारियै ।
 अमृत असेष के बिसेष भाव बरषत,
 कोकनद मोद चंड खंडन बिचारियै ।
 परम पुरुष पद बिमुख पुरुष रुख,
 संमुख सुखद बिदुषनि उर धारियै ।
 हरि हैं री हिये में न हरिन हरिननैनी,
 चंद्रमा न चंद्रमुखी नारद निहारियै ॥२६॥
 अथ वसंत-वर्णन-(दोहा)

बरनि वसंत सपुष्प-अलि, बिरहि-विदारन बोर ।
 कोकिल-कलरव-कलित बन, कोमल सुरभि-समीर ॥२७॥

(कवित्त)

सीतल समीर सुभ गंगा के तरंगजुत,
 अंबर-बिहीन बपु बासुकि लसंत है ।
 सेवत मधुपगन गजमुख परभृत
 बोला सुनि होत सुखी संत औ असंत है ।
 अदल अमल रूपमंजरी-सुपद-रज-
 रंजित असोक दुख देखत नसंत है ।
 जाके राज दिसि दिसि फूले हैं सुमन सब,
 सिव को समाज किधौं ‘केसव’ वसंत है ॥२८॥
 अथ ग्रीष्म-ऋतु-वर्णन-(दोहा)

तातेँ तरल समीर सुख सुखे सरिता ताल ।
 जीव अबल जल थल बिकल ग्रीष्म सफल रसाल ॥२९॥

(कवित्त)

चंडकर-कलित, बलित घर सदागति,
 कंदमूल फल फूल दलनि को नासु है ।
 कीच-बीच बचेँ मीन, ब्याल बिल, कोलकुल
 दुरद दरीनि दिनकृत को बिलासु है ।
 थिर चर जीवन-हरन बन बन प्रति,
 ‘केसोदास’ मृगसिर श्रवन निवासु है ।

[२६] चंड—चंद (याशिक०, याशिक अ०) ।

[२८] सुपद०—में नीलकंठ (अन्यत्र) ।

[२९] सुख—मुख (हरि०, दीन०) ।

धावन बली धनुष सोभत निपानि सर,
सबर समूह किधौँ ग्रीषम प्रकासु है ॥३०॥

अथ वर्षा-ऋतु-वर्णन—(दोहा)

बरषा हंस पयान, बक, दादुर, चातक, मोर ।
केतकि पुंज, कदंब, जल, सौदामिनि घन घोर ॥३१॥

(कवित्त)

मौहैँ सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूषन जराइ जोति तड़ित रलाई है ।
दूरि करी मुख सुख सुखमा ससी की नैन
अमल कमल-दल दलित निकार्ई है ।
'केसोदास' प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक-सबद सुखदाई है ।
अंबर - बलित मति मोहै नीलकंठजू की
कालिका कि बरषा हरपि हिय आई है ॥३२॥

अथ शरद-ऋतु-वर्णन—(दोहा)

अमल अकास प्रकास ससि मुदित कमल-कुल कास ।
पंथी पितर पयान नृप सरद सु 'केसवदास' ॥३३॥

(कवित्त)

सोभा को सदन ससि बदन मदन कर,
बदैँ नर देव कुबलय बलदाई है ।
पावन पद उदार लसति हंसक मार,
दीपति जलजहार दिसि दिसि धाई है ।
तिलक चिलक चारु लोचन कमल रुचि,
चतुर चतुरमुख जग जिय भाई है ।
अमल अंबर नील लीन पीन पयोधर
'केसोदास' सारदा कि सरद सुहाई है ॥३४॥

[३०] मृगसिर-मृगसुत (बाल०) । भवन-भवत (बाल०) । धावन-धावत (याज्ञिक
अ०, हरि०, दीन०) । सबर-समर (याज्ञिक अ०, बाज्ञिक०) ।

[३१] बरषा०-बरषा बरनहु हंस बक (याज्ञिक अ०, हरि०) । पुंज-कुंद
(याज्ञिक०); पुष्प (दीन०) ।

[३४] बलदाई-सुखदाई (याज्ञिक अ०) ।

अथ हेमन्त-ऋतु-वर्णन-(दोहा)

तेल, तूल, तामोर, त्रिय, ताप, तपन रतिवन्त ।
दीह रयनि, लघु षोस मुनि सीत-सहित हेमन्त ॥३५॥

(कवित्त)

अमल कमल-दल लोचन, ललित गति,
जारत समीर सीत, भीत दीह दुख की ।
चंद्रक न खायो जाइ चंदन न लायो जाइ,
चंद न निहाख्यो जाइ प्रकृति बपुष की ।
घट की घटति जात घटना घटी हू घटी,
छिन छिन छीन छबि रबिमुख 'सुख की ।
सीकर तुषार स्वेद सोहत हेमन्त रितु,
किधौँ 'केसोदास' त्रिय प्रीतम बिमुख की ॥३६॥

अथ शिशिर- तु-वर्णन-(दोहा)

सिसिर सरस मन भरनियै, 'बेसव' राजा रंक ।
नाचत गावत रैन दिन, खेलत हँसत निसंक ॥३७॥

(कवित्त)

सरस अममसर सरमिज-लोचनि, बि-
लोक लोक लीक लाज लोपिये कौँ आगरी ।
ललित लता मुग्धाहु जानि जून उवान बाल,
बिटप उरनि लागै उमँगि उजागरी ।
पल्लव अधर मधु मधुपन पीवतहौँ,
रचित रुचिर पिक-रुत सुख-सागरी ।
इति बिधि सदागति बाम बिगलिन गात,
सिसिर की सोभा किधौँ बारनारि नागरी ॥३८॥
इति श्रीमद्विषयभूषणभूषितायां कविप्रियायां
सामान्यालंकारवर्णने श्वेतादिवर्णवर्णनं
नाम सप्तमः प्रभावः ॥७॥

[३६] निहाख्यो चितयौ (याज्ञिक अ०, हरि०, दीन०), लखायौ (याज्ञिक०) ।

त्रिय-प्रिया (सरदार०, दीन०) ।

[३८] पल्लव-कोमल (याज्ञिक० अ०) ।

८

अथ राज्यश्री-भूषण-वर्णन-(दोहा)

राजा, रानी, राजसुत, प्रोहित, दलपति, दूत ।
मंत्री, मंत्र, पयान, गय, हय, संग्राम अभूत ॥१॥
आखेटक, जलकेले पुनि, विरह, स्वयंवर जानि ।
भूषित सुरतादिकनि करि, राज्यश्रीहि बखानि ॥२॥

अथ राजा-वर्णन-(दोहा)

प्रजा, प्रतिज्ञा, पुन्यपन, परम प्रताप, प्रसिद्धि ।
सासन, नासन सश्रु के, बल बिबेक की वृद्धि ॥३॥
दंड, अनुग्रह, धारता, सत्य, सूरता, दान ।
कोष, देसजुत बरानयै, उद्दम छमा-निधान ॥४॥

(कवित्त)

नगर नगर पर घनई तौ गाजै घेरि,
ईत की न भाति, भीति अधन अधीर की ।
अरि-नगरान प्रति होत है अगम्या-गोन,
भावै बिभिचारी, जहाँ चोरी पर-पीर की ।
सासन को नासन करत एक गंधासन,
'केसादास' दुर्गनहीं दुर्गति सरीर की ।
दिसि दिसि जीति पै अर्जाति दुज दीननि सों,
ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की ॥५॥

अथ रानी-वर्णन-(दोहा)

सुंदरि, सुखद, पतिव्रता, सुचि रुचि, सील समान ।
यहि विधि रानी बरानियै सलज सुबुद्धि-निधान ॥६॥

(कवित्त)

माता जिमि पोषति, पिता ज्योँ प्रतिपाल करै,
प्रभु जिमि सासन करति, हेरि हिय सों ।
भैया ज्योँ सहाउ करै देति है सखा ज्योँ सुख,
गुरु ज्योँ सिखावै सीख हेत जोरि जिय सों ।

दासी ज्यों टहल करै, देवी ज्यों प्रसन्न हैं,
 सुधारै परलोक नातो नाहिं काहू बिय सों ।
 छाके हैं अयान मद छिति के छनक छुद्र,
 और सों सनेह करै छाँड़ि ऐसी तिय सों ॥७॥

काम के हैं आपने ही कामरति, काम साथ,
 रति न रतीकौ जरी, कैसे उर आनियै ।
 अधिक असाधु इंद्र, इंद्रानी अनेक इंद्र
 भोगवति, 'केसोदास' बेद न बखानियै ।
 बिधि हू अबिधि कीनी, साबित्री हू साप दीनी,
 ऐसे सब पुरुष जुवति उनमानियै ।
 राजा रामचंद्रजू से राजत न अनुकूल,
 सीता सी न पतिव्रता नारी जग जानियै ॥८॥

अथ राजकुमार-वर्णन-(दोहा)

बिद्या बिबिध विनोद जुत, सील-सहित आचार ।
 सुंदर, सूर, उदार बिभु, बरनिय राजकुमार ॥९॥

(कवित्त)

दाननि के सील, परदान के प्रहारी दिन,
 दानवारि ज्यों निदान देखियै सुभाइ के ।
 दीपदीप हू के अबनीपनि के अबनीप,
 पृथु सम 'केसोदास' दास दुज गाइ के ।
 आनंद के कंद सुरपालक से बालक ये,
 परदार-प्रिय, साधु मन बच काइ के ।
 देह-धर्मधारी पै बिदेहराजजू से राज,
 राजत कुमार ऐसे दसरथ राइ के ॥१०॥

अथ पुरोहित-वर्णन-(दोहा)

प्रोहित नृपहित, वेदबित, सत्यसील, सुचि अंग ।
 उपकारी, ब्रह्मन्य, रिजु, जीत्यो जगत अनंग ॥११॥

[७] और सों-औरनि सों नेह करै छोड़ि (दीन०) ।

[८] उर आनियै-ताहि मानियै (दीन०) । अबिधि-अवधि (याज्ञिक अ०) ।
 कीनी-करि (बाल०) । दीनी-धरि (बाल०) । जग जानियै-उर आनियै
 (बाल०, हरि०, सरदार०, दीन०) !

[१०] दाननि-दानिन (याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) । सुरपालक०-
 सुरपालक के बालक से (याज्ञिक अ०, याज्ञिक०, हरि०, सरदार०) ।

(कवित्त)

कीनो पुरहूत मीत, लोक लोक गाए गीत,
पाए जु अभूत पूत, अरि उर त्रास है ।
जीते ॐ अजीत भूप, देस देस बहुरूप,
और को न 'केसोदास' बल को बिलास है ।
तोखो हर को धनुष, नृपकुल गौ-बिमुख,
देख्यो जु बधू को मुख सुखमा को बास है ।
है गए प्रसन्न राम, बाढ़ो धन धर्म धाम,
केवल बसिष्ठ के प्रसाद को प्रकास है ॥१२॥

अथ सेनापति-वर्णन-(दोहा)

स्वामिभक्त, श्रमजित, सुधी, सेनापति अभीत ।
अनञ्जालस, जनप्रिय, जसी, सुख संग्राम अजीत ॥१३॥

(सवैया)

छाँड़ि दियो अति आरस पारस 'केसव' स्वारथ साथ समूरो ।
साहस सिद्ध प्रसिद्ध सदा जल हू थल हू बल-बिक्रम पूरो ।
सोहिय एक अनेकन माहिं, अनेक न एक बिना रन रूरो ।
राजत है तेहि राज को राज सु जाकी चमू में चमूपति सूरु ॥१४॥

अथ दूत-वर्णन-(दोहा)

तेज बढ़ै निज राज को अरि उर उपजै छोभ ।
ईगित जानै, समय गुन बरनहु दूत अलोभ ॥१५॥

(कवित्त)

स्वारथ-रहित, हित-सहित, बिहित-मति,
काम क्रोध लोभ, मोह छोभ मद हीने हैं ।
मीत हू अमीत पहिचानिबे कोँ, देस काल,
बुद्धि, बल जानिबे कोँ परम प्रवीने हैं ।
आपनी उक्ति अति उपरी है औरनि की,
दूर दूर दुरी मति लै लै बस कीने हैं ।
'केसोदास' रामदेव देस देस अरिदल,
राजनि के देखिबे कोँ दूतै द्विग दीने हैं ॥१६॥

[१२] नृपकुल-नृपगण (याज्ञिक अ०, हरि०, दीन०); नृपमन भो (सरदार०) ।

[१३] सेनापति-सेनापति सु (दीन०); सेनापति अनभीत (अन्यत्र) ।

[१४] सिद्ध-सिंधु (हरि०, सरदार०, दीन०) । सदा-महा (बाल०) ।

[१६] लोभ मोह-लोभ (बाल०) । मद-दमादिक (बाल०) ।

अथ मंत्री-वर्णन-(दोहा)

राजनीतिरत, राजरत, सुचि, सर्वज्ञ, कुलीन ।
क्षमा, सूर, जस-सीलजुत मंत्री मंत्र-प्रवीन ॥१७॥

(सवैया)

‘केसव’ कैसेहुँ बारिधि बाँधि कहा भयो रीछनि ज्यों छिति छाई ।
सूरज को सुत बालि को बालक, को नल नील, कही हम ठाई ।
को हनुमंत कितेक बली, जम हू पहाँ जोर लई नहिँ जाई ।
भूषन भूषन, दूषन दुषन, लंक बिभीषन के मत पाई ॥१८॥
जुद्ध जुरे जुरजोधन सों कहि को न करी जमलोक बसीत्यो ।
कर्न, कृपा, द्विज द्रोण सों बैर कै काल बचै बल कीजै प्रतीत्यो ।
भीम कहा बपुरो अरु अर्जुन नारि नँगावत ही बल रीत्यो ।
‘केसव’ केवल केसव के मत भारथ पारथ भारथ जीत्यो ॥१९॥

अथ मंत्री मति-वर्णन-(दोहा)

पंच अंग गुन संग षट, विद्याजुत दसचारि ।
आगम संगम निगम मति, ऐसे मत्र बिचारि ॥२०॥

(सवैया)

‘केसव’ मादक क्रोध विरोध तजी सब स्वारथ सिद्धि अनैसी ।
भेद, अभेद, अनुग्रह, विग्रह, निग्रह संधि कही बिधि जैसी ।
बैरिन कौं बिपदा प्रभु का प्रभुता करै मांत्रन की मति ऐसी ।
राखत राजन, देवन ज्यों दिन दिव्य बिचार बिमानन बैसी ॥२१॥

अथ प्रयाण-वर्णन-(दोहा)

चँवर, पताका, छत्र छवि, टुंढुभि, धुनि बहु जान ।
जल-थलमय भुवकंप रज-रंजित बरनि पयान ॥२२॥

(सवैया)

राघव की चतुरंग चमू चय को गनै ‘केसव’ राज-समाजनि ।
सूर तुरंगन के उरभे पग तुंग पताकनि के पट साजनि ।
टूटि परे तिनतं भुक्ता धरनी उपमा बरनी कबिराजनि ।
बिंदु मनौ मुख-फेनन के किधौं राजसिरी स्तवै मंगल-लाजनि ॥२३॥

[१८] हम-यह (याज्ञिक अ०, याज्ञिक०) । नहिँ-जु न (अन्यत्र) ।

[१९] बचै बल-डरै मन (बाल०) । भारथ०-भूतल भारत पारथ (हरि०, सरदार०, दीन०); भूलत० (याज्ञिक०); भारथ पारथ ऐसे ही (याज्ञिक०) ।

[२१] सिद्धि-बुद्धि (याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०) ।

(कवित्त)

नाद पूरि, धूरि पूरि, तूरि बन, चूरि गिरि,
 सोखि सोखि जल भूरि भूरि थल गाथ की ।
 'केसोदास' आसपास ठौर ठौर राखि जन,
 तिनकी संपति सब आपने ही साथ की ।
 उन्नत नवाए, नत उन्नत बनाए भूप,
 सत्रुन की जीविका सुमित्रन के हाथ की ।
 मुद्रित समुद्र सात, मुद्रा निज मुद्रित कै,
 आई दस दिसि जीति सेना रघुनाथ की ॥२४॥

अथ हय-वर्णन-(दोहा)

तरल, तताई, तेजगति मुखसुख, लघुदिन देखि ।
 देस, सुबेस, सुलक्षनै, बरनहु बाजि बिसोष ॥२५॥

(कवित्त)

बामनहि दुपद जु नाख्यो नभ ताहि कहा,
 नाखे पद चारि थिर होत इहि हेत हे ।
 छेकी छिति छीरनिधि छाँडि धाप छत्र तर,
 कुंडली करत लाल चित्त मोल लेत हे ।
 मन कैसे मोत, बीर बाहन समीर कैसे,
 नैनन ज्यों नौनी, नौनि नेह के निकेत हे ।
 गुनगन-बलित, ललित गति 'केसादास',
 ऐसे बाजि रामचंद्र दीनन को देत हे ॥२६॥

अथ गज-वर्णन-(दोहा)

मत्त, महाउत हाथ में, मंद चलनि, चलकन ।
 मुक्तामय, इभ कुंभ सुभ, सुंदर, सूर सुबर्न ॥२७॥

(कवित्त)

जल कै पगार, निज दल कै सिंगार, पर
 दल को बिगार करि, पर-पुर पारै रौरि ।
 ढाहै गढ़ जैसे घन, भट ज्यों भिरत रन,
 देति देखि आसिषा गनेसजू के भोरे गौरि ।

[२४] जीविका सुमित्रन-जीति कांति मित्रनि (याशिक०) । हाथ-साथ (याशिक०) ।

[२६] चित्त-जाके (दीन०) ।

बिंध के से बांधव, कलिंदनंद से अमंद,
 वंदन कै भूढ़ भरे, चंदन की चारु खौरि ।
 सूर के उदोत उदैगिरि से उदित अति,
 ऐसे गजराज राजें राजा रामचंद्र पौरि ॥२८॥

अथ संग्राम-वर्णन-(दोहा)

सेना, स्वन, संनाह, रज, साहस, सख-प्रहार ।
 अंग-भंग, संघट्ट भट, अंध, कबंध अपार ॥२९॥
 'केसव' बरनहु जुद्ध महँ, जोगिनि-गन-जुत रुद्र ।
 भूमि भयानक रुधिरमय, सरबर, सरित समुद्र ॥३०॥

(कवित्त)

सोनित सलिल नर बानर सलिलचर,
 गिरि हनुमंत, विष बिभीषन ढाख्यो है ।
 चँवर पताका बड़ी बाढ़वा अनल सम,
 रोगरिपु जामवंत 'केसव' बिचाख्यो है ।
 बाजि सुरबाजि, सुरगज से अनेक गज,
 भरत संबंधु इंदु अमृत निहाख्यो है ।
 सोहत सहित सेष रामचंद्र, कुस लव,
 जीति कै समर-सिंधु साँच ही सुभाख्यो है ॥३१॥

अथ आखेट-वर्णन-(दोहा)

जुररा, बहरी, बाज बहु, चीते, स्वान, सचान ।
 सहर, बहलिया, भिल्लजुत, नील निचोल-बिधान ॥३२॥
 बानर, बाघ, बराह, मृग, मीनादिक बहु जंत ।
 बध, बंधन, बेधन बरनि मृगया खेद अनंत ॥३३॥

(कवित्त)

तीतर, कपोत, पिक, केकी, कोक, पारावत,
 कुरर कुलंग, कलहंस गहि लाए हैं ।
 'केसव' सरभ सीह साह, गोस रोष हति,
 कूकरन पास सक सूकर गहाए हैं ।

[२८] भूढ़ भरे-भूरि भरे (बाल) ; सँड भरे (दीन०) ।

[२९] स्वन-स्वर (बाल) । स्वसन (सरदार०) । सख-सन्नु (याशिक अ०) ।

[३१] संबंधु-से बंधु (याशिक अ०) ।

[३२] बिधान-पिधान (याशिक अ०, याशिक०) ।

[३३] बहु-बन (हरि०, सरदार०, दीन०) । मृगया खेद-खग आखेट (सरदार०) ;
 खेल (दीन०) ।

मकर निकर बेघि, बाँधि गजराज मृग,
सुंदरी दरीनि भोल भामिनीन भाए है ।
रोमि रोमि गुंजन के हार पहिराए देखो,
काम ऐसे राम के कुमार दोऊ आए हैं ॥३४॥

खलनि के खेलभैल, मनमथ-मन ऐल,
सैलजा के सैल गैल गैल प्रति रोक है ।
सेनानी के सटपट, चंद्र-चित चटपट
अति अति अटपट अंतक के ओक है ।
इंद्रजू के अकबक, धाताजू के धकपक,
संभुजू के सकपक 'केसोदास' को कहै ।
जब जब मृगया को राम के कुमार चढ़े,
तब तब कोलाहल होत लोक लोक है ॥३५॥

अथ जलकेलि-वर्णन—(दोहा)

सर, सरोज, सुभ, सोभ भनि, हिय सो प्रिय मन भेलि ।
गहिबो गत भूषनन को, जलचर ज्यों जलकेलि ॥३६॥

(कवित्त)

एक दमयंती ऐसी हरेँ हंसि हंस-बंस,
एक हंसिनी सी बिसहार हिये रोहियै ।
भूषन गिरत एक लेति बूढ़ि बीच-बीच,
मीन-गति-लीन, हीन उपमा न टोहियै ।
एक हरि-कंठ लागि लागि बूढ़ि बूढ़ि जाति,
जलदेवता सी द्विग देवता बिमोहियै ।
'केसोदास' आसपास भँवर भँवत जल-
केलि में जलजमुखी जलज सी सोहियै ॥३७॥

[३४] सरम-करम (बाल०) । सीह साह-सीह स्याह (याशिक०, सरदार०); साह सीह (हरि०, दीन०) । हति-हित (याशिक०); गति (हरि०, दीन०); गत (सरदार०) । सक-सिमु (याशिक०); सस (हरि०, सरदार०, दीन०) । निकर-समूह (दीन०) । ऐसे-जैसे (दीन०); कैसे (बाल०) ।

[३५] चढ़े-चलै (बाल०, याशिक०) ।

[३६] मन-हिय (दीन०) । भेलि-मेलि (याशिक अ०, सरदार०) ।

[३७] एक हरि०-एकै मत कै कै (दीन०) ।

अथ विरह-वर्णन-(दोहा)

स्वास निसा, चिंता बढ़े रुदन परेखै बात ।
 कारे, पीरे, होत कृस, ताते सीरे गात ॥३८॥
 भूख, प्यास, सुधि बुधि घटै, सुख, निद्रा, दुति अंग ।
 दुखद होत हैं सुखद सब, 'केसव' विरह-प्रसंग ॥३९॥

(कवित)

बार बार बरजी में सारस सरस मुखी,
 आरसी लै देखि मुख, या रस में बोरिहै ।
 सोभा के निहोरे तौ निहारति न नेक हू तू,
 हारी हैं निहोरि सब कहा काहू खोरि है ।
 सुख को निहोरो जो न मान्यो सु भली करी तैं,
 'केसोराइ' की सौं तोहि जौ तू मन मोरिहै ।
 नाह को निहोरो किन मानति निहोरति हौं,
 नेह के निहोरे फिरि मोहीं जु निहोरिहै ॥४०॥

हरित हरित हार हेरत हिये हरत,
 हारी हौं हरिननैनी हरि न कहूँ लहौं ।
 बनमाली ब्रज पर बरसत बनमाली,
 बनमाली दूर दुख 'केसव' कैसे सहौं ।
 आप घने घनस्याम, घन ही से होत घन,
 सावन के घोस घनस्याम बिनु क्यों रहौं ।
 हृदय-कमल-नैन देखि कै कमलनैन,
 होहुंगी कमलनैनी और हौं कहा कहौं ॥४१॥

(संवैया)

भूलि गयो सब सौं रस रोष, मिटे भव के भ्रम रैनि बिभातौ ।
 को अपनो पर को पहिचानत, जानति नाहिनै सीतल तातौ ।
 नीकेहि में बृषभानुलला की भई सु न जाकी कही परै बातौ ।
 एकहि बेर न जानियै 'केसव' काहे तैं छूटि गए सुख सातौ ॥४२॥
 मेह की हीस कै आँसू, उसासनि साथ निसा सु बिसासनि बाढ़ी ।
 हास गयो उड़ि हंसनि ज्यो, चपला सम नौंद नई गति काढ़ी ।

[३८] दुखद-सुखद (बाल०) । सुखद-दुखद (बाल०) ।

[४०] तैं-न (हरि०, दीन०); व (सरदार०) । मन-मान (हरि०, दीन०) ।

[४१] 'हृदय-कमल-नैन पंक्ति' याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार० दीन० में तीसरी है

चातक ज्योँ पिठ पीठ रटै, चढ़ी ताप-तरंगिनि ज्योँ तन गाढ़ी ।
‘केसव’ बाकी दसा सुनि हौँ अब, आगि बिना अँग अंगनि डाढ़ी ॥४३॥

अथ स्वयंवर-वर्णन—(दोहा)

सची स्वयंवर रक्षियै, मंडल मंच बनाउ ।
रूप, पराक्रम, वंस, गुन बरनिय राजा राउ ॥४४॥

(सवैया)

मंडली मंचन की, नृपमंडल-मंडित देखियै देवसभा सी ।
दंतनि की दुति, देह की दीपति, भूषन-ज्योति-समेत अभासी ।
फूलनि की छवि, अंबर की छवि, छत्रन की छवि तत्तन भासी ।
सोहति है अति सीय-स्वयंवर आनन-चंद-प्रबेष-प्रभा सी ॥४५॥

अथ सुरति-वर्णन—(दोहा)

सुरति सातुकी भाव भनि, मनित रुनित मंजीर ।
हाव, भाव, बहि अंत रति, अलज सलज्ज सरीर ॥४६॥

(कवित्त)

‘केसोदास’ प्रथम ही उपजत भय-भीर,
रोम-रुचि स्वेद देह कंपनि गहति है ।
प्राण प्रिय बाजी कृत बारन पदाति क्रम,
विविध सबद द्विज दानहि लहति है ।
कलित कृपान कर सकति सुमान त्रान,
सजि सजि करज प्रहारन सहति है ।
भूषन सुदेस हार दूषन सकल होत,
सखि न सुरति-रीति, समर कहति है ॥४७॥

इति श्रीमद्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां

सामान्यालंकारवर्णने राज्यश्रीभूषणवर्णनं

नाम अष्टमः प्रभावः ॥८॥

[४३] हीम कै हैं सखि (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) । नई-गई (हरि०, सरदार०) ।

[४७] रोम-रोष (हरि, दीन०) । गहति-धरति (बाल०) । लहति-लजति (बाल०) ।
त्रानतन-त्राननि के (बाल०, याज्ञिक०) ।

६

अथ विशिष्टालंकार-वर्णन-(दोहा)

जाति सुभाव, बिभावना, हेतु, बिरोध, बिसेष
 उत्प्रेक्षा, आक्षेप, क्रम, आसिष प्रिय सुस्तेष ॥१॥
 प्रेमा, श्लेष, सभेद है नियम, बिरोधी मान ।
 सूक्ष्म, लेस, निदर्शना, उर्जस्वी पुनि जान ॥२॥
 रस, अर्थातरन्यास है, भेद सहित व्यतिरेक ।
 फेरि अपहृति, उक्ति है, बक्रोक्ति सबिवेक ॥३॥
 अन्योक्ति, व्यधिकरण है, सुविशेषोक्ति भाषि ।
 फिरि सहोक्ति को कहत हैं, क्रम ही सों अभिलाषि ॥४॥
 व्याजस्तुति निंदा कहें, पुनि निंदास्तुतिवत ।
 अमित सु पर्यायोक्ति पुनि, युक्त सुनौ सब संत ॥५॥
 स समाहित जु सुसिद्धि पुनि औ प्रसिद्ध बिपरीत ।
 रूपक, दीपक भेद पुनि, कहि प्रहेलिका मीत ॥६॥
 अलंकार परवृत्त कहौ उपमा जमक सुचित्र ।
 भाषा इतने भूषननि भूषित कीजै मित्र ॥७॥

अथ जाति-लक्षण-(दोहा)

जाको जैसो रूप गुन कहिजै तैसे साज ।
 तासों जाति-सुभाव कहि बरनत हैं कबिराज ॥८॥

(कवित्त)

पीरी पीरी पाट की पिछौरी कटि 'केसोदास'
 पीरी पीरी पागें पग पीरियै पनहियाँ ।
 बड़े बड़े मोतिन की माल बड़े बड़े नैन,
 नान्ही नान्ही भृकुटी कटिल बघनहियाँ ।
 बोलनि, हँसनि मृदु चलनि, चितौनि चारु,
 देखत ही बनै पै न कहत बनहि याँ ।
 सरजू के तीर तीर खेलैं चारौ रघुबीर,
 हाथ द्वै द्वै तीर राते रातियै धनुहियाँ ॥९॥

[८] तैसे-तैही (बाल०, हरि०, सरदार०, दीन०) । सुभाव०-सुभाव सब कहि
 बरनत कबिराज (हरि०, सरदार०, दीन०, याज्ञिक०); सुभाव कहि बरनत सब
 कबिराज (याज्ञिक अ०) ।

[९] बनहि याँ-बनै हियाँ (दीन०) ।

अथ स्वभाव-वर्णन—(कवित्त)

गोरे गात, पातरी, न लोचन समात मुख,
 उर उरजातन की बात अवरोहियै ।
 हँसति कहति बात, फूल से भरत जात,
 औँठ अवदात राती रेख मन मोहियै ।
 स्यामल कपूरधूर की उदौनी ओढ़े, उड़ि
 धूरि ऐसी लागी 'केसो' उपमा न टोहियै ।
 काम ही की दुलही सी काके कुल चलही सु,
 लहलही ललित लता सी लोल सोहियै ॥१०॥

अथ विभावनालंकार-वर्णन—(दोहा)

कारज को बिनु कारनहि, उदौ होत जिहि ठौर ।
 तासों कहत विभावना, 'केसव' कवि-सिरमौर ॥११॥
 (कवित्त)

पूरन कपूर पान खाए कैसो मुखबास,
 अरुन अधर रुचि सुधा सों सुधारे हैं ।
 चित्रित कपोल, लोल लोचन, मुकुर, ऐन,
 अमल भलक, भलकाने मोहि मारे हैं ।
 भृकुटी कुटिल जैसी तेंसी न किये ही होहिं,
 आँजी ऐसी आँखें 'केसोराइ' हेरि हारे हैं ।
 काहे कों सिंगार कै बिगारति है मेरी आली,
 तेरे अंग सहज सिंगार ही सिंगारे हैं ॥१२॥

अन्य विभावना—(दोहा)

कारन कौनहु आन तँ, कारज होइ जु सिद्ध ।
 जानौ यहौ विभावना, कारज छाँडि प्रसिद्ध ॥१३॥
 (सवैया)

नेक हू काहू नवाई न बानी बनाई बिना इह बक्र भई है ।
 लोचन-श्री बिभुकाए बिना बिभुकी सी, रंगे बिनु रागमई है ।
 'केसव' कौन का दानी कहौ यह चंदमुखी गति मंद लई है ।
 छोली न, है ही गई कटि छीन सु जाबन की यह रीति नई है ॥१४॥

[१०] उलही सु—उलही है सु (याशिक०) ।

[११] सुधा०—सधर (याशिक अ०) ।

[१२] कारज छाँडि—कारन छाँडि (याशिक अ०, दीन०) ।

[१४] बनाई बिना इह—बनाइ बिना सु तौ (याशिक०); नवाए बिना ही सु (हरि०, सरदार०, दीन०) । रीति—युक्ति (याशिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

अथ हेतु-लक्षण—(दोहा)

हेतु होत है भाँति द्वै, बरनत सब कबिराव ।

‘केसवदास’ प्रकास सब, बरनि सभाव अभाव ॥१५॥

अथ सभाव-हेतु-वर्णन—(सवैया)

‘केसव’ चंदन-वृंद घने अरबिंदन को मकरंद सरीरो ।
मालती, बेल, गुलाब, सु केतिक, केतकि, चंपक को बन पीरो ।
रंभन के परिरंभन संभ्रम गर्व घनो घनसार को जीरो ।
सीतल भंद सुगंध समीर हृद्यो इनसों मिलि धीरज धीरो ॥१६॥

अथ अभाव-हेतु-वर्णन—(सवैया)

जान्यो न मैं मद जोवन को उतख्यो कब, काम को काम गयो ई ।
छाँड्यो न चाहत जीव कलेवर जीव कलेवर छाँडि दयो ई ।
आवति जाति जरा दिन लीलति, रूप जरा सब लील लयो ई ।
‘केसव’ राम ररो न ररो अनसाधे ही साधन सिद्ध भयो ई ॥१७॥

अथ सभाव-अभाव-हेतु-वर्णन—(सवैया)

जा दिन तेँ वृषभानुललाहि अली मिलप मुरलीधर तेँ ही ।
साधन साधि अगाध सबै बुधि सोधि जो दूत अभूतन में ही ।
ता दिन तेँ दिनमान दुहून की ‘केसव’ आवति बात कहें ही ।
पीछे अकास प्रकासै ससा, बढि प्रेमसमुद्र रहै पहिले ही ॥१८॥

अथ विरोधाभास-लक्षण—(दोहा)

बरनत लगै विरोध सो, अर्थ सबै अबिरोध ।

प्रगट विरोधाभास यह, समझत सबै सुबोध ॥१९॥

(कवित्त)

परम पुरुष कुपुरुष-सँग सोभिजत,
दिन दानसाल पै कुदान ही सों रति है ।
सूर-कुल-कलस पै राहु को रहत सुख,
साधु कहै साधु, परदार-प्रिय अति है ।

[१५] सब-अरु (याज्ञिक अ०); करि (याज्ञिक०, हारि०, सरदार०, दीन०) ।

[१६] गुलाब-गुलाल (बाल०) । सु केतिक-सु केसरि (दीन०) । ‘सु केतिक’ बाल० में नहीं है और ‘चंपक’ के बाद ‘चंदन’ पाठ है । गर्व-संग (बाल०) ।
जीरो-सीरो (याज्ञिक अ०, दीन०) ।

[१७] छाँड्यो न चाहत-छाँड्यो ई चाहत (बाल०) । जीव-बति (बाल०); जोरि (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[१८] रहत-खलल (बाल०, याज्ञिक, अ०) ।

अकर कहावत धनुष धरे देखियत,
परम कृपाल पै कृपान कर पति है।
बिद्यमान लोचन द्वै, हीन बाम लोचनि सु,
'केसोदास' राजा राम अदभुत गति है ॥२०॥

अथ विरोध-लक्षण—(दोहा)

'केसवदास' विरोधमय, रचियत बचन बिचारि।
तासों कहत विरोध सब कबिकुल सुवुधि सुधारि ॥२१॥

(कवित्त)

सोभत सुवास हास सुधा सों सुधाखो बिधि,
बिष को निवास जैसो तैसो मोहकारी है।
'केसोदास' पावन परम हंस गति तेरी,
पर-हीय-हरन प्रकृति कौने पारी है।
बारक बिलोकि बलवीर से बलीनि कहूँ,
करत बरहि बस, ऐसी बैस ारी है।
परी मेरी सखी तेरी कैसे कों प्रतीत कीजै,
कसनानुरागी द्विग करनानुसारी है ॥२२॥

(सवैया)

आपु सितासित रूप, चितै चित स्याम सरीर रँग रँग रातै ।
'केसव' कानन हीन सुनै, सु कहै रस की रसना बिन बातै ।
नैन किधौ कोउ अंतरजामी री जानति हौ जिय बृम्भति तातै ।
दूर लौँ दौरत हँ बिन पाइन दूरि दुरी दरसै मति जातै ॥२३॥

अथ विशेष-लक्षण—(दोहा)

साधन कारन बिकल जहँ, होय साध्य की सिद्धि ।
'केसवदास' बखानियै, सो बिसेष परसिद्धि ॥२४॥

(सवैया)

साँप को कंकन, माल कपाल, जटान को जूट, रही जटि आतै ।
खाल पुरानी, पुरानोई बैल, सु और की और कहै बिष-मातै ।
पारबती-पति-संपति देखि, कहै यह 'केसव' संभ्रम तातै ।
आपुन माँगत भीख भिखारिन देत दई मुँहमाँगी कहाँ तै ॥२५॥

[२१] मय-मों (अन्यत्र) । सुबुधि-सुद्ध (वही) ।

[२२] कसनानुरागी-कसनानुसारी (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[२३] हौँ बिय-नाहिन (दीन०) ।

[२५] भीख०-भीख्यै औरहि (बाल०) । माँगी-माँग्यो (बाल०) ।

(कवित्त)

तमोगुन ओप तन ओपित, बिरूप नैन,
 लोकनि बिलोप करै, कोप के निकेत हैं ।
 मुख बिष भरे, बिषधर धरे, मुंढमाल,
 भूषित बिभूति, भूत प्रेतनि समेत हैं ।
 पातक पिता के जुत, पातकी ही को तिलक,
 भावै गीत काम ही को, कामिन के हेत हैं ।
 जोगिन की सिधि, सब जग की सकल सुधि,
 'केसोदास' दासनि ज्यों दासनि कों देत हैं ॥२६॥

(सवैया)

बाजि नहीं, गजराज नहीं, रथ पत्ति नहीं, बल गात बिहीनो ।
 'केसवदास' कठोर न तीक्ष्ण भूलि हू हाथ हथियार न लीनो ।
 जोग न जानत, मंत्र न जाप, न जंत्र न पाठ पढ्यौ न प्रवीनो ।
 रक्षक लोकनि कौं सु गँवारनि एक बिलोकनि ही बस कीनो ॥२७॥

(कवित्त)

ब्रज की कुमारिका वै लीने सुक सारिका,
 पढ़ावै कोक - कारिकान 'केसव' सबै निबाहि ।
 गोरी गोरी, भोरी भोरी, थोरी थोरी बेंस फिरै,
 देवता सी दौरि दौरि आई चोरा चोरी चाहि ।
 बिन गुन, तेरी आन, भृकुटी कमान तानि,
 कुटिल कटाक्ष वान, यह अचिरज आहि ।
 पते मान ढीठ, ईठ मेरे को अदीठ मनु,
 पीठ दै दै मारतीं पै चूकतीं न कोऊ ताहि ॥२८॥

(दोहा)

बाँचि न आवै, लिखि कछु, देखत छाँह न घाम ।
 अर्थ, सुनारी, बैदई, करि जानत पतिराम ॥२९॥

अथ उत्प्रेक्षा-लक्षण—(दोहा)

'केसव' औरहि वस्तु में औरै कीजै तर्क ।
 उत्प्रेक्षा तासों कहै जिनके बुद्धि संपर्क ॥३०॥

[२६] बिरूप-बिषम (दीन०) । बिलोप करै-बिलोपकर (याशिक अ०) । सुधि-
 सिद्धि (याशिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[२७] जप-जंत्र (बाल०, दीन०) । जंत्र-तंत्र (हरि०, सरदार०, दीन०) । न जंत्र०-
 न पाठ न मोह पढ्यौ (बाल०) ।

[२८] कोऊ-नैकु (याशिक अ०); एको (याशिक०) ।

[२९] देखत-सम्मत (बाल०); समुझै (याशिक०); जानत (दीन०) ।

(कवित्त)

हर को धनुष तोरि, लंक तोरि रावन को
 बंस तोरि तोरैँ जैसे बृद्ध बंस बात है ।
 सत्रुन के सेल-सूल फूल-तूल सहे राम,
 सुनि 'केसोराइ' की सौँ हिये हहरात है ।
 कामसर हू तैं तिह तारे तरुनीन हू के,
 लागि लागि उचटि परत ऐसे गात है ।
 मेरे जान जानकी तू जानति है जान कछू,
 देखत ही तेरे नैन मैंन से है जात है ॥३१॥
 अंक न, ससंक न, पयोधि हू को पंक न सु-
 अंजन न रंजित रजनि निज नारी को ।
 नाहिनै मलक मलकति तमपान की, न
 छिति छाँह छाई, छल नाहीं सुखकारी को ।
 'केसव' कृपानिधान देखियै बिराजमान,
 मानियै प्रमान राम बैन बनचारी को ।
 लागति है जाइ कंठ नाग दिगपालन के,
 मेरे जान सोई कृतु कीरति तिहारी को ॥३२॥

इति श्रीमद्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां
 विशिष्टालंकारे जात्याद्युत्प्रेक्षालंकार-
 वर्णनं नाम नवमः प्रभावः ॥६॥

१०

अथ आक्षेपालंकार-वर्णन-(दोहा)

कारज के आरंभ ही, जहँ कीजत प्रतिषेध ।
 आक्षेपन तासों कहत, बहु विधि बरनि सुमेध ॥१॥

[३१] सहे राम-सम सहे (बाल०) । सुनि-सुनि सुनि (बाल०) । की सौँ हिये-हिये (बाल०) ।

[३२] छल-छिद्र (दीन०) । देखियै-सुनियै (बाल०) । बैन-बैठे (बाल०) । मेरे जान-जानतु हौँ (बाल०) । कृतु-कृच्छ्र (दीन०) ।

[१] आक्षेपन-आक्षेपक (शाशिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

तीनो काल बखानिजै, भयो जु, भावी, होतु ।
 कबिकुल को कौतिक कहत प्रति प्रतिषेध उदोतु ॥२॥
 बरज्यौं हौं हरि, त्रिपुरहर, बारक करि भ्रूभंग ।
 सुनौ मदनमोहनि मदन है ही गयो अनंग ॥३॥
 ताते गौरि न कीजई कौन हु बिधि भ्रूभंग ।
 को जानै है जाइ कह प्राननाथ के अंग ॥४॥
 कोबिद कपट नकार-सर लगत न तजहि उछाह ।
 प्रतिपल नूतन नेह को पहिरे नाह सनाह ॥५॥
 प्रेम अधीरज, धीरजहि, संसय मरन, प्रकास ।
 आसिष, धरम, उपाय कहि, सिद्धा 'केसवदास' ॥६॥

अथ प्रेमाक्षेप-लक्षण- (दोहा)

प्रेम बखानत हो जहाँ, उपजत कारज बाधु ।
 कहत प्रेम-आक्षेप यह, तासौं 'केसव' साधु ॥७॥

(कवित)

ज्यों ज्यों बहु बरजे में, मेरे प्रान प्राननाथ
 अंग न लगाइयै जू, आगे दुख पाइबो ।
 त्यों त्यों हँसि हँसि अति सिर पर उर पर,
 कीबो कियो आँखिन के उपर खिलाइबो ।
 एकौ पल इत उत साथ तँ न जान दीने,
 लीने फिरे हाथ ही कहाँ लों गुन गाइबो ।
 तुम तो कहत तिन्हें छाँडि कै चलन अव,
 छाँडत ये कैसें तुम्हें आगे उठि धाइबो ॥८॥

अथ अधैर्याक्षेप-लक्षण- (दोहा)

प्रेम-भंग भय मुनत जहँ उपजत सातुक भाव ।
 कहत अधीरज को सुकवि, यह आक्षेप सुभाव ॥९॥

(सवैया)

'केसव' प्रात वड़े ही, विदा कहँ आए प्रिया पहुँ नेह नहे री ।
 आऊँ महाबन हैं जु कहौ, हँसि वाल द्वँ ऐसे बख्साइ कहे री ॥

[२] हरि-हर (बाल०) । बरज्यौं-वरजौ (बाल०) ।

[४] गोरि-गौरि (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) कीजई-कीजिए (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) । यह दोहा बाल० तथा याज्ञिक० में नहीं है ।

[५] तजति-करत (बाल०) । पहिरे-परिहरि (बाल०) । यह दोहा याज्ञिक० में नहीं है ।

[८] कियो-कहँ (याज्ञिक०) ।

[९] भय-बच (हरि०, दीन०) ।

को प्रतिउत्तर देइ सखी सुनि लोल विलोचन यौं उमहे री ।
सौहँ ककै हरि हारि रहे दिन बीसक लौं असुवाँ न रहे री ॥१०॥

अथ धैर्याक्षेप-लक्षण- (दोहा)

कारज करि कहियै वचन, काज निवारन-अर्थ ।
धीरज को आक्षेप यह, वरनत बुद्धि-समर्थ ॥११॥
(कवित)

चलत चलत दिन बहुत व्यतीत भए,
सकुचत कत चित चलत चलाए ही ।
जात है ते कहौ कहा नाहिने मिलत आनि,
जानि यह छाँडौ मोह बढ़त बढ़ाए ही ।
मेरी सौं तुमहि हरि रहियौ सुखाइ सुख,
मोहूँ है तिहारा साहँ रहाँ सुख पाए ही ।
चले ही वनत जो तो नलियै चतुर पीय,
सोवत ही जैयौ छाँडि जागोगाँ हौं आए ही ॥१२॥

अथ संशयाक्षेप-लक्षण- (दोहा)

उपजाएँ संदेह कछु, उपजत काज-विरोध ।
यह संसय-आक्षेप कहि वरनत जिनहिं प्रबोध ॥१३॥
(कवित)

गुननि बलित, कल सुरनि कलित गाइ
ललिता ललित गीत श्रवन रवाईहँ ।
चित्रित हौ चित्रन मँ परम बिचित्र तुम,
चित्रिनी ज्यों देखि देखि नैननि नवाईहँ ।
काम के विरोधाँ मत सोधि साधि साधि सिद्धि,
बोधि बोधि अवधि के बासर गँवाईहँ ।
'केसोराइ' की सौं मोहि यह ई कठिन वाकी
रसनै रसिक लाल पान को खवाईहँ ॥१४॥

अथ मरणाक्षेप-लक्षण- (दोहा)

मरन निवारन करत जहँ, काज-निवारन होत ।
जानहु मरनाक्षेप कवि जौ जिय बुद्धि-उदोत ॥१५॥

[१०] ब्याइ-बनाय (हरि०, सरदार०, दीन०) । दिन बीसक-अधरातिक (दीन०) ।

[११] कारज-कारन (दीन०) ।

[१४] रवाईहँ-रचाइहै (हरि०, सरदार०, दीन०); रमाइहै (बाल०) । चित्रित हौ-
चित्रति है (याज्ञिक अ०) ।

[१५] कवि-यह (याज्ञिक०, दीन०) ।

(कवित्त)

नीके कै किवाँर दैहौँ द्वार द्वार दर द्वार,
 'केसोदास' आस पास सूरज न छावैगो ।
 छिन में छावाय लैहौँ ऊपर अटानि आजु,
 आँगन पटाइ लैहौँ जैसे मोहिँ भावैगो ।
 न्यारे न्यारे नारदान मूँदौंगी भरोखा-जाल
 पाइहै न पानी, पौन आवन न पावैगो ।
 माधव तिहारे पीछे मोपहँ मरन मूढ़,
 आवन कहत सु धौँ कौन पँडे आवैगो ॥१६॥

अथ आशिषाक्षेप-लक्षण-(दोहा)

आसिष पिय के पंथ को, दीजै दुख्ख दुराइ ।
 आसिष को आक्षेप यह, कहत सकल कबिराइ ॥१७॥

(कवित्त)

मंत्री मित्र पुत्र जन 'केसव' कलत्र गन,
 सोदर सजन जन भट सुखसाज सौँ ।
 एतो सब होतै जात जौ पै है कुसल गात,
 अवहीं चलौ कें प्रात सगुन-समाज सौँ ।
 कीनो जु पयान-बाध छमिजै सु अपराध,
 रहिजै न पल आध, बँधिजै न लाज सौँ ।
 हौँ न कहौँ, कहत निगम सब अत्र तब,
 राजन परम हित आपने ही काज सौँ ॥१८॥

अथ धर्माक्षेप-लक्षण-(दोहा)

राखत अपने धर्म कौँ, जहँ कारज रहि जाइ ।
 धर्माक्षेप सदा यहै, बरनत सब कबिराइ ॥१९॥

(कवित्त)

जौ हौँ कहौँ 'रहिजै' तौ प्रभुता प्रगट होति,
 'चलन' कहौँ तौ हित-हानि, नाहिँ सहनै ।
 'भावै सो करहु' तौ उदास भाव प्राननाथ
 'साथ लै चलहु' कैसे लोकलाज बहनै ।

[१६] छावैगो-आवैगो (हरि०, दीन०) । पटाइ लैहौँ-पटाइ देहौँ (हरि०, दीन०) ।
 मूँदौंगी-मूँदिहौँ (हरि०, सरदार०, दीन०) । पाइहै-जाइहै (याज्ञिक०,
 दीन०) । पानी-पँडो (हरि०, सरदार०) ।

‘केसोराइ’ की सोँ तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनन जो पै नाहीं राजि रहनै ।
तैसियै सिखावौ सोखँ तुम ही सुजान पिय,
तुमहिँ चलत मोहि कैसो कछु कहनै ॥२०॥

अथ उपायाक्षेप-लक्षण—(दोहा)

कौनहु एक उपाय करि, रोकिय प्रिय-प्रस्थान ।
तासों कहत उपाय कवि, यह आक्षेप सुजान ॥२१॥
(सवैया)

मोकोँ सबै ब्रज की जुवती हर-गौरि समान सोहागिनि जानै ।
ऐसी को गोपी गोपाल तुम्हें बिन, गोकुल मँ बसिबो उर आनै ।
मूरति मेरी सुदीठ कै ईठ चलौ, कि रहौ जो कछु मन मानै ।
प्रेमनि छेमनि आदि दै ‘केसव’ कोऊ न मोहि कहूँ पहिचानै ॥२२॥

अथ शिक्षाक्षेप—(दोहा)

सुख ही सुख जहँ राखिजै, सिख ही सिख सुखदानि ।
सिन्हाक्षेप कहौ बरनि, छप्पद बारह बानि ॥२३॥

अथ चैत्र-वर्णन—(छप्पय)

फूली लतिका ललित तरुनितर, फूले तरुवर ।
फूली सरिता सुभग, सरस फूले सब सरवर ।
फूली कामिनि, कामरूप करि कंतनि पूजहिं ।
सुक सारो कुल हँसै, फूलि कोकिल कल कूजहिं ।
कहि ‘केसव’ ऐसी फूल महुँ सुल न फूलहि लाइयै ।
पिय आपु चलन की का चली चित्त न चैत चलाइयै ॥२४॥

अथ वैशाख-वर्णन—(छप्पय)

‘केसवदास’ अकास अवनि बासित सुभास करि ।
बहति पवन गति मंद गात मकरंद-बिंदु धरि ।
दिसि बिदिसनि छबि लागि, भाग पूजित पराग बर ।
होत गंध हिय अंध बधिर भौरा बिदेसि नर ।

[२०] राजि—राजा (दीन०); राज (बाल०, याशिक०, हरि०, सरदार०) । कैसी—जैसो (याशिक अ०) ।

[२१] कौनहु—राखत अपने धर्म करि (बाल०) । यह आक्षेप—केसवदास (दीन०) ।

[२२] मोकोँ—मोसों (बाल०) । हर—हरि (बाल०, सरदार०) । सुदीठि—सुईठ कै डीठ (याशिक अ०) । प्रेमनि—प्रेमिनि छेमनि (याशिक अ०, दीन०) ।

[२४] कुल हँसै—कलकेलि (याशिक०) ।

सुनि सुखद, सुखद सिख सीखियत, रति सिखई सुख-साख में ।
बर बिरहिन बधत बिसेष करि कसम बिसिष बैसाख में ॥२५॥

अथ ज्येष्ठ-वर्णन—(छप्पय)

एक भूतमय होत भूत, भजि पंचभूत भ्रम ।
अनिल, अंबु, आकास, अवनि ह्वे जात आगि सम ।
पंथ थकित, मद मुकित सुखित सर सिंधुर जोवत ।
काकोदर कर-कोष, उदर-तर केहरि सोवत ।
प्रिय प्रबल जीव इहि बिधि अवल, सकल विकल जल थल रहत ।
तजि 'केसवदास' उदास मति, जेठ मास जेठे कहत ॥२६॥

अथ आषाढ़-वर्णन—(छप्पय)

पवन चक्र परचंड चलत चहुँ ओर चपल गति ।
भवन भामिनिहि तजत भ्रमति मानहु तिनकी मति ।
संन्यासो इहि मास होत इक आसनवासी ।
पुरुषन की को कहै भए पंछियो निवासी ।
इहि समय सेज सोवन लियो श्रीहि साथ श्रीनाथ हू ।
कहि 'केसवदास' आषाढ़ चल में न सुन्यौ श्रुतिगाथ हू ॥२७॥

अथ श्रावण-वर्णन—(छप्पय)

'केसव' सरिता सकल मिलित सागर मन मोहै ।
ललित लता लपटात तरुन तन तरवर सोहै ।
रुचि चपला मिलि मेघ चपल चमकत चहुँ ओरन ।
मनभावन कहै भँटि भूमि कूजत मिस मोरन ।
इहि रीति रमन रमनी सकल लागे रमन रमावन ।
प्रिय गमन करन की को कहै गमन सुनिय नहिँ सावन ॥२८॥

अथ भाद्रपद-वर्णन—(छप्पय)

घोरत घन चहुँ ओर घोष निर्घोषनि मंडहि ।
धाराधर धरि धरनि मुसलधारनि जल छंडहि ।
झिल्लीगन-भंकार पवन झुकि झुकि झुकभोरत ।
बाघ सिंघ गुंजरत पुंज-कुंजर तरु तोरत ।
निसिदिन बिसेष निरसेष मिटि जात, सु ओली ओढ़ियै ।
निज देस पियूष, बिदेस बिष भादौ भवन न छोड़ियै ॥२९॥

[२५] पूजित-पूरित (याज्ञिक अ०, दीन०, हरि०, सरदार०) । बधिर-बौर (दीन०, सरदार०) ।

[२८] रुचि-चित (बाल०); चिर (अन्यत्र) । इहि०-इहि रमनीय रमन रमनीनि कहुँ रमन अरु लगे रमावन (बाल०) । लागे०-रमारमन लागे रमन (याज्ञिक०) ।

अथ आश्विन-वर्णन—(छप्पय)

प्रथम पिंड हित प्रगट पितर पावन घर आवहिं ।
नव दुर्गा नर पूजि स्वर्ग अपवर्गनि पावहिं ।
छत्रनि दै छतपत्ति लेत भुव ले सँग पंडित ।
'केसवदास' अकास अमल, जल जलजनि मंडित ।
रमनीय रमन रजनीस रुचि रमारमन हू रासरति ।
कल केलि कलपतरु क्वार महुँ कंत न करहु बिदेस-मति ॥३०॥

अथ कार्तिक-वर्णन—(छप्पय)

वन, उपवन, जल, थल, अकास दीसंत दीपगन ।
सुख ही सुख सुखराति जुबा खेलत दंपति-जन ।
देव-चरित्र बिचित्र चित्र चित्रित आंगन घर ।
जगति जगत जगदीस-जोति, जगमगत नारि नर ।
दिन दान न्हान गुनगान-हरि जनम सुफल करि लीजियै ।
कहि 'केसवदास' बिदेस-मति कंत न कार्तिक कीजियै ॥३१॥

अथ मार्गशीर्ष-वर्णन—(छप्पय)

मासन में हरि-अंस कहत यासों सब कोऊ ।
स्वारथ परमारथनि देत भारथ महुँ दोऊ ।
'केसव' सरिता सरनि फूल फूले सुगंध गुर ।
कूजत कल कलहंस, कलित कलहंसनि के सुर ।
दिन परम नरम सीतल गरम करम करम यह पाइ रितु ।
करि प्राननाथ परदेस कहैं मारगसिर मारग न चितु ॥३२॥

अथ पौष-वर्णन—(छप्पय)

सीतल जल, थल बसन, असन सीतल अनरोचक ।
'केसवदास' अकास अवनि सीतल असु-मोचक ।
तेल, तूल, तामोर, तपन, तापन, नव नारी ।
राज रंक सब छाँडि करत इनहीं अधिकारी ।
लघु चौस दीह रजनी रमन होत दुसह दुख रूस में
यह मन क्रम बचन बिचारि पिय पंथ न बूमिय पूस में ॥३३॥

अथ माघ-वर्णन—(छप्पय)

वन, उपवन केकी, कपोत, कोकिल कल बोलत ।
'केसव' भूले भँवर भरे बहु भाइनि डोलत ।

[३०] रमनीय—रमनीय रजनि (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[३१] सुखराति—दिनरात (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[३२] सरनि—सकल (बाल०) ।

मृगमद, मलय, कपूरधूर धूसरित दसौ दिसि ।
 ताल, मृदंग, उपंग सुनत संगीत गीत निसि ।
 खेलत बसंत संतत सुघर संत असंत अनंत गति ।
 घर नाह न छाँडिय माघ में जौ मन माहिं सनेह-मति ॥२४॥

अथ फाल्गुन-वर्णन- (छप्पय)

लोकलाज तजि राज रंक निरसंक बिराजत ।
 जोइ आवत सोइ कहत करत पुनि हसत न लाजत ।
 घर घर जुवती जुबनि जोर गहि गाँठिनि जोरहिं ।
 बसन छीनि मुख माँड, आँजि लोचन तिन तोरहिं ।
 पटबास सुबास अकास उड़ि भुवमंडल सब मंडियै ।
 कह 'केसवदास' बिलासनिधि फागु न फागुन छँडियै ॥२५॥

इति श्रीमद्विधिवभूषणभूषितायां कविप्रियायां
 विशिष्टालंकारवर्णने आक्षेपालंकारवर्णनं
 नाम दशमः प्रभावः ॥१०॥

११

अथ क्रमालंकार-वर्णन- (दोहा)

आदि अंत भरि बरनियै, सो क्रम 'केसवदास' ।
 अनुगनना सो कहत हूँ जिनके बुद्धि प्रकास ॥१॥

(छप्पय)

धिक मंगन बिन गुनहिं, गुन सु धिक सुनत न रिज्मय ।
 रिज्मकु धिक बिन मौज, मौज धिक देत जु खिज्मिय ।
 दीबो धिक बिन साँच, साँच धिक धर्म न भावै ।
 धर्म सु धिक बिनु दया, दया धिक अरि कहँ आवै ।
 अरि धिक चित न सालई, चित धिक जहँ न उदार मति ।
 मति धिक 'केसव' ज्ञान बिन, ज्ञान सु धिक बिनु हरि-भगति ॥२॥

(सवैया)

सोभति सो न सभा जहँ बृद्ध न, बृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहौं ।
 ते न पढ़े जिन साधु न साधित दीह दया न दिपै जिन माहीं ।

सो न दया जु न धर्म धरै धर, धर्म न सो जहँ दान बृथाहीं ।
दान न सो जहँ साँच न 'केसव', साँच न सो जु बसै छल छाहौं ॥३॥

(लुप्य)

तजहि जगत बिन भवन, भवन तजि तिय बिन कीने ।
तिय तजि जु न सुख देइ, सुख तजि संपति-हीने ।
संपति तजि बिन दान, दान तजि जहँ न बिप्र मति ।
बिप्र तजहि बिन धर्म धर्म, तजि यहि बिन भूपति ।
तजि भूप भूमि बिन, भूमि तजि दीहु दुर्ग बिन जो बसै ।
तजि दुर्ग सु 'केसवदास' कहि जहाँ न जल पूरन लसै ॥४॥

अथ गणना-एक-वर्णन-(दोहा)

एक आतमा, चक्र रवि, एक सुक की दृष्टि ।
एकै दसन गनेस को, जानति सिंगरी सृष्टि ॥५॥

द्विवर्णन-(दोहा)

नदी-कूल द्वै, राम-सुत, पद्म, खड्ग की धार ।
द्वै लोचन, द्विज-जन्म, पद, भुज, अस्विनीकुमार ॥६॥
लेखनि-डंक, भुजंग की रसना, अयननि जानि ।
गजरद, मुख चुकरँड के, कक्षासिखा बखानि ॥७॥

त्रिवर्णन-(दोहा)

गंगा-मग, गंगेस-दृग, ग्रीव-रेख, गुन लेखि ।
पावक, काल, त्रिसूल, बलि, संध्या तीन बिसेषि ॥८॥
पुष्कर, विक्रम, राम, विधि, त्रिपुर, त्रिवेनी, वेद ।
तीन पाप, परिताप, पद ज्वर के तीन, सखेद ॥९॥

चतुर्वर्णन-(दोहा)

बेद, बदन-विधि, बारिनिधि, हरि-बाहन-भुज चारि ।
सेना अंग, उपाय, जुग, आत्म, बरन बिचारि ॥१०॥
सुरनायक-धारन-रदन, 'केसव' दिसा बखानि ।
चतुरव्यूह-रचना चमू, चरन, पदारथ जानि ॥११॥

[३] साधित-साधुन (याशिक अ०) । जिन-जिय (दीन०) कीने-हिन्नेउ (सहज०) ।

[४] सुख-सुख जु (दीन०); सुखहि (सहज०) । बिन धर्म-जु विधर्म (बाल०) ।

तजियहि-तजि जिहि (दीन०) ।

[६] बेद-देव (अन्यत्र) । पाप-ताप (बाल०, सहज०) । सखेद-समेव (अन्यत्र) ।

पंच-वर्णन-(दोहा)

पंडुपूत, इंद्रिय, कवल, रुद्रबदन, गति, बान ।
 लक्ष्मण पंच पुरान के, पंच-अंग अरु प्रान ॥१२॥
 पंचवर्ग, तरुपंच, अरु पंचसब्द परमान
 पंचसंधि, पंचाग्नि भनि, कन्या पंच समान ॥१३॥
 पंच भूत, पातक प्रगट पंचजङ्ग, जिय जानि ।
 पंचगव्य, माता, पिता, पंचामृतनि बखानि ॥१४॥

षट्-वर्णन-(दोहा)

कुलिस कोन षट, तर्क षट दर्शन, रस, रितु अंग ।
 चक्रवर्ति, सिवपुत्र-मुख, मुनि षटराग प्रसंग ॥१५॥
 षटमाता षट बदन का, षट गुन बरनहु मित्त ।
 आतताइ नर षट गनहु, षटपद मधुप, कबित्त ॥१६॥

सप्त-वर्णन-(दोहा)

सात रसातल, लोक, मुनि, द्वीप, सुरहय, बार ।
 सागर, सुर, गिरि, ताल, तरु, अन्न, ईति, करतार ॥१७॥
 सात छंद, सातो पुरी, सात तुचा, सुख सात ।
 चिरंजीव मुनि सात नर, सप्तमातृका, तात ॥१८॥

अष्ट-वर्णन-(दोहा)

जोग-अंग, दिगपाल, बसु, सिद्धि, कुलाचल चार ।
 अष्टकुली अहि, व्याकरण, दिग्गज, तरुनि बिचार ॥१९॥

नव-वर्णन-(दोहा)

अंगद्वार, भूखंड, रस, बाघिनि-कुच, निधि, जानि ।
 सुधाकुंड, प्रह, नाडिका, नवधा भक्ति बखानि ॥२०॥

दस-वर्णन-(दोहा)

रावन-सिर, श्रीराम के दस अवतार बखानि ।
 बिस्वेदेवा, दोष दस, दिसा, दसा दस जानि ॥२१॥

(कवित्त)

एक थल थित पै बसत प्रति जन जिय,
 द्विकर पै देस देस कर को घरनु है ।

[१२] कवल-कमल (सहज०) । गति-गनि (बाल०, सहज०) ।

[१८] मुनि-श्रुति (दीन०) । सप्त०-सुर प्रमानिक सात (अन्यत्र) । तात-घात (दीन०) । [२०] नाडिका-नाटिका (दीन०, हरि०) ।

[२१] श्रीराम-विष्णु के (दीन०) ।

त्रिगुण कलित बहु बलित ललित गुन,
 गुनिन के गुनतरु फलित करनु है।
 चारि ही पदारथ को लोभ चित नित नित,
 दीबे को पदारथ-समूह को परनु है।
 'केसोदास' इंद्रजीत भूतल अभूत, पंच-
 भूत की प्रभूति भवभूति को सरनु है ॥२२॥
 दरसै न सुर से नरेस सिर नावै नित,
 षट दरसन ही को सिर नाइयतु है।
 'केसोदास' पुरी, पुरपुंजन को पालक, पै
 सात ही पुरो सौं पूरो प्रेम पाइयतु है।
 नायका अनेकन को नायक नगर नव,
 अष्ट नायकनि ही सौं मन लाइयतु है।
 नवधाई हरि को भजन इंद्रजीतजू को,
 दस अवतार ही को गुन गाइयतु है ॥२३॥

अथ आशिष-वर्णन-(दोहा)

मातु, पिता, गुरु, देव, मुनि कहत जु कछु मुख पाइ।
 ताही सौं सब कहत हैं आसिष कवि कबिराइ ॥२४॥

(कवित्त)

मलयमलित बास, कुंकुमकलित, जुत-
 जावक, कुसुम-नख पूजित, ललित कर।
 जटित जराइ की जंजार बांच नालमनि,
 लागि रहे लोकन के नैन मानो मनहर।
 चिरु चिरु साहै रामचंद्र के चरन जुग,
 'केसोदास' दीबो कर आसिष असेष नर।
 हय पर, गय पर, पालिक सु पीठ पर,
 अरि-उर पर अवनासन के सोस पर ॥२५॥

(सबैया)

होय धौं कोऊ चराचर मध्य माँ उत्तम जाति अनुत्तम ही को।
 किंनर कै नर नारि बिचारि कि बास करै थल के जल ही को।
 अंगी अनंग कि मूढ़ अमूढ़ उदास अमात कि मात सही को।
 सो अथर्व कबहूँ जाने 'कसव' जाके उदात उदौ सब ही को ॥२६॥

[२३] चारि ही-चारिहूँ (बाल०, सहज०)।

[२५] हय पर०-पन्नग पतंगु अरु किंनर असुर सुर मसक गर्यंद सम चाहत अवरवर
 (यास्तिक अ०)।

अथ प्रेमालंकार-वर्णन-(दोहा)

कपट निपट मिटि जाइ जहँ उपजै पूरन क्षेम ।
ताही सौं सब कहत हैं, 'केसव' उत्तम प्रेम ॥२७॥

(सवैया)

कछु बात सुनै सपने हू बियोग की होन चहै दुइ दूक हियो ।
मिलि खेलिय जा सह बालक तँ, कहि तासों अबोलो क्यों जात कियो ।
कहिजै यह 'केसव' नैननि सौं बिन काजहिं पावक-पुंज पियो ।
सखि तू बरजै अरु लोग हँसे सब, काहे को प्रेम को नेम लियो ॥२८॥

अथ श्लेषालंकार-वर्णन-(दोहा)

दोइ तीनि अरु भाति बहु आनत जामें अर्थ ।
श्लेष नाम तासों कहत, जे हैं बुद्धिसमर्थ ॥२९॥

द्वि-अर्थ-(कवित्त)

धरत धरनि, ईस सीस चरनोदकनि,
गावत चतुरमुख सब सुखदानियै ।
कोमल कमल कर कमलाकर कमल
कलित बलित गुन क्यों न उर आनियै ।
हिरनकसिपु दानकारी प्रहलाद - हित,
द्विजपद उरधारी बेदन बखानियै ।
'केसोदास' दारिद दुरद के बिदारिबे काँ,
एकै नरसिंह की अमरसिंह जानिये ॥३०॥

त्रि-अर्थ-(कवित्त)

परम बिरोधी अबिरोधी हूँ रहत सब,
दानिन के दानि, कवि 'केसव' प्रमान है ।
अधिक अनंत आप, सोहत अनंत संग,
असरनसरन, निरक्षक निधान है ।
हुतभुक हित मति, श्रीपति बसत हिय,
भावत है गंगाजल, जग को निदान है ।

[२७] उत्तम-उपमा (बाल०) ।

[२८] सुनै-कहै (बाल०) । सह-संग (दीन०) ।

[२९] जे हैं-जिनकी (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[३०] कमल-अमल (हरि०, सरदार०, दीन०) । कर-पद (याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) । कलित-ललित (याज्ञिक अ०, दीन०) ।

‘केसोराइ’ की सौ कहें ‘केसोराइ’ देखि देखि,
रुद्र की समुद्र की अमरसिंह रान है ॥३१॥
चतुर्थ—(कवित्त)

दानवारि सुखद, जनकजातनानुसारि,
करषत धनु गुन सरस सुहाए हैं ।
नरदेव क्षयकर करम हरन, स्वर
दूषन के दूषन सु ‘केसोदास’ गाए हैं ।
नागधर प्रिय मानि, लोकमाता सुखदानि,
सोदर सहायक नवल गुन भाए हैं ।
ऐसे राजा राम, ब्रजराम, कै परसुराम,
कैधौ है अमरसिंह मेरे उर भाए हैं ॥३२॥
पंच-अर्थ—(कवित्त)

भावत परम हंस जात गुन सुनि सुख
पावत संगीत मीत बिबुध बखानियै ।
सुखद सकति धर समरसनेही बहु
बदन बिदित जस ‘केसोदास’ गानिये ।
राजै द्विजराज पद भूपन बिमल कम-
लासन प्रकास परदार प्रिय मानियै ।
ऐसे लोकनाथ की त्रिलोकनाथ नाथनाथ,
कैधौ जगनाथ रामनाथ जग जानियै ॥३३॥

(दोहा)

तिन में एक अभिन्नपद, और भिन्नपद जानि ।
श्लेष-बुद्धि द्वे वेष की ‘केसवदास’ बखानि ॥३४॥

अभिन्नपद—(कवित्त)

सोहति सुकेसी, मंजुघोषा, रति, उरबसी,
राजा राम माहिबे को मूरति सोहाई है ।

[३१] रहत—कहत (अन्यत्र) ।

[३२] करषत—चरपत (बाल०) । ब्रजराम—बलराम (दीन०) ।

[३३] मीत—सीत (बाल०) । नाथनाथ०—नाथनाथ भूतल कौ नाथ किधौ ईद्रजीत जानिये (याज्ञिक०); रघुनाथ किधौ नाकनाथ किधौ ब्रह्मनाथ जानिये (याज्ञिक अ०); रघुनाथ किधौ नाथनाथ राजा रामसिंह जानिये (हरि०); नाथनाथ किधौ रघुनाथ के अमरसिंह जानिये (दीन०); जगनाथ अंबरांत किधौ समु० (बाल०) ।

[३४] बुद्धि—सुद्धि (याज्ञिक०) । वेष—भेद (दीन०) ।

कलरव कलित सुरनि राग रंग जुत,
 बदन कमल षटपद छवि छाई है।
 भृकुटी कुटिल घनु, लोचन कटाक्ष सर,
 भेदिजत मंजु मन तन सुखदाई है।
 प्रमुदित पयोधर सौदामिनि साथ नाथ,
 काम की सी सेना कामसेना बनि आई है ॥३५॥

अथ भिन्नपद-लक्षण- (दोहा)

पद ही में पद काटियै ताहि भिन्नपद जानि।
 भिन्न भिन्न पुनि पदन के, उपमा श्लेष बखानि ॥३६॥
 वृषभ बाहिनी अंग उर, बासुकि लसत प्रवीन।
 सिव-सँग सोहै सर्वदा सिवा कि राइ प्रवीन ॥३७॥

(कवित्त)

राजै रज 'केसोदास' दूटत अरुन लार,
 प्रतिभट अंकन तें अंक परसरतु है।
 सेना सुंदरीन के बिलाकि मुख भुषननि,
 किलकि किलकि जाही ताही कौं धरतु है।
 गाढ़े गढ़ खेल ही खिलौननि ज्यों तोरि डारै,
 जग जय जस चारु चंद्र कौं अरतु है।
 चंद्रसेन सुवपाल अंगन बिसाल रन,
 तेरो करवाल बाललाला सी करतु है ॥३८॥

(दोहा)

बहु-यौ एक अभिन्नक्रिय अतिरुद्धक्रिय जान।
 पुनि विरुद्धकर्मा अवर नियम विराधी, मान ॥३९॥

[३५] मूरति-सूरति (याशिक°, हरि°, दीन°)। सुरनि-सुरभि (याशिक°, याशिक
 अ°, हरि°, सरदार°, दीन°)। मंजु°-मर्मतनु तन (याशिक°); तनु मनु
 तनु (याशिक अ°); तन मन अति (हरि°, दीन°); मनु तर तन
 (सरदार°)। सौदामिनि°-दामिनी सी (याशिक°, याशिक अ°, हरि°,
 सरदार°, दीन°)।

[३६] भिन्न-अर्थ (दीन°)।

[३७] अंक परसरतु-अंकनि भरतु (याशिक°)। जय-धर (याशिक अ°)। अंगन-
 आँगन (सरदार°, दीन°)। चंद्रसेन°-एलिच बहादुर नबाब खानखाना सूय
 जाकौ (याशिक°)।

अथ अभिन्नक्रिय—(कवित्त)

प्रथम प्रयोगिजतु बाजि द्विजराज प्रति,
 सुबरन सहित न बिहित प्रमान है ।
 सजल सहित अंग बिक्रम प्रसंग रंग,
 कोष तें प्रकासमान धीरज-निधान है ।
 दीन को दयाल प्रतिभटन कोँ साल करै,
 कीरति को प्रतिपाल जानत जहान है ।
 जात हैं बिलीन है दुनी के दान देखि राम-
 चंद्रजू को दान कैधों 'केसव' कृपान है ॥४०॥

अथ अतिरुद्धक्रिय—(सबैया)

कछु कान्ह सुनौ कल बोलति कोंकिल काम की कीरति गावति सी ।
 पुनि बावै कहै कल भाषिनि कामिनि केलि कलानि पढ़ावति सी ।
 मुनि बाजति बीन प्रवीन नवीन सुराग हिये उपजावति सी ।
 कहि 'केसवदास' प्रकास विलास सबै बन सोभ बढ़ावति सी ॥४१॥

अथ विरुद्धकर्मा—(कवित्त)

दोऊ भगवंत तेजवंत बलवंत अति,
 दुहुन की बेदन बखानी बात ऐसी है ।
 दोऊ जानै पुन्य पाप, दुहुन के रिषि बाप,
 दुहुन की देखिजत सूरति सुदेसी है ।
 सुनौ देवदेव बलदेव, कामदेव प्रिय,
 'केसोराइ' की सौँ तुम कहौ तैसी जैसी है ।
 बारनी को राग होत सूरजु करत अस्त,
 उदौ द्विजराज को जु होत यह कैसी है ॥४२॥

अथ नियम—(कवित्त)

बैरी गाइ बाँभन को ग्रंथनि में सुनिजत,
 कषिकुल ही केँ सुबरनहर काज है ।
 गुरु सेजगामी एक बालकै बिलोकित,
 मातँगनि ही को मतवारे को सो साज है ।

[३६] क्रिय-कृष्ट (याज्ञिक अ०) । और०-अचिरजु कृतु वर आतु (बाल०); और
 भिन्नक्रिय (दीन०) ।

[४०] सजल-सकल (बाल०) । साल-ब्याल (बाल०) ।

[४१] बोलति-कूकति (दीन०) । पढ़ावति-बढ़ावति (बाल०) । बढ़ावति-सिखावति
 (बाल०) ।

अरि नगरीन प्रति होत है अग्रम्यागौन,
 दुर्गन ही 'केसोदास' दुर्गति सी आज है ।
 दुख ही को खंडन है मंडन सकल जग,
 चिरु राम राज करौ जाको ऐसो राज है ॥४३॥

अथ विरोधी-(सवैया)

कुस्त हरै हरये हरै संपत्ति, संभु विपत्ति यहै अधिकाई ।
 जातक काम अकामन के हितु, घातक काम सकाम सहाई ।
 छाती मँ लच्छि दुरावत वे तौ, फिरावत ये सबके सँग धाई ।
 जद्यपि 'केसव' एक तऊ हरि तँ हर सेवक कौ सति भाई ॥४४॥

अथ सूक्ष्मालंकार-(दोहा)

कौनहु भाव प्रभाव तँ, जानिय जिय की बात ।
 ईगित तँ आकार तँ, कहि सूक्ष्म अवदात ॥४५॥

(सवैया)

सखि सोभित गोपसभा महुँ गोविंद बैठे हुते दुति कौ धरिकै ।
 जनु 'केसव' पूरन चंद लसै चित चारु चकोरन को हरिकै ।
 तिनको उलटो करि आनि दियो केहु नीरज नीर नयो भरिकै ।
 कहु काहे तँ नेकु निहारि मनोहर फेरि दियो कलिका करिकै ॥४६॥

[४३] ग्रंथनि में०--कौलै सब काल जहाँ (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) । दुख ही को०--राजा दसरथसुत राजा रामचंद्र तुम (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) । राम--चिरु (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) !

[४४] काम०--कायक कामनि (बाल०) । सति--सित (याज्ञिक अ०) । सत (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[४५] जिय--मन (बाल०) । कहि--सुनि (बाल०) ।

[४६] सोभित--सोहन (याज्ञिक अ०); सोहत (दीन०); सोहन (अन्वय) । कहीं कहीं यह सवैया है—

बैठी हुती बृषभानुकुमारि सखीन के मंडल मध्य प्रवीनी ।
 लै कुम्हिलानो सो कंज परी जू कोऊ इक ग्वालिनि पायँ नवीनी ।
 बंदन सौँ छिरक्यो वह वाकहँ पान दये करना रस भीनी ।
 चंदन चित्र कपोल बिलेपि कै अंजन आँजि बिदा करि दीनी ॥

अथ लेशालंकार-(दोहा)

चतुराई के लेस तैं, चतुर न समझत लेस ।
कहत सु कोविद कवि सबै तासों उत्तम लेस ॥४७॥

(सवैया)

खेलत हैं हरि बागे बने जहँ बैठी प्रिया रति तैं अति लोनी ।
'केसव' कैसेहुँ पोछि में दीछि परी कुच-कुंकुम की रुचि रोनी ।
मातु समीप दुराई भलैं तिहि सातुक भावन की गति होनी ।
धूरि कपूर की पूरि बिलोचन सँघि सरोरुह ओढ़ि ओढ़ोनी ॥४८॥

अथ निदर्शनालंकार-(दोहा)

कौनहु एक प्रकार तैं, सत अरु असत समान ।
करियै प्रगट निदर्शना, समुझत सकल सुजान ॥४९॥

(कवित्त)

तेई करै चिर राज, राजन में राजै राज,
तिनहीं को जस लोक लोकनि अटतु है ।
जीवन, जनम तिनहीं के धन्य 'केसादास'
औरन को पसु सम दिन निघटतु है ।
तेई प्रभु परम प्रसिद्ध पुहुमों के पति,
तिनहीं की प्रभु प्रभुताई को रटतु है ।
सूरज समान सोम मित्र हू अमित्र कहँ,
दुख सुख आपने उदै ही प्रगटतु है ॥५०॥

अथ ऊर्जालंकार-(दोहा)

तजै न निज हंकार कोँ, जद्यपि घटै सहाइ ।
ऊर्ज नाम तासों कहँ, 'केसव' सब कबिराइ ॥५१॥

(सवैया)

को बपुरा जो मिल्यो है बिभीषन है कुलदूषन जीवैगो कौ लौँ ।
कुंभकरन मख्यो मघवारिपु तौ रे कहा न डरौँ जम सौ लौँ ।

[४७] कहत०-बरनत कवि कोविद सबै सीता को 'केसव' वेस (याशिक०); बरनत कवि 'केसव' सबै वाका कोविद लेस (याशिक अ०) ।

[४८] गति-मति (बाल०); रति (याशिक०) ।

[५०] आपने०-निज उदै अस्त (दोन०) ।

[५१] बाल० में नहीं है । सरदार० में यह रूप है-

अहंकार को ना तजै सो ऊर्जालंकार । कवि कोविद सब कहत हैं 'केसवदास' उदार ।

श्रीरघुनाथ के गातन सुंदरि जानहि तूँ कुसलात न तौ लौँ ।
साल सबै दिगपालन कौँ कर रावन के करवाल है जौ लौँ ॥१२॥

अथ रसवत् अलंकार- दोहा)

रसमय होइ सु जानियै, रसवत् 'केसवदास' ।
नव रस को संक्षेप ही, समुझौ करत प्रकास ॥१३॥

अथ शृंगार रसवत्-(सवैया)

आन तिहारी, न आन कहौ, तन में कह, आनन आन ही कैसौ ।
'केसव' स्याम सुजान सुरूप न जाइ कह्यो मन जानत जैसौ ।
लोचन सौंभहि पीवत जात, समात, सिहात, अघात न तैसौ ।
ज्यौ न रहात बिहात तुम्हें बलि जात सु बात कहौ नेक बैसौ ॥१४॥

अथ रौद्र रसवत्-(छप्पय)

जेहि सर मधुमद मर्दि महा मुर मर्दन किन्नउ ।
माख्यो करकस नरक संख हनि संख जु लिन्नउ ।
निष्कंटक सुर कटक कख्यो कैटभ बपु खंड्यउ ।
खरदूषन त्रिसिरा कबंध तरुखंड बिहंड्यउ ।
कुंभकरन जेहि मद हख्यो, पल न प्रतिज्ञा तें टरउँ ।
तेहि बान प्रान दसकंठ के कंठ दसो खंडित करउँ ॥१५॥

अथ वीर रसवत्-(छप्पय)

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौँ अष्ट वसु ।
रुद्रन बोरि समुद्र करौँ गंधर्व सर्व पसु ।
बलित अवेर कुवेर बलिहि गहि देउँ इंद्र अब ।
बिद्याधरन अविद्य करौँ बिन सिद्धि सिद्ध सब ।
लै करौँ दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाइ जल ।
सुनि सूरज सूरज उवत ही करौँ असुर संसार बल ॥१६॥

अथ करुण रसवत्-(सवैया)

दूर तैं दुंदुभि दीह सुनी न सुनी जन पुंज की गुंजन गाढ़ी ।
तोरन तार न तूर वज्र बरहावत भाट न गावत ढाढ़ी ।

[५२] है कुल-है० (याज्ञिक०, हरि०, दीन०) ।

[५४] नेक-युक्त (दीन०) ।

[५५] संहखौ-मद हख्यौ (हरि०, दीन०) ।

[५६] गहि-धरि (बाल०) । लै०-वह होइ (अन्यत्र) । दासि०-अदिति की दासि
दिति (बाल०) । संसार-संहार (अन्यत्र) ।

विप्र न मंगल मंत्र पढ़ै अरु देखी न बारवधू ढिग ठाढ़ी ।
'केसव' तात के गात, उतारति आरति, आरति मातहि बाढ़ी ॥५७॥

अथ मयानक रसवत्—(सवैया)

राम की बाम जु आनी चुराइ सु लंक में मीच की बेलि बई जू ।
क्यों रन जीतहुगे तिनसाँ जिनकी धनुरेख न नाखी गई जू ।
बीस बिसे बलवंत हुते, जु हुती दग 'केसव' रूप रई जू ।
तोरि सरासन संकर को पिय सीय स्वयंवर क्यों न लई जू ॥५८॥
बालि बली न बच्यो पर खोरि सु क्यों बाँधिहो तुम कै निज खोरहि ।
'केसव' छीरसमुद्र मध्यो कहि कैसेँ न बाँधिहें सागर थोरहि ।
श्रीरघुनाथ गनों असमर्थ न देखि बिना रथ हाथिन घोरहि ।
तोखो सरासन संकर को जिहि साजव कहा तुव लंक न तोरहि ॥५९॥

अथ बीभत्स रसवत्—(त्रिभंगी छंद)

सिगरे नरनाइक असुर बिनाइक राकसपति हिय हारि गए ।
काहू न उठायो, थल न छूड़ायो, दखो न टाखो भीत भए ।
इन राजकुमारन अति सुकुमारन लै आए हूँ, पैज करै ।
व्रतभंग हमारो भयो तुम्हारा रिषि तप-तेज न जानि परै ॥६०॥

अथ अद्भुत रसवत्—(कवित्त)

आसीबिष, सिधुबिष, पावक सोँ नातो कटू ,
हुतो प्रह्लाद सोँ, पिता को प्रेम दूटो है ।
द्रौपदी की देह में सुथी ही कहा दुस्सासन,
खरोई खिसानो खँचि बसन न लूटो है ।
पेट में परोक्षित की पारथ बचाई मीचु,
जब सब ही को बल विधिवान लूटो है ।
'केसव' अनाथन को नाथ जौ न रघुनाथ,
हाथी कहा हाथ कै हथियार करि छूटो है ॥६१॥

- [५७] तोरन०—तोरन तूर न ताल (दीन०) । तार न—तीरी न (याज्ञिक०) ।
[५८] आनी—त्याए (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०) । नाखी०—गई न तरी जू (बाल०) । जु हुती०—वहई त्रिय (याज्ञिक अ०) ।
[५९] कहि—गिहि (बाल०) ।
[६०] थल०—अरु न चढ़ायो (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०); गहि० (दीन०) । हैं—हो (दीन०); संग (अन्यत्र) ।
[६१] है—तौ (बाल०) । खँचि—खलु (बाल०) । पारथ—पैठि कै (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

‘कैसोदास’ वेदविधि साथहीं बनाइ ब्याध,
 सबरी कबहि सुचि संहिता सिखाई ही ।
 बेषधारी हरिवेष देख्यो हो असेष जग
 तारका कौं कौने सीख तारक पढ़ाई ही ।
 बारानसी बारन कन्यो हो कब बसबासु,
 गनिका कबहि मनिकर्निका अन्हाई ही ।
 पतितन पावन करत जौ न नंदपूत,
 पूतना कबहि पतिदेवता कहाई ही ॥६२॥

अथ हास्य रसवत्—(सवैया)

बैठति है तिनमें हठिकै जिनकी तुम सों मति प्रेमपगी है ।
 जानति हौं नलराज दमेंती की दूतकथा रसरंग-रंगी है ।
 पूजैगी साध सबे सुख की बड़भाग की ‘कैसव’ जोति जगी है ।
 भेद की बात सुने तैं कछु वह मासक ते सुसकान लगी है ॥६३॥

अथ शांत रसवत्—(सवैया)

देइगो जीवनवृत्ति वहै प्रभु, है सिगरे जग कौं जिहि दैयै ।
 आवत ज्यों अनउद्यम तैं दुख त्यों सुख पूरब के कृत पैयै ।
 राज औ रंक मुराज करो सब काहे काँ ‘कैसव’ काहु डरैयै ।
 मारनहार उबारनहार सु तो सबके सिर ऊपर हैयै ॥६४॥

अथ अर्थांतरन्यास—(दाहा)

और आनियै अर्थ जहँ औरे वस्तु बखानि ।
 अर्थांतर को न्यास यह चारि प्रकार सु जानि ॥६५॥

(सवैया)

भोरेहुँ भौहँ चढ़ाइ चितै डरपाइजै कै मन क्यों हूँ करेरो ।
 ताको तौ ‘कैसव’ कोरि हिये दुख होत महा, सु कहा इत हेरो ।
 कैसो है तेरो हियो हरि मरंहि छोरो नहीं तनु छूटत मेरो ।
 बूँदक दूध को माख्यो है बाँधि सु जानति हौं माई जायो न तेरो ॥६६॥

[६२] साथ—व्यर्थ (दीन०) । कबहि—को कौने (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[६३] सुख—मन (दीन०) । बड़—तन (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[६४] वृत्ति—मूरि (बाल०) । दुख त्यों सुख—सुख ज्यों दुख (याशिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) । उबारन—बियावनहार (दीन०) ।

[६६] कहा—कहौं (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

अथ भेद—(दोहा)

युक्त अयुक्त बखानिजै और अयुक्तायुक्त ।
'केसवदास' विचारिजै चौथो युक्त अयुक्त ॥६७॥

अथ युक्त अर्थांतरन्यास—(दोहा)

जैसो जहाँ जु बूझिजै, तैसो तहाँ सु आनि ।
रूप सील गुन जुक्ति बल, ऐसो युक्त बखानि ॥६८॥

(कवित्त)

गरुवो गुरु को दोष दूषित कलंक करि,
भूषित निसाचरीनि अंक न भरत हैं ।
चंडकरमंडल तैं लै लै बहु चंडकर,
'केसोदास' प्रतिमास मास निसरत हैं ।
बिषधर वंधु हैं, अनाथिनी को प्रतिबंधु,
बिष को बिसेष वंधु हिये हहरत हैं ।
कमलनयन की सोँ, कमल-नयन मेरे,
चंद्रमुखी चंद्रमा तैं न्याय ही जरत हैं ॥६९॥

अथ अयुक्त अर्थांतरन्यास—(दोहा)

जैसो जहाँ न बूझिजै तैसो तहाँ जु होइ ।
'केसवदास' अयुक्त कहि बरनत हैं सब कोइ ॥७०॥

(कवित्त)

'केसोदास' होत मारसीरो पै सुमार सी री,
आरसी लें देखि देहि ऐसियै है रावरी ।
अमल बतासे से हैं ललित कपोल तेरे,
अधर तमोल धरे दृग तिलचावरी ।
ये ही छवि छकि जात छन में छबोले छैल,
लोचन गँवार छीनि लैहैं इत आव री ।
बारबार बरजति, बारबार जाति कत,
मेलैबार वारों आनिवारी है तू बावरी ॥७१॥

अथ अयुक्त-युक्त अर्थांतरन्यास—(दोहा)

असुभै सुभ ह्वै जात जहँ, क्यों हूँ 'केसवदास' ।
इहै अयुक्त युक्त कवि बरनत बुद्धि-बिलास ॥७२॥

[७१] पै सुमार०—औ है सारसरी (बाल०) । मेलै०—मिलैबार बारौ आनिवारी है
तू बावरी (याज्ञिक०); मेलैबार बीर की त्यों० (बाल०); सौँ (अग्न्यत्र)

(सवैया)

पातक-हानि, पितानि सौं हारिबो, गर्भ के सुलन तें डरियै जू ।
 तालन को बँधिबो, बध रोर को, नाथ के साथ चिता जरियै जू ।
 पत्र फटै तें कटै रिन 'केसव', कैसेहु तीरथ जौ मरियै जू ॥७३॥
 नीकी सदा लगै गारि सगैन की, डाँड भलो जौ गया भरियै जू ॥७३॥
 आगे हूँ लीबो यहै, जु चितै इत, चौंकि उतै दग एँचि लई है ।
 कोबिद स्याम वहै प्रतिउत्तर, मानियै बात, जु मौनमई है ।
 रोष की रेख, वहै रस की रुख, काहे को 'केसव' छाँडि दई है ।
 नाहिंय हाँ, तुम नाहीं सुनी, यह नारि नईनि की रीति नई है ॥७४॥

अथ युक्त-अयुक्त अर्थांतरन्यास--(दोहा)

इष्टै बात अनिष्ट जहँ कैसे हूँ है जाति ।
 तासों जुक्ताजुक्त कहि वरनन बुद्धि बिभाति ॥७५॥

(सवैया)

सूल से फूल, सुवास कुवास सो, भाकसी से भए भौन सभागे ।
 'केसव' बाग महाबन सो, जुर सी चढ़ी जोन्हि सबै अँग दागे ।
 नेह लग्यो उर नाहर सो, निसि नाह घरीक कहूँ अनुरागे ।
 गारी से गीत, बिरी बिष सी, सिगरेई सिंगार अँगार से लागे ॥७६॥
 पाप की सिद्धि, सदा रिनबुद्धि, सुकीरति आपनी आप कही की ।
 दुख्ख को दान जु, सूतकन्हान जु, दासी की संतति संतत फीकी ।
 बेटी को भोजन, भूषन राँड को, 'केसव' प्रीति सदा पर-त्ती की ।
 जूझ में लाज, दया अरि कौं, अरु बाम्हन जाति सौं जीति न नीकी ॥७७॥

अथ व्यतिरेकालंकार--(दोहा)

तामहिँ आनिय भेद कछु, होइ जु बस्तु समान ।
 सो व्यतिरेक सुभाति द्वे, जक्ति सहज परमान ॥७८॥

अथ युक्ति व्यतिरेक--(कवित्त)

सुंदर सुखद अति अमल सकल बिधि,
 सदल सफल बहु सरस संगीत सों ।
 बिबिध सुवासजुत 'केसोदास' आसपास,
 राजै दुजराज तनु परम पुनीत सों ।

[७३] बध-बंधु (बाल०) । सगैन-सनेह (दीन०) ।

[७४] कोबिद स्याम०-मानिने को बहई (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।
 मौनमई-मानमई (याज्ञिक०) । नाहिंय-नाहीं जू (याज्ञिक०); नाहिंयै
 (हरि०, दीन०) ।

[७५] कहि-मति (बाल०) । बुद्धि०-कवि सुख पाइ (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०,
 दीन०) ।

फूले ई रहत दोऊ दीबे ही को प्रतिपल,
 देत कामनानि सब मीत हू अमीत सों ।
 लोचन बचन गति बिन, इतनो ई भेद,
 इंद्रतरुवर अरु इंद्र इंद्रजात सों ॥७६॥

अथ सहज व्यतिरेक—(सवैया)

गाइ बराबरि धर्म सबै धन जाति बराबर ही चलि आई ।
 'केसव' कंस दिवान पितान बराबर ही पहिरावनि पाई ।
 बैस बराबरि दीपति देह बराबर ही बिधि बुद्धि उपाई ।
 ऐ सखि आज् ही होहुगी कैसे बड़ी तुम आखिन ही की बढ़ाई ॥८०॥

अथ अपह्नुति अलंकार—(दोहा)

मन की बात दुराई मुख, औरै कहियै बात ।
 कहत अपह्नुति सकल कवि, यासों बुधि-अवदात ॥८१॥

(कवित्त)

सुंदर ललित गति बलित सुवास अति,
 सरस सुवृत्त मति मेरे मन मानी है ।
 अमल अदूषित सुभूषननि भूषित,
 सुवरन, हरनमन, सुर सुखदानी है ।
 अंग अंग गूढ़ भाव के प्रभाव जानै को,
 सुभाव ही को भाव रुचि पचि पहिचानी है ।
 'केसोदास' देवी कोऊ देखी तुम ? नाहीं राज,
 प्रगट प्रवीनराइ जू को यह बानी है ॥८२॥
 कारे सटकारे केस, नौनी कछु होनी बैस,
 सोने तैं सलोनी दुति देखियत तन की ।
 आछे आछे लोचननि चलनि चितौनि आछी,
 आछी मुख कबिता बिमोहै मति मन की ।
 'केसोदास' केहूँ भाग पाइयै जौ बाग गहि,
 साँसनि उसासे साध पूजै रात रन की ।

[७६] सकल-कमल (याशिक०) । इंद्र०-इंद्रजीत जीत सों (बाल०) । लाल...
 (अन्यत्र) ।

[८०] उपाई-बनाई (याशिक०) । ऐ सखि-ऐ अलि (याशिक०, हरि०, सरदार०,
 दीन) ।

[८१] यासों-ताहि (दीन०), बिनकै (याशिक०) ।

[८२] अंग०-अंग ही को भाव गूढ़ अब के प्रभाव जानै को सुभाव रूप रुचि
 पहिचानी है (दीन०) । रुचि-रूप (सरदार०) । रुचि०-रूप पचि पहिचानी है
 (हरि०) ।

बेटी काहू गोप की बिलोकी प्यारे नंदलाल ?
 नाहीं लोललोचनी ! बड़वा बड़ेपन की ॥८३॥

इति श्रीमद्विषयभूषणभूषितायां कविप्रियायां विशिष्टालंकारांतरे
 क्रमालंकारादि-अपहृतिवर्णनं नाम एकादशः प्रभावः ॥११॥

१२

अथ उक्ति अलंकार-वर्णन-(दोहा)

बुद्धि बिबेक अनेक बल, उपजत तर्क अपार ।
 तासों कबिकुल उक्ति कहि, बरनत अमित प्रकार ॥१॥

अथ उक्ति-भेद-(दोहा)

बक्र, अन्य, व्यधिकरण कहि, और बिसेष समान ।
 सहित सहोक्ति मँ कही, उक्ति सु पंच प्रमान ॥२॥

अथ बक्रोक्ति-लक्षण-(दोहा)

‘केसव’ सूधी बात में, बरनिय टेढ़ो भाव ।
 बक्रउक्ति तासों कहँ, जे प्रवीन कबिराव ॥३॥

(सवैया)

ज्यों त्यों हुलास सों ‘केसवदास’ बिलास-निवास हिये अबरेख्यो ।
 त्यों त्यों बढ़यौ उर कंप कछु भ्रम भीत भयो किधौं सीत बिसेख्यो ।
 मुद्रित होत सखी बरहौं मेरे नैन सरोजनि साँच कै लेख्यो ।
 तें जु कछो मुख मोहन को अरबिद सो है सो तो चंद सो देख्यो ॥४॥

अथ अन्योक्ति लक्षण-(दोहा)

औरहि प्रति जु बखानिजै कछु औरई बात ।
 अन्यउक्ति यह जानिजै, बरनत कवि न अघात ॥५॥

[८३] चलिनि०-चितोनि औ चलिनि (हरि०, सरदार०, दीन०) । आछे मुख-
 मुखमुख (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[३] जे०-केसव कवि (याज्ञिक०); सदा सवै (सरदार०); सही सवै (दीन०) ।

[५] पिय-बिय (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन) । तेऊ०-ते उलटी (याज्ञिक०) ।
 बिय सों-तिन सों (याज्ञिक०); बिय सों उन सों जिनहँ देखत बीजै
 (हरि०, सरदार०);...देखिकै बीजै (दीन) ।

(सवैया)

दल देख्यो नहीं जड़ जाड़ो बड़ो अरु घाम घनो जल क्यों हरिहै ।
 कहि 'केसव' बाउ बहै बहु दाउ दहै धर धीरज क्यों धरिहै ।
 फलिहै फल नाहि कि तौ लोँ तु ही कहि तो पहुँ भूख सही परिहै ।
 कछु छाँह नहीं सुख सोभ नहीं, कहि कीर करीर कहा करिहै ॥६॥
 अंग अली धरियै अँगियाऊ न आजु तँ नींदौ न आवन दीजै ।
 जानति हौँ पिय नाते सखीन के लाजउ तौ अब साथ न लीजै ।
 थोरेहि घौस तँ खेलन तेऊ लगौँ जिय सौँ जिनकौँ जिय जीजै ।
 नाह के नेह के मामिले आपनी छाहँ हू की परतीति न कीजै ॥७॥

अथ व्यधिकरणोक्ति-लक्षण--(दोहा)

औरहि में कीजै प्रगट औरहि को गुन-दोष ।
 उक्ति यहै व्यधिकरण की सुनत होइ संतोष ॥८॥

(कवित्त)

जानु, कटि, नाभिकूल, कंठ, पीठि, भुजमूल,
 उरज करजरेख रेखी बहु भाँति है ।
 दलित कपोल, रद ललित अधर रुचि,
 रसना रसित रस, रस में रिसाति है ।
 लोटि लोटि लौटि पौटि लपटाति बीच बीच
 हा हा, हू हू, नेति नेति बानी होति जाति है ।
 आलिंगन अंग अंग पीड़ियत पद्मिनी के,
 सौतिन के अंग अंग पीरनि पिराति है ॥९॥
 राजभार, साजभार, लाजभार, रजभार,
 भूमिभार, भवभार, नीके ही अटत हैं ।
 प्रेमभार पनभार, 'केसव' संपत्तिभार,
 पतिभार जुत अति जुद्धनि जटत हैं ।
 दानभार, मानभार, सकल-सयानभार,
 भोगभार, भागभार घटना घटत हैं ।
 एते भार फूलनि व्याँ राजें राजा राम-सिर,
 तिहि दुख सत्रुन के सिरई फटत हैं ॥१०॥

[६] यह०-तेहि कहत हैं (दीन) ।

[७] बहु-दिन (हरि०, सरदार०, दीन०) । फल-फूल (हरि०, सरदार०); फुलिहै (दीन०) । कहि-रहि (सरदार०, दीन०) ।

[८] रसित-रसत (याज्ञिक०) । रस में-रोस में (दीन०) । पीरनि पीर अति (अन्यत्र) ।

(सवैया)

पूत भयो दशरथ्य केँ 'केसव' देवन केँ घर बाजो बधाई ।
 फूलि कै फूलन कोँ बरषेँ, तरु फूलि फले सब ही सुखदाई ।
 छीर बहौँ सरिता सब भूनल, धीर समीर सुगंध सुहाई ।
 सर्वसु लोग लुटावत देखि कै दारिद-देह दरार सी खाई ॥११॥

(दोहा)

होइ हँसी औरनि सुने, यह अचरज की बात ।
 कान्ह चढ़ावत चंदनहि, मेरे अंग सिरात ॥१२॥

(सोरठा)

दये सुनारनि दाम, रावर को सोनो हख्यो ।
 दुख पायो पतिराम, प्रोहित 'केसव' मिश्र साँ ॥१३॥

अथ विशेषांति-लक्षण-(दोहा)

विद्यमान कारन सकल, कारज होहि न सिद्ध ।
 सोई उक्ति बिसेषमय, 'केसव' परम प्रसिद्ध ॥१४॥

(सवैया)

कर्न से दुष्ट ते रुष्ट हुते भट पाप सपुष्टन सासना टारे ।
 सोदर सैन दुसासन से सब साथ समर्थ भुजा उसकारे ।
 हाथी हजारन को बल 'केसव' एंचि थके पट कोँ डर डारें ।
 द्रौपदी को दुरजोधन पै तिल अंग तऊ उघग्यो न उघारे ॥१५॥

(दोहा)

मूल तोल कसिवान बनि काइथ लिखत अपार ।
 राखि मरत पतिराम ये सानो हरत सुनार ॥१६॥

(कवित)

सिखै हारी सखी डरवाई हारी कादंबिनि,
 दामिनी दिखाइ हारी दिसि अधरात की ।
 मुकि मुकि हारी रति मारि मारि हाख्यो मार
 हारी मकभोरति त्रिविध गति बात की ।
 दई निरदई दई वाहि काहे ऐसा मति,
 जारति जु रैन ऐन दाह ऐसे गात की ।
 कैसे हू न माने हौँ मनाइहारी 'केसोराई'
 बोलि हारी कांकला बुलाइहारी चातकी ॥१७॥

[१०] साजभार-रजभार (दीन०) । भवभार०-भवभार जयभार (हरि०, सरदार०, दीन०) । [१०] अंग-नैन (याज्ञिक०); हियो (दीन०) ।

[१५] दुष्ट०-दुष्ट ते पुष्ट (हरि०, सरदार०, दीन०) । सपुष्टन-औ कष्ट न (दीन०) । दुसासन-कुयोधन (दीन०) । दुरजोधन-दुहसासन (दीन०) ।

[१६] मूल-तुला (दीन०) । मरत-भरत(वही)।ये-पै (वही)।[१७] ऐन-दिन(याज्ञिक०)

(सवैया)

कर्न कृपा दुज द्रौन तहाँ जिनको मत काहू पै जात न टाख्यो ।
भीम गदाहि घरं धनु अजुन जुद्ध जुरे जिनसाँ जम हाख्यो ।
'केसवदास' पितामह भापम मोचु करा बस लें दिसि चाख्यो ।
देखत ही तिनके दुरजाधन द्रौपदा सामुहँ हाथ पसाख्यो ॥१८॥
बेई हँ बान बिधान-निधान अनेक चमू जिन जोर हई जू ।
बेई हँ बाहु वहै धनु धारज दाह दिसा जिन जुद्ध जई जू ।
बेई हँ अजुन आपु नहीँ जग मँ जस काँ जिन बेल बई जू ।
देखत ही तिनके तब कालनि नेकहि नारि छुड़ाइ लई जू ॥१९॥

अथ सहाकित-लक्षण-(दोहा)

हानि बृद्धि सुभ असुभ कछु कहियै गूढ़ प्रकास ।
होइ सहाकित स साथ ही बरनत 'केसवदास' ॥२०॥

(कवित्त)

सिसुता समेत भई मंदगति लोचननि,
गुनन सौँ बलित ललित गति पाई है ।
भौंहनि की होड़ीहाड़ा हँ गई कुटिल अति,
तेरी बानी मेरी राना सुनत सुहाई है ।
'केसोदास' मुखहास होसखँ ही कटितट,
छिन छिन सूझम छबोलाँ छबि छाई है ।
बारबुद्धि बारनि के साथ ही बढ़ा है वीर,
कुचनि के साथ ही सकुच उर आई है ॥२१॥

अथ व्याजस्तुति-निंदालंकार-लक्षण-(दोहा)

स्तुति निंदा मिस होइ जई स्तुति मिस निंदा जान ।
व्याजस्तुति निंदा वहै, 'केसवदास' बखान ॥२२॥

(कवित्त)

सीतल हूँ हीतल तिहारे न बसति वह,
तुम न तजत तिल ताको तन ताप-गेहु ।
आपनो ज्यौ हीरा सो पराए हाथ ब्रजनाथ,
दै के तो अकाथ कथ मैं ऐसो मन लेहु ।
पते पर 'केसोराइ' तुम्हँ न प्रवाहि वाहि,
वहै जक लागी भागी भूख भूल्यो गेहु ।

माँडौ मुख छाँडौ छिन छलनि छबोले लाल,
ऐसी तौ गँवारिन सों तुम ही निबाहौ नेहु ॥२३॥

अथ निंदाव्याज स्तुति-(कवित्त)

केसर कपूर कुंज केतकी गुलाब लाल,
सूँघत न चंपक चमेली चारु तोरी हैं ।
जिनकी तू पासवानि बूमियत, आसपास,
ठाढ़ीं 'केसोदास' कीनी भय भ्रम भोरी हैं ।
तेरी कौनो कृति किधौं सहज सुवास ही तें,
बसि गई हरि चित क्यों हूँ चोराचोरी हैं ।
सुनहि अचेत आई इहि हेत, नाहींतर,
तो सो ग्वारि गोकुल गुबरिहारी थोरी हैं ॥२४॥

जानिजै न जाकी माया मोहति मिलेहीं माँझ,
एक हाथ पुन्य एक पाप को निवारियै ।
परदारप्रिय मत्त मातँग सुताभिगामी,
निसिचर को सां मुख देख्यो देह कारियै ।
आजु लौं अजादि राखे बरद बिनोद भावै,
एते पै अनाथ अति 'केसव' निहारियै ।
राजन के राजा छाँडि कीजतु तिलक ताहि,
भीषम सों कहा कहौं पुरुष न नारियै ॥२५॥

अथ अमित-लक्षण-(दोहा)

जहाँ साधनै भोगवै, साधक की सुभ सिद्धि ।
अमित नाम तासों कहत, जाकी अमित प्रसिद्धि ॥२६॥

(सबैया)

आनन सीकर सीक कहा हिय तो हित तें अति आतुर आई ।
फीको भयो मुख ही मुखराग क्यों तेरे पिया बहु बार बकाई ।
प्रीतम को पटु क्यों पलट्यो अलि केवल तेरी प्रतीति को लाई ।
'केसव' नीकेहि प्रीतम सों रमी, नायिका बातन ही बहराई ॥२७॥
को गनै कर्न जगन्मनि से नृप साथ सबै दल राजन ही को ।
जानै को खान किते सुलतान सु आयो सहाबुदी साह दिली को ।

[२३] तनु-उर (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) । ताँको-वाको (याज्ञिक०) ।

कथ-हाथ (याज्ञिक०); अब (सरदार०); साथ (हरि०, दीन०) । प्रवाहि-
प्रतीत (याज्ञिक०) । गेहु-देहु (याज्ञिक०) । [२४] पासवानि-टहलनी
(याज्ञिक०) । [२५] अजादि-अज्ञानि (बाल०) । राखे-रिधि (याज्ञिक०) ।

[२७] मुख-मुख (बाल०) । प्रीतम-नायक (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

ओरछे आनि जुखो कहि 'केसव' साह मधूकर सोँ सक जी को ।
दौरि कै दूलहराम सु जीति कखो अपने सिर कीरति-टीको ॥२८॥

अथ पर्यायोक्ति-लक्षण—(दोहा)

कौनहु एक अदृष्ट तँ, अनही किये जु होइ ।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोक्ति सोइ ॥२९॥

(कवित्त)

खेलति ही सतरंज अलीनि सोँ तहाँ हरि
आए आपु ही तँ किधौँ काहू के बुलाए री ।
लागे मिलि खेलन मिलै कैमनु हरँ हरँ
देन लागे दाउ आपु आपु मन भाए री ।
उठि उठि गइँ ति मिस ही मिस जित तित,
'केसोराइ' की सोँ दोऊ रहे छबि छाए री ।
चौँकि चौँकि चहुँ दिसि तिहि छिन राधाजू के,
जलज से लोचन जलद से ह्वे आए री ॥३०॥

अथ युक्तालंकार-लक्षण—(दोहा)

जैसो जाको बुद्धि-बल, कहिजै तैसो रूप ।
तासौँ कविकुल कहत हँ युक्त वरनि बहुरूप ॥३१॥

(कवित्त)

मदन बदन लेत लाज को सदन देखि,
जदपि जगत जीव मोहिबे को है छमी ।
कोटि कोटि चंद्रमा सँवारि वारिवारि डारौँ,
जाके काज ब्रजराज आज हू लौँ संजमी ।
'केसोदास' सबिलास तेरे मुख का सुवास,
सुनिजत सही सार आरसनि लै रमी ।
मित्रदेव, छिति दुर्ग, दंड दल, कोस, कुल,
बल जाकेँ ताकेँ कहौ कौन बात की कमी ॥३२॥

इति श्रीमद्विधभूषणभूषितायां कविप्रियायां विशिष्टालंकार-
वर्णने उक्तयुक्तालंकारवर्णनं नाम द्वादशः प्रभावः ॥

[३०] चौँकि चौँकि—चौँकि चित (याज्ञिक०) ।

[३१] तासौँ कवि—तासौँ कविकुल जुक्ति कहि वरनत अधिक अनूप (याज्ञिक०); ...
युक्त यह बहुत सरूप (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[३२] सुनिजत०—सुनियत आरस ही मारसनि (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

अथ समाहितालंकार-वर्णन-(दोहा)

होइ न क्योंहूँ, होतु जहँ दैवजोग तेँ काज ।
ताहि समाहित नाम यह बरनत कबिसिरताज ॥१॥

(कवित्त)

छबि सौँ छर्बाली वृषभानु की कुमारि आजु,
रही हुती रूपमद मानमद छकि कै ।
मार हू तेँ सुकुमार नंद के कुमार ताहि,
आए रो मनावन सयान सब तकि कै ।
हंसि हंसि, सौँहँ करि करि पाइ परि परि,
'केसोराइ' की साँ जब रहे जिय जकि कै ।
ताही समै उठे घन घोर घोर, दामिनी सी,
लागी लौटि स्याम घन उर सौँ लपकि कै ॥२॥

(सवैया)

सातहु दीपनि के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने ।
बीस बिसे ब्रतभंग भयो सु कहौ अब 'केसव' को धनु ताने ।
सोक की आगि लगी परिपूरन आई गए घनस्याम बिहाने ।
जानकी के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु-पुन्य पुराने ॥३॥

अथ सुसिद्धालंकार-(दोहा)

साधि साधि औरै मरँ, औरै भोगै सिद्धि ।
तासौँ कहत सुसिद्ध सब जिनके बुद्धि-समृद्धि ॥४॥

(सवैया)

मूलन सौँ फलफूल सबे दल जैसी कछु रसरीति चली जू ।
भाजन भोजन भूषन भार्मनि भोन भरी भव भाँति भली जू ।
ढासन आसन बास सुवासन बाहन जान बिमान थली जू ।
'केसव' जैसे महाजन लोग मरँ सचि भोगत भोग बली जू ॥५॥

[१] जहँ-अब (बाल०) । यह-कहि (दीन०) ।

[२] तकि-नकि (बाल०) । जब-दाऊ (बाल०) ।

[३] परिपूरन-पुर पूरन (बाल०); पुनि पूरन (याज्ञिक०) ।

[४] भोगै-भोगवै (बाल०, याज्ञिक०) । जिनके-जाकी अमित प्रसिद्धि (बाल०) ।

[५] जैसे-कै कै (बाल०) । सँचि-भव भोगवै लै लै (बाल०) ।

(छप्पय)

सरघा सँचि सँचि मरहिं, सहर मधुपान करत मुख ।
खनि खनि मरत गँवार कूप, जल पियत पथिक सुख ।
बागवान बहि मरत फूल बाँधत उदार नर ।
पचि पचि मरत सुवार, भूप भोजननि करत बर ।
भूषन सुनार गढ़ि गढ़ि मरत भामिनि भूषित करति तन ।
कहि 'केसव' लेखक लिखि मरहि पाँडत पढ़ पुरानगन ॥६॥

अथ प्रसिद्दालंकार—(दाहा)

साधन साधै एक भव भोगे सिद्धि अनेक ।
तासो कहत प्रसिद्ध सब 'केसव' सहित बिबेक ॥७॥

(सवैया)

मात के मोह पिता परितोषनि केवल राम भरे रिस भारे ।
औगुन एक ही अर्जुन को छितिमंडल के सब छत्रिय मारे ।
देवपुरी कहँ औघपुरी जन 'केसवदास' बड़े अरु भारे ।
सूकर कूकर स्यौ हरिचंद के सत्य समेत सदेह सिधारे ॥८॥

अथ विपरीतालंकार—(दाहा)

कारज साधक को जहाँ, साधन बाधक होइ ।
तासो सब विपरीत कहि, कहत सयाने लोइ ॥९॥

(कवित)

नाह तँ नाहर, त्रिय जेवरी तँ साँप करि,
घालँ घर, बीथिका बसावति बननि की ।
सिबहिं सिवा हू भेद पारति जिनकी माया,
माया हू न जानै छाया छलित तननि की ।
राधाजू सो कहा कहौ ऐसिन की सुन सीख,
साँपनि सहित बिषरहित फननि की ।
क्यों न परै बीच बीच आँगिहू न सहि सकै,
बीच परी अंगना अनेक आँगननि की ॥१०॥
साथ न सयानो कोऊ, हाथ न हथियार, रघु-
नाथजू के जङ्ग को तुरंग गहि राख्योई ।
काछन कछोटी सिर छोटी छोटी काकपत्त,
सातहीँ बरस किनि जुद्ध अभिलाख्योई ।
नील नल अंगद सहित जामवंत हनु-
मंत से अनंत जिन नीरनिधि नाख्योई ।

‘केसोदास’ देस-देस कुलनि त्यों रघुकुल,
कुसलव जीति तें बिजय-रस चाख्यो ई ॥११॥

अथ रूपकालंकार—(दोहा)

उपमा ही के रूप सों, मिल्यो बरनियै रूप ।
ताही सों सब कहत हैं, ‘केसव’ रूपक-रूप ॥१२॥
बदन चंद्र, लोचन कमल, बाहु बीसनी जानि ।
कर पल्लव अरु भ्रूलता, बिधाधरनि बखानि ॥१३॥
ताके भेद अनेक मँ, तीन्हीं कहे सुभाड ।
अदभुत एक विरुद्ध पुनि, रूपक रूपक नाँव ॥१४॥

अथ अदभुत रूपक—(दोहा)

सदा एकरस बरनियै, और न जाहि समान ।
अदभुत रूपक कहत हैं, तासों बुद्धिनिधान ॥१५॥

(कवित्त)

सोभा सरवर माहिं फूल्यो ई रहत सखि,
राजें राजहंसिनी समीप सुखदानियै ।
‘केसोदास’ आसपास सौरभ के लोभ घने,
घाननि के देव भौर भ्रमत बखानियै ।
होति जोति दिन दूनी निसि मँ सहसगुनी,
सूरज सुहृद चारु चंद्र मन मानियै ।
रति को सदन छूई सकै न मदन ऐसो,
कमलबदन जग जानकी को जानियै ॥१६॥

अथ विरुद्ध रूपक—(दोहा)

जहँ कहियै अनमिल कछु, सुमिल सकल बिधि अर्थ ।
सो विरुद्ध रूपक कहँ, ‘केसव’ बुद्धिसमर्थ ॥१७॥

(सवैया)

सोने की एक लता तुलसी बन क्यों बरनौं सुनि बुद्धि सकै छवै ।
‘केसवदास’ मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से द्वै ।
फूलि सरोज रछो तिन ऊपर रूप निरूपत चित्त चले चवै ।
तापर एक सुवा सुभ तापर खेलत बालक खंजन के स्वै ॥१८॥

[११] पाँच ही-सातही (दीन०) नीरनिधि-बारिनिधि (बाल०) । दीप०-दीप
भूपनि (दीन०) ।

[१३] बीसनी-मृणालहि (याज्ञिक०); पास ज्यों (हरि०, सरदार, दीन०) ।

[१८] द्वै-वै (दीन०); चवै (हरि०); स्वै-द्वै (हरि०, दीन०) ।

अथ रूपक रूपक-(दोहा)

रूप भाव जहँ बरनियै कौनिहु बुद्धि बिबेक ।

रूपक रूपक कहत कवि 'केसवदास' अनेक ॥१६॥

(सवैया)

काछे सितासित काछनी 'केसव' पातुरि ज्यों पुतरीनि बिचारो ।

कोटि कटाक्ष चलै गति भेद नचावत नायक नेह निनारो ।

बाजतु है मृदु हास मृदंग, सुदीपति दीपन को उजियारो ।

देखो नहीं हरि देखि तुम्हें यहि होत है आँखिन ही मैं अखारो ॥२०॥

अथ दीपकालंकार-(दोहा)

बाच्य क्रिया गुन द्रव्य बहु, बरनहि करि इक ठौर ।

दीपक दीपति कहत हँ, 'केसव' कविसिरमोर ॥२१॥

दीपक रूप अनेक हँ, मैं बरने द्वै रूप ।

मनि माला तिनसों कहँ 'केसव' कवि कविभूप ॥२२॥

बरषा, सरद, बसंत, ससि, सुभता, सोभ, सुगंधु ।

प्रेम, पवन, भूषन, भवन, दीपक दीपकबंधु ॥२३॥

अथ मणिदीपक-(दोहा)

इनमें एक जू बरनिये, कौनहु बुद्धिबिलास ।

तासों मनिदीपक सदा, बरनत 'केसवदास' ॥२४॥

(कवित्त)

प्रथम हरिननैनी हेरि हेरि हरि की सौँ,

हरषि हरषि तम तेजहि हरतु है ।

'केसोदास' आसपास परम प्रकास सौँ,

बिलासनि बिलास कछु कहि न परतु है ।

भाँति भाँति भासिनी भवन कह भूँ भव,

सुभग सुभाइ मभ सोभा को धरतु है ।

मानिनी समेत मान मानिनीनि बस करि,

मेरो मन तेरो दीप दीपित करतु है ॥२५॥

दक्षिण पवन दक्षि जक्षिनी रमन लगि,

लोलन करत लौंग लवली लता को फर ।

'केसोदास' केसर कुसुम कोस-रसकन,

तनु तनु तिनहु को सहि न सकत भर ।

[१०] सो-तेहि (दीन०) । [१६] केसवदास :-जिनकै बुद्धि अनेक । (याज्ञिक०) ।

[२०] देखो नहीं-देखति हो (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) । [२१] यह दोहा बाल० में नहीं है । [२४] तासों०-सो मन दीपक जानियो नीकै केसवदास (याज्ञिक०) ।

क्यों हूँ कहीं होत हठि साहस बिलास बस,
 चंपक चमेली मिलि मालती सुवास हर ।
 सीतल सुगंध मंद गति नंदनंद की सौँ,
 पावत कहाँ तँ तेज तोरिबे कौँ मानतरु ॥२६॥

अथ मालादीपक—(दोहा)

सबै मिलै जहँ बरनियै, देस काल बुधिवंत ।
 मालादीपक कहत हँ, ताके भेद अनंत ॥२७॥
 (सवैया)

दीपक-देह दसा सौँ मिलै सु दसा मिलि तेजहि जोति जगावै ।
 जागि कै जोति सबै समुझै तम सोधि सु तौ सुभता दरसावै ।
 सो सुभता रचै रूप को रूपक रूप सु कामकला उपजावै ।
 काम सु 'केसव' प्रेम बढावत प्रेम लै प्रानप्रियाहि मिलावै ॥२८॥

(कवित्त)

घननि की घोर सुनि, मोरन को सोर सुनि,
 सुनि सुनि 'केसव' अलाप अलीजन को ।
 दामिनी दमक देखि, दीप की दिपति पेखि,
 देखि सभ सेज देखि सदन सुमन को ।
 कुंकुम की बास, घनसार की सुवास भय
 फूलनि की बास मन फूलि कै मिलन को ।
 हँसि हँसि मिले दोऊ, अनही मनाएँ, मान
 छूटि गो एक ही बार राधिका रवन को ॥२९॥
 अथ प्रहेलिका अलंकार—(दोहा)

बरनिय बस्तु दुराइ जहँ, कौनहुँ एक प्रकार ।
 तासौँ कहत प्रहेलिका, कबिकुल बुद्धि उदार ॥३०॥
 सोभित सत्ताईस सिर, उनसठि लोचन लेखि ।
 छप्पन पद जानहु तहाँ, बीस बाहु बर देखि ॥३१॥
 सूर्यमंडल जानिबो ।

बरन अठारह बाहु दस, लोचन सत्ताईस ।
 मारत हँ प्रतिपाल करि, सोभित ग्यारह सीस ॥३२॥
 हरिहरात्मक सरीर जानिबो ।

नौ पसु, नव ही देवता, द्वे पक्षी जिहि गेह ।
 'केसव' सोई राखिहै, ईद्विजीत की देह ॥३३॥
 सूर्यमंडल जानिबो ।

देखै सुनै न खाइ कछु, पाइ न, जुवती जाति ।
 'केसव' चलन न हारई, बासर गनै न राति ॥३४॥
 बार जानिबो ।

‘केसव’ ताके नाम के आखर कहिजै दोइ ।
सूधे भूषन मित्र के उलटे दूषन होइ ॥३५॥
राज जानबी ।

जाति लता दुइ आखरनि, नाउ कहै सब कोइ ।
सूधे सुखमुख बरनियै, उलटे अंबर होइ ॥३६॥
दाख जानबी ।

सब सुख चाहौ भोगवै, जौ पिय एकहि बार ।
चंद गहै जहँ राहु कौं, जैयां तिहि दरबार ॥३७॥
बीरबर को दरबार जानबी ।

ऐसी मूरि दिखाउ सखि, जिय जानत सब कोइ ।
पीठि लगावत जासु रस छाती सीरी होइ ॥३८॥
पुत्र जानबी ।

इत्यादिक बहिलापिका जानबी ।

अथ परिश्रुतालंकार—(दोहा)

और कछु कीजै जहाँ उपजि परै कछु और ।
तासों परिव्रत कहत हँ, ‘केसव’ कबिसिरमोर ॥३९॥
(सवैया)

हँसि बोलत ही जु हँसै सब ‘केसव’ लाज भगवत लोक भगै ।
कछु बात चलावत घेरु चलै, मन आनत ही मनमथ्य जगै ।
सखि तू ज कहँ सु हुती मन मेरेहो जानि यहै न हियो उमगै ।
हरित्याँ नक डोठि पसारत ही अंगुरीन पसारन लोग लगै ॥४०॥
हाथ गह्यौ ब्रजनाथ सुभाव हो छूटि गई धर धारजताई ।
पान भखँ मुख नैन रचा रुचै, आरसी देखि कहौ यह ठाई ।
दै परिरंभन माहन का मन माहि लियो सजना सुखदाई ।
लाल गुपाल कपोल नखत्त तेरे दिये तँ महा छबि पाई ॥४१॥
जोउ दया जिन जन्म दया जग, जाही की जोति बड़ा जग जानै ।
ताही सौँ बैर मनो बच काइ करै कृत ‘केसव’ को उर आनै ।
मूषक तँ रिषि सिंघ कछा रिषि ही कह मूख रोष बितानै ।
ऐसो कछु यह काल है जाका भलो करियै सो बुरो करि मानै ॥४२॥

इति श्रीमद्विषयभूषणभूषतायां कविप्रियायां विशिष्टालंकारे

समाहितालंकारवर्णनं नाम त्रयोदशः प्रभावः ॥१३॥

[३६] दुई—दूषन रहित (याज्ञिक अ०) । बरनियै—भक्षिये (दीन०) । [३८] यह दोहा केवल हरि०, सरदार०, दीन० में ही है, प्राचीन हस्तलेखों में नहीं । [४०] नक—नैक (बाल०, याज्ञिक०); डुक (दीन०); निकु (सरदार०) । [४१] नखत्त—नदन्त (दीन०) । पाई—छाई (वही) । [४२] कह—सह (याज्ञिक०) ।

१४

अथ उपमालंकार—(दोहा)

रूप सील गुन होहि सम, जौ क्यों हूँ अनुसार ।
 तासों उपमा कहत कवि, 'केसव' बहुत प्रकार ॥१॥
 संसय, हेतु, अभूत अरु, अदभुत, बिक्रिय जानि ।
 दूषन, भूषन, मोह मय, नियम, गुनाधिक आनि ॥२॥
 अतिसय, उत्प्रेक्षित कहों, श्लेष धर्म, बिपरीत ।
 निर्नय, लाक्षणिकोपमा, असंभावित मीत ॥३॥
 बुधि बिरोध, माला कहत, ओर परस्पर ईस ।
 उपमा भेद अनेक हूँ मैं बरने इकवास ॥४॥

अथ संशयोपमा—(दोहा)

जहाँ नहीं निरधार कछु सब संदेह सरूप ।
 यह संसय उपमा सदा, बरनत हूँ कविभूप ॥५॥

(सवैया)

खंजन हूँ मनरंजन 'केसव' रंजन नैन किधों, मति जी की ।
 मीठी सुधा कि सुधाधर की दुति दंतन की किधों दाढ़िम ही की ।
 चंद भलो मुखचंद किधों सखि सूरति काम कि कान्ह की नीकी ।
 कोमल पंकज कै पदपंकज, प्रानपियारे कि मूरति पी की ॥६॥

अथ हेतूपमा—(दोहा)

होत कौनहू हेत तँ, अति उत्तम से हीन ।
 ताही सों हेतोपमा, 'केसव' कहत प्रवीन ॥७॥

(कवित्त)

अमल कमल-कुल कलित ललित गति,
 बेल सों बलित मधु माधवी को पानियै ।
 मृगमद मरदि कपूर धरि चूरि पग,
 केसरि को 'केसव' बिलास पहिचानियै ।
 भेलि कै चमेली करि चंपक सों केलि, सेइ
 सेवती समेत हेतु केतकी सों जानियै ।
 हिलि मिलि मालती सों आवति समीर जब
 तब तेरे सुखमुख बास सो बखानियै ॥८॥

[२] बिक्रिय-चित्रित (बाल०) । [४] माला०-मालोपमा (हरि०, सरदार०, दीन०) । [५] यह-सो (दीन०) । [६] किधों सखि०-सखी सुरनि सूति (बाल०) । सूरति-मूरति (शांजिक०) । [८] गति-बाग (बाल०) । पानियै-मानियै (बाल०) ।

अभूतोपमा—(दोहा)

उपमा जाइ कही नहीं, जाको रूप निहारि ।
सो अभूत उपमा कही, 'केसवदास' बिचारि ॥६॥

(कवित्त)

दुरिहै क्यों भूषन बसन दुति जोबन की,
देह ही की जोति होति द्यौस ऐसी राति है ।
नाह की सुवास लागें हैं कैसी 'केसव'
सुभाव ही की बास भौर-भीर फारें खाति है ।
देखि तेरी मूरति की सूरति बिसूरति हों,
लालन को दृग देखिबे को ललचाति है ।
चलिहै क्यों चंद्रमुखी कुचनि के भार भएँ,
कचन के भार तँ लचकि लंक जाति है ॥१०॥

(सवैया)

भाल गुही गुन लाल लटें लपटें लर मोतिन की सुखदैनी ।
ताहि बिलोकति आरसी लै कर आरस सों इक सारसनैनी ।
'केसव' स्याम दुरें दरसी परसी उपमा मति सों अति पैनी ।
सूरजमंडल में ससिमंडल मंडि धरी जनु जाइ त्रिवेनी ॥११॥

अद्भुतोपमा—(दोहा)

जसी भई न होति अब, आगे कहै न कोइ ।
'केसव' ऐसी बरनियै, अद्भुत उपमा सोइ ॥१२॥

(सवैया)

प्रीतम को अपमाननि माननि, गान सयाननि रीफि रिभावै ।
बंक बिलोकनि बोल अमोलनि बालि कै 'केसव' मोद बढ़ावै ।
हाव हू भाव बिभाव प्रभाव सुभाव के भाइनि चित्र चुरावै ।
ऐसे बिलास जु होहिं सरोज में तो उपमा मुख तेरे को पावै ॥१३॥

अथ बिक्रियोपमा—(दोहा)

क्यों हूँ क्यों हूँ बरनियै, कौनहु एक उपाइ ।
बिक्रिय उपमा होति तहँ, बरनि कहत कबिराइ ॥१४॥

(कवित्त)

'केसोदास' कुंदन के कोस तँ प्रकासमान,
चितामनि ओपना सों ओपिकै उतारी सी ।

[१०] लंक—कटि (बाल०) । [११] आरस०—आरस में इक (याज्ञिक०) । मंडि०—मध्य धसी (याज्ञिक अ०) । [१२] कहै—लहै (दीन०) । [१३] प्रभाव०—प्रभाव के भाव के भेदनि (याज्ञिक अ०) । [१४] कौनहु—कहै न (दीन०) । उपाइ—प्रकार (वही०) । बरनि०—'केसव' बुद्धि उदार (वही०) ।

इंदु के उदोत तँ उकीरी ऐसी काढ़ी, सब
 सारस सरस, सोभासार तँ निकारी सी।
 सौंधे की सी सौँधी, देह सुधा सों सुधारी, पावँ
 धारा देवलाक तँ कि सिंधु तँ उधारी सी।
 आजु यासों हाँस खाल बालि चालि लेहु लाल,
 काल्हि एक बाल ल्याऊँ काम की कुमारी सी ॥१५॥

अथ दूषणोपमा—(दोहा)

जहँ दूषनगन बरनियै, भूषन-भाव दुराइ।
 दूषन उपमा होति तहँ, बुधजन कहत बनाइ ॥१६॥
 (सवैया)

जौ कहौ 'केसव' सोम सरोज सुधासुर भृंगनि देह दहे हैं।
 दाढ़िम के फल श्रीफल बिद्रुम हाटक कोटिक कष्ट सहे हैं।
 कोक, कपोत, करी, अहि, केहरि, कोकिल, कीर कुवील कहे हैं।
 अंग अनूपम वा प्रिय के उनकी उपमा कहँ बेई रहे हैं ॥१७॥

अथ भूषणोपमा—(दोहा)

दूषन दूर दुराइ जहँ, बरनत भूषन-भाइ।
 भूषन उपमा होत तहँ, बरनत सब सुख पाइ ॥१८॥
 (कवित्त)

सुबरनजुत, सुरबलित बरनि पुनि,
 भैरो सो मिलित गति ललित बितानी है।
 पावन प्रगट दुति दुजन की देखिजत,
 दीपति दिपति अति श्रुति सुखदानी है।
 सोभा सुभ सानी परमारथ-निधानी दीह
 कलुष कृपाना मानी सब जग जानी है।
 पूरब के पूरे पुन्य सनिजै प्रबीनराइ,
 तेरी बानी मेरी रानी गंगा को सो पानी है ॥१९॥

अथ माहोपमा—(दोहा)

रूपक के अनुरूप कौँ कौनहि बस मन जाइ।
 ताही सौँ माहोपमा कहत सकल कबिराइ ॥२०॥
 (कवित्त)

खेलत न खेल कछू हाँसी न हँसत हरि,
 सुनत न गान कान तान बान सी बहै।

[१८] बरनत—'केसव' सुखद सुभाइ (याशिक अ०); सब कबिराय (दीन०)।

[१९] सुबरनित—सुख सुरनि (याशिक०)। [२०] कौनहि०—जानि कतहुँ (दीन०)।

ओढ़त न अंबरन डोलत दिगंबर सो,
 संबर ज्यों संबरारि दुख्ख देह को दहै ।
 भूलिहू न सूँघै फूल, फूलि फलि कँभिलात,
 जात, खात बीरा हून बात काहू सों कहै ।
 जानि जानि चंद-मुख 'केसव' चकोर सम,
 चंदमुखी चंद ही के बिब त्यौँ चितै रहै ॥२१॥

अथ नियमोपमा—(दोहा)

एकै सुभ जहँ बरनियै, मन क्रम बचन बिमेष ।
 'केसवदास' प्रकास बस, नियमोपमा सु लेख ॥२२॥

(कवित)

कलित कलंककेतु केतु अरि सेत गात,
 भोग जोग को अजोग रोग ही को थल सो ।
 पून्यो ही को पूरन पै प्रतिदिन उनो उनो
 छिन छिन छीन छवि छीलर के जल सो ।
 चंद सो जु बरनत रामचंद की दुहाई,
 सोई मतिभंद कवि 'केसव' कुसल सो ।
 सुंदर सुवास अरु कोमल अमल अति,
 सीताजू को मुख सखि केवल कमल सो ॥२३॥

अथ गुणाधिकोपमा—(दोहा)

अधिकन हू तैं अधिक गुन, जहाँ बरनियत होइ ।
 तासों गुन अधिकोपमा, कहत सयाने लोइ ॥२४॥

(कवित)

वे तुरंग सेत ।। संग एक ये अनेक,
 हँ सरंग अंग अंग पै कुरंगम से ।
 वे निसंक अंक जह्न वे ससंक 'केसोदास',
 ये कलंक रंक वे कलंक ही कलीत से ।
 वे पियेँ सुधाहि, ये सुधानिधीस के रसै जु,
 साँचहू सुनीत ये, पुनीत वे पुनीत से ।
 देहिं ये दिये बिना, बिना दिये न देहि वे
 भए न, हँ न, होहिगे न, ईद्र इंद्रजीत से ॥२५॥

[२१] सुगत०—सुनत न कान तान बान गंग सी बहै (बाल०) । जानि०—देखि देखि (बाल०) । [२२] सुभ—सम (हरि०, सरदार०, दीन०); सों (याज्ञिक अ०) । प्रति—आन (अन्यत्र) । [२३] कुसल—मुसल (दीन०) । [२४] होइ—कोइ (दीन०) । [२५] सुनीत०—पुनीत ये सुनीत (दीन०) ।

अथ अतिशयोपमा—(दोहा)

एक कछू एकहि बिषै, सदा होइ रस एक ।
अतिसय उपमा होति तहँ, बरनत सहित बिबेक ॥२६॥

(कवित्त)

‘केसोदास’ प्रगट प्रकास सौँ अकास पुनि,
ईस हू के सीस रजनीस अवरेखियै ।
थल थल जल जल अचल अमल अति,
कोमल कमल बहु बरन बिसेखियै ।
मुकुर कठोर बहु नाहिनै अचल जस
बसुधा सुधा हू तिय अधरन लेखियै ।
एकरस एकरूप जाकी गोता सीता मुनि,
तेरो सो बदन तैसो तोही बिषै देखियै ॥२७॥

अथ उत्प्रेक्षितापमा—(दोहा)

‘केसव’ दीपति एक ही, होइ अनेकन माह ।
उत्प्रेक्षित उपमा सोई, कहँ कबिन के नाह ॥२८॥

(कवित्त)

न्यारो ही गुमान मन मीननि के मानिजत,
जानिजत सब ही सु कैसे न जनाइयै ।
पंचवान बाननि के आन आन भौति गर्ब,
बाढ़थो परिमान बिनु कैसे वै बताइयै ।
‘केसोदास’ सबिलास गीत रंग रंगनि
कुरंग अंगनानि हूके आँगननि गाइयै ।
सीता जू की नयन-निकाई इन ही पे है सु,
भूठे हँ नलिन खंजरोट हू में पाइयै ॥२९॥

अथ श्लेषोपमा—(दोहा)

जहाँ सरूप प्रयोगिजै सब्द एक ही अर्थ ।
‘केसव’ तासौँ कहत है, श्लेषोपमा समर्थ ॥३०॥

(कवित्त)

सगुन, सरस, सब अंग राग रंजित है,
सुनहु सुभाग बड़े भाग बाग पाइयै ।

[२६] बरनत०—कहत सुबुद्धि अनेक (दीन०) । [२७] प्रकास०—अकास में प्रकासमान (दीन०) । अचल-अचला (बाल०) । सीता०—मुनियत (दीन०) । तैसो—सीता (दीन०) । [२८] कहँ०—बरन कहत कविनाह (बाल०) । [२९] जनाइयै—मनाइयै (बाल०) । इनही पै—हेम ही में (याज्ञिक०) । हम ही में (याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) ।

सुंदर सुवास तन कोमल अमल मन,
 षोडस बरस मय हरष बढ़ाइयै ।
 बलित ललित बास 'केसोदास' सबिलास,
 सुंदरी सिंगारि लाई गहर न लाइयै ।
 चातुरी की साक्षा माँझ आतुर है नंदलाल
 चपे की सी माला बाला उर उरमाइयै ॥३१॥

अथ धर्मोपमा-(दोहा)

एक धर्म को एकु अँगु, जहाँ जानिजतु होइ ।
 ताही सों धर्मोपमा, कहत सयाने लोइ ॥३२॥

(कवित्त)

ऊजरे उदार उर बासुकी बिराजमान,
 हार के समान आन उपमा न टोहियै ।
 सोभिजै जटान बीच गंगाजू के जलबिंदु,
 कुंदकलिका से 'केसोदास' मन मोहियै ।
 नख कैसी रेखा चंद चंदन सी चार रज,
 अंजन सिंगार हू गरल रुचि रोहियै ।
 सब सुख सिद्धि सिवा सोहै सिव-बाम-अंक,
 जावक सो पावक लिलार लाग्यो सोहियै ॥३३॥

अथ विपरीतोपमा- दोहा)

पूरष पूरे गुननि के, तेई कहिजै हीन ।
 तासों विपरीतोपमा, 'केसव' कहत प्रवीन ॥३४॥

(सवैया)

भूषित देह बिभूति दिगंबर नाहिन अंबर अंग नबीने ।
 दूरि कै सुंदर सुंदरी 'केसव' दौरि दरीनि में मंदिर कीने ।
 देखि बिमंडित दंडन सों भुजदंड दोऊ असिदंड-बिहीने ।
 राजनि श्रीरघुनाथ के राज कुमंडल छाँडि कमंडल लीने ॥३५॥

अथ निर्णयोपमा-(दोहा)

उपमा अरु उपमेय को, जहँ गुन-दोष-बिचार ।
 निर्णय उपमा होति तहँ, सब उपमनि को सार ॥३६॥

[३१] बाग-आइ (बाल०); गहि (याशिक०) । सिंगारि-सँवारि (दीन०) । माँझ-
 मझि (वही) । [३३] बाम अंक-जू के साथ (याशिक अ०, दीन०) । [३४] गुननि-
 पुन्य (दीन०) । [३५] मंदिर-आसन (दीन०) । देखि०-देखिय (वही) ।

(कवित्त)

एक कहैं अमल कमल मुख सीताजू को,
 एक कहैं चंदमय आनंद को कंद री ।
 होइ जौ कमल तौ वै रैन में न सकुचै री,
 चंद जौ तौ बासर न होइ दुतिमंद री ।
 बासर ही कमल रजनि ही में चंद, मुख
 बासरहू रजनि बिराजै जगबंध री ।
 देखैं मुख भावत न देख्योई कमल चंद,
 तारैं मुख मुखै सखि कमलौ न चंद री ॥३७॥

अथ लाक्षणिकोपमा—(दोहा)

लक्ष्मण लक्ष्मि जु भरनियै, बुधबल बचन-बिलास ।
 तासों लाक्षणिकोपमा, कहियत 'केसवदास' ॥३८॥

(कवित्त)

बासों मृग-अंक कहैं तोसों मृगनैनो सबै,
 वह सुधाधर तुही सुधाधर मानियै ।
 वह दुजराज राजै तेरे दुजराजी वह
 कलानिधि तुही कलाकलित बखानियै ।
 रतनाकर के दोऊ 'केसव' बिलासकर,
 अंबर प्रकास कुबलय-हित गानियै ।
 वाके अति सीतकर तुही सीता सीतकर,
 चंद्रमा सी चंद्रमुखी सब जग जानियै ॥३९॥

अथ असंभावितोपमा—(दोहा)

जैसे भाव न संभवत तैसे करत प्रकास ।
 होत असंभावित तहाँ, उपमा 'केसवदास' ॥४०॥

(कवित्त)

जैसे अति सीतल सुवास मलयज माहिं,
 अमल अनल बुद्धिबल पहिचानियै ।
 जैसे कौनो कालबस कोमल कमल कोस,
 'केसोदास' केसोराइ कंटक से जानियै ।
 जैसे बिधु सधर मधुर मधुमय सोहै,
 मोहरुख बिष् बिष्मुखहि बखानियै ।

[३७] ०मय-सम (दीन०); माई (सरदार०) । [३८] बचन०-केसवदास (बाल०) । तासों०-लाक्षणिको उपमा सु यह बहुधा बचन-बिलास (बाल०) । [३९] बिलास-प्रकास (दीन०); बिलास (अन्यत्र) । प्रकास-बिलास (दीन०) ।

सुंदरि सुलोचनि सुवचनि सुदति तैसे,
तेरे मुख आखर परुषरुख मानियै ॥४१॥

अथ विरोधोपमा—(दोहा)

जहँ उपमा उपमेय सों, आपुस माहिँ विरोध ।
सो विरोध उपमा कहत, 'केसव' जिनहिँ प्रबोध ॥४२॥
(कवित्त)

कोमल कमल कर कमला के भूषननि,
'केसोदास' दूषन खरद ससि पाई है ।
ससि अति अमल अमृतमय मनिमय,
सीता को बदन देखि ताकोँ मलिनार्ह है ।
सीता को बदन सब सुख को सदन जाहि,
मोहत मदन दुख-कदन निकाई है ।
आधो पल माधोजू के देखे बिनु साई ससि,
सीता के बदन कहँ होत दुखदाई है ॥४३॥

अथ मालोपमा—(दोहा)

जो जो उपमा दीजियै, सो सो पुनि उपमेय ।
सो कहियै मालोपमा 'केसव' कबिकुल-गेय ॥४४॥
(कवित्त)

मदनमोहन कहौ रूप को रूपक कैसो,
मदन-बदन ऐसो जाहि जग मोहियै ।
मदन-बदन कैसो, सोभा को सदन स्याम
जैसो है कमल रुचि लोचननि पोहियै ।
कैसो है कमल जैसो आनंद का कंद सुभ,
कैसो है सुचंद जैसो उपमान टोहियै ।
कैसो है जु चंद वह 'केसव' कुँवर कान्ह,
सुनौ प्रान प्यारी जैसो तेरो मुख सोहियै ॥४५॥

अथ परस्पोपमा—(दोहा)

जहाँ अभेद बखानिजै, उपमेयो उपमान ।
तासों परस्पोपमा, 'केसवदास' बखान ॥४६॥

[४१] कोस-महि (यात्रिक०) । मधु०-मधुमय माहि (दीन०) । [४२] कहत०-
सदा बरनत बिन्है (दीन०) । [४३] पाई-ठारै (दीन०); गार्ह (सरदार०) । [४४] यह
दोहा बाल०, सरदार० में नहीं है । कहीं-कहीं यह रूप मिलता है—'केसव' जहाँ न प्रेम है
उपगत भाव सरूप । ताही सों मालोपमा कहि बरनत कविभूष ॥ [४५] पोहियै-जोहियै
(दीन०) । [४६] उपमेयो०-उपमा अरु (बाल०); उपमेय र (दीन०) ।

(कवित्त)

बारे न बदे न बृद्ध नाहिनै गृहस्थ सिद्ध,
 बावरे न बुद्धिर्वत, नारियौ न नर से ।
 अंगी न अनंगी तन ऊजरे न मैले मन,
 स्यार ऊ न सूरें रन थावर न चर से ।
 दूबरे न मोटे रंक राजा ऊ कहे न जाई,
 मर न अमर अरु आपने न पर से ।
 बेद हू न कछु भेद पाइजतु 'केसोदास',
 हरिजू से हेरे हर हरि हेरे हर से ॥४७॥

(दोहा)

कोकिल से अति कृत्स्न घन करिनी सो गिरिराज ।
 मृग सूरौ मृगराज सो, ऐसो बरनत लाज ॥४८॥

अथ संकीर्णोपमा—(दोहा)

बंधु, चोर, बादी, सुहृद, कल्प, वृत्त, प्रभु जानि ।
 सम, रिपु, सोदर आदिदै, इतने अर्थ बखानि ॥४९॥

(कवित्त)

बिधु को सो बंधु किधौ चोर हासरस को कि,
 कुंदन को बादी किधौ मोतिन को मीत है ।
 कल्प कलहंस को कि छीरनिधि छवि बृद्ध,
 हिम-गिरि-प्रभा-प्रभु, प्रगट पुनीत है ।
 अमल अमित अंग गंगा के तरंग सम,
 सुधा को सुबुद्धि रिपु रूपक अभीत है ।
 दिस दिस देस देस परम प्रकासमान,
 किधौ 'केसोदास' रामचंद्रजू को गीत है ॥५१॥

इति श्रीमद्विषयभूषणभूषितायां कविप्रियायां

विशिष्टालंकारवर्णने उपमालंकारवर्णनं

नाम चतुर्दशः प्रभावः ॥१४॥

[४९] बृद्ध-प्रच्छ (दीन०); बृष्ण (बाल०) । तरंग-तरंगन को (दीन०) । सुधा-
 सोदर सुधा को (दीन०); सुधा को समूह (सरदार०) । रूपक-रूपको (दीन०, सरदार०) ।

१५

अथ नखशिख-वर्णन-(दोहा)

सविता के परताप ज्यों बरन्यो कविता-अंग ।
 कहाँ जथामति बरनि त्यों बनिता के प्रत्यंग ॥१॥
 कही जु पूरब पंडितनि, जाकी जितनी जानि ।
 तितनी अब ता अंग की उपमा कहाँ बखानि ॥२॥
 नख तें सिख लौं बरनियै देवी दीपति देखि ।
 सिख तें नख लौं मानुषी 'केसवदास' बिसेषि ॥३॥
 जग के देवी देव के श्रीहरिदेव बखानि ।
 तिन हरि की श्रीराधिका इष्टदेवता जानि ॥४॥
 भूषित तिनके भूषननि त्रिभुवनपति के अंग ।
 तिनके 'केसवदास' कवि बरनतु है प्रति अंग ॥५॥
 उपमा और समान सब इतनो भेदु बखानि ।
 जावकजुत पद बरनियै महं दीसंजुत पानि ॥६॥

अथ जावक-वर्णन-(दोहा)

राजु रजोगुन को प्रगट प्राची दिसि को भागु ।
 रंगभूमि जावकु बरनि कोपराग अनुरागु ॥७॥

अथ जावक-वर्णन-(कवित्त)

कोमल अमलता की किधौ यह रंगभूमि
 सोभिजतु अंगनु कि सोभा के सदन को ।
 अरुन दलनि पर कीनो कि तरनि कोप,
 जीत्यो किधौ रजोगुनु राजिव के गुन को ।
 पलु पलु प्रनय करत किधौ 'केसोदास'
 लागि रह्यो पूरबानुरागु पिय-मन को ।
 परी बृषभानु की कुमारि तेरे पाई सोहै
 जावक को रंगु कै सुहागु सौतिजन को ॥८॥

अथ चरणोपमा-(दोहा)

अति कोमल पद बरनियै पल्लव कमल समान ।
 जलज कमल से चरन कहि कर कहि थलज प्रमान ॥९॥

[७] राजु-रागु (वाशिक०) । विशेष-नखशिख याशिक अ० और दीन० में नहीं है ।

अथ पदपंकज-वर्णन—(कवित्त)

गंगाजू के जल मध्य कंठ के प्रमान पैठि
 जपि जपि सूर-संत्र आनंद बढ़ावहीं ।
 'केसोदास' चाम जल सीत सहि एकरस,
 एक पाई ठाढ़े कोटि कलप नसावहीं ।
 कोमल अमल भए सुंदर सुवास भए
 कमला-निवास मनु जदपि भ्रमावहीं ।
 पायो परब्रह्मपद पदुमनि पदुमनि
 तेरे पद पदवी को पदु पै न पावहीं ॥१०॥

अथ अंगुली-वर्णन—(दोहा)

अँगुलीं चंपक की कलीं जीवनमूरि प्रमान ।
 तारा रवि ससि सुमन मन मनिगन किरनि समान ॥११॥
 बिछिया बाँक अनौट की नाहिन उपमा आन ।
 सोभा प्रभा तरंग गन हंस अंस तन त्रान ॥१२॥

(सवैया)

चंपकली-दल हूँ तैं भली पद-अंगुली बाल की रूप रसे हैं ।
 सुभ्र सुदेस लसँ नख यों जनु प्रांतम के दृग देखि बसे हैं ।
 बाँकँ अनौट बनै बिछियानि बिभूषित जोति जराइ प्रसे हैं ।
 'केसव' सोम सरोजनि ऊपर कोपि मनौँ तनत्रान कसे हैं ॥१३॥

अथ नूपुर-वर्णन—(दोहा)

नूपुर रत्नाजंत्र मन लोचन गुनगन हार ।
 जाचक जसपाठक मधुप जामिक बंदनमार ॥१४॥

(कवित्त)

गतिनि के हार की बिहार के पहर-रूप
 किबौँ प्रतिहार रतिपति के निखय के ।
 हंस गतिनाइक कि गूढ़ गुनगाइक कि
 भवन-सुहाइक कि माइक हैं मय के ।
 'केसव' कमलमूल अलिकुल कुनित कि
 मनु प्रतिधुनित सुमनित निखय के ।
 हाइक चटित मनि स्यामल जटित पग,
 नूपुर जुगल किबौँ बाजे हैं बिजय के ॥१५॥

[१०] पर-बह (बाल०) । [११] किरनि-नखन (याशिक०) । [१३] देखि-
 देव (याशिक०) । [१५] प्रतिधुनि-किंकिनि प्रतिधुनित (बाल०, याशिक०) ।

अथ जेहरी-वर्णन-(दोहा)

जेहरी जयकंकन कलित 'केसवदास' सुजान ।
माला साला सुभ सभा सीमा सम सोपान ॥१६॥

(कवित)

कोमल कमलमूल नूपुर नवल अक्षि-
कुलनि की साला किबौ 'केसव' सुभाइ की ।
चरन-सरोवर समीप किबौ बीछिया
कनक कलहंसनि की बैठकें बनाइ की ।
गज हंस सारस की जीसी गति मेरी मति
बाँध्यो जयकंकन की सोभा सुखदाइकी ।
अभिल सुमिल सीढ़ी मदन-सदन की कि
जगमगै पग जुग जेहरी जराइ की ॥१७॥

अथ उरु-वर्णन-(दोहा)

उरु करी-कर केरि सम करम-खोभ सों लीन ।
चक्र पास थल पुलिन सम बरनि नितंबनि पीन ॥१८॥

(कवित)

कोमल कमलमुखी तेरे ये जुगल जातु
मेरे बलबीरजू के बलहि हरत हैं ।
सौरभ सुभाय सुभ रंभा कौं सखंभ अरु
'केसव' करम हू की सोभा निदरत हैं ।
कोटि रतिराज ब्रजराज सिरताज की सौं
देखि देखि गजराज लाजनि मरत हैं ।
मोचि मोचि मद रुचि सकुल सकोचि सोचि
सुचि आएँ सुठनि की कुंडली करत हैं ॥१९॥

अथ नितंब-वर्णन-(कवित)

बाहूँ घोर चितघोर चाक चक चक्रमन,
सुंदर सुदरसन दरसन हीने हैं ।
दितिसुत-सुलनि घटाइवे कौं सुपरुल,
सुरनि बड़ाइवे कौं 'केसव' प्रवीने हैं ।
सब ही के मननि मथत हरिहरहू के,
मन मथिबे कौं मनमथ साथ दीने हैं ।

[१७] कनक-कुनज (याज्ञिक०) । [१८] केरि-केलि (याज्ञिक०) । पाठ०-पीठि
सम थल पुलिन (याज्ञिक०) । [१९] लाजनि-भाजनि (बाण०) ।

रुचि सुचि सकुच सकेलि कै तरुनि तेरे
काहू नए चतुर नितंब चक्र कीने हैं ॥२०॥

अथ कटि-वर्णन—(दोहा)

कटि अति सूक्ष्म उदर दुति चलदल-दल उनमान ।
रोमलता तम धूम अलि चारु चिटौनि प्रमान ॥२१॥
(कवित्त)

भूत की मिठाई जैसी साँच की झुठाई तैसी,
स्यार की ढिठाई ऐसी छीन छहूँ रितु है ।
धीरा को सो हास, 'केसोदास' दास कैसो
सुख सूर की सी संक अंक रंक को सो बितु है ।
सूम कैसो दानु मतिमूढ़ कैसो ज्ञानु,
गोरी गोरा कैसो मानु मेरे जान समुदितु है ।
कौनै है सँवारी बृषभानु की कुमारी यह,
जाकी कटि निपट कपट कैसो हितु है ॥२२॥

अथ रोमराजी-वर्णन—(कवित्त)

किधौँ काम बागवान बई है सिंगार-बेलि
सीँचि कै बढ़ाई नाभि कूप मनु मोहियै ।
किधौँ हरिनैन खंजरीटनि के खेलिबे की
भूमि 'केसोदास' नख पंक रेख रोहियै ।
सुंदर उदर सुभ सुंदरी की रोमराजी
किधौँ चित चातुरी की चोटी चारु सोहियै ।
किधौँ चलदल-दल पिय की कपट जुर
टूटिबे कौँ मंत्रु लिखि लोचननि पोहियै ॥२३॥

अथ कुच-वर्णन—(दोहा)

चक्रवाक कुच बरनियै 'केसव' कमल प्रमान ।
सिव गिरि घट मठ गुच्छफल सुभ इभ-कुंभ-समान ॥२४॥
(कवित्त)

किधौँ मनोहर मनहार दुति सर खेलें,
जोषन कलभ कुंभ सोभन दरस हैं ।
मोहनी के मठ किधौँ इंदिरा के मंदिर,
कि इंदीबर इंदुमुखी सौरभ सरस हैं ।
आनंद के कंद किधौँ अंग द्वै अनंग ही के,
बाढ़त जु 'केसोदास' बरस बरस हैं ।

परी बृषभानु की कुमारी तेरे कुच किधौं,
रूप अनुरूप जातरूप के करस हें ॥२५॥

अथ भुज-वर्णन—(दोहा)

कर कंजनि पल्लवनि भुज बिस बल्लरी सुपास ।
रत्न तारका कसुम सर नखरुचि 'केसवदास' ॥२६॥
(कवित्त)

'केसोदास' गोरे गोरे गोल कामसूल-हर
भामिनी के भुजमूल भाइ से उतारे हैं ।
सोभा सुख बरसत माखन से दरसत
परसत कंचन से कठिन सुधारे हैं ।
बलया बलित बाहु देखि रीभे हरिनाहु,
भानौ मन पासिबे के पासियै बिचारे हैं ।
मलिन मृनाल मुख पंक में दुराण दुख
देखौ जाइ छातिनि में छेद कै कै डारे हैं ॥२७॥

अथ करभूषण-वर्णन—(कवित्त)

गजरा बिराजें गजमोतिन के अति नीके
जिनकी अजीत जोति 'केसोदास' गाई है ।
बलय बलित कर कंचन कलित मनि
लाल की ललित पौँची पौँचिनि बनाई है ।
सेत पीत हरित भलक भलकति अति
स्यामल सुमिल मेरे स्यामले कौं भाई है ।
मानौ सूर सोम की कला सकेलि आपनीचौ
आपुने सखा कौं सुखु पाइ पहिराई है ॥२८॥

अथ नखांगुलिमुद्रिका-वर्णन—(कवित्त)

गोरी गोरी अंगुरिनि राते से रुचिर नख
और अति पैने पैने रुचि रुचि कीने हैं ।
रतिजय लेखिबे की लेखनी सुलेख किधौं
मीनरथ सारथी के नोदन नबाने हैं ।
किधौं 'केसोदास' पंचबानजू के पाँचौ बान
सकल भुवन जिहि बस करि दीने हैं ।
कंचन कलित मनि मुदरी ललित मानौ
पिय परिजन मन हाथ करि लीने हैं ॥२९॥

[२५] बृषभानु० मेरे कान्हजू की प्यारी (याज्ञिक०) । [२७] दरसत-परसत (याज्ञिक०) । परसत-दरसत (याज्ञिक०) । पासियै-पासी से (याज्ञिक०) । दुख-मृदु (अन्यत्र) ।

अथ मेहदी-संयुत पाणि-वर्णन--(सवैया)

राधिका रूपनिधान के पानिनि आनि मनौ छिति की छषि छाई ।
 दीह अदीहन सूतम थूल गही दृग गोरी की दौरि गुराई ।
 महुँदीमय बिंदु बने तिनमें मनमोहन के मन मोहनी लाई ।
 इंदुबधू अरविंद के मंदिर इंदिरा कौ मनौ देखन आई ॥३०॥

अथ ग्रीवा-वर्णन--(दोहा)

कंठ सुकंठ कपोत-दुति 'केसवदास' प्रमान ।
 पीठि कनक की पट्टिका धरनत सकल सुजान ॥३१॥
 (कवित्त)

सुर नर प्राकृत कवित्त रीति आरभटी
 सातुकी सु भारती की भारतीयौ भोरी की ।
 किधौ 'केसोदास' कलगानता सुजानता
 निसंकता सौ बचन-बिचित्रता किसोरी की ।
 बीना बेनु पिक सुर सोभा की त्रिरेख रुचि
 मन-क्रम-बचन कि पिय-चित चोरी की ।
 अंबुसाई की सौ मोहै अंबिकाऊ देखि देखि
 अंबुज नयन कंबु ग्रीवा गोरी गोरी की ॥३२॥

अथ ग्रीवा-भूषण-वर्णन--(कवित्त)

लेत मोल लाल को अमोल चितु गोल ग्रीव
 लोल नैन देखि देखि जात गवँ भागि कै ।
 स्वाम सेत पीत लाल कंबु-कंठ कंठमाल
 जाति नाहिं नेकहीं रही जु जोति जागि कै ।
 'केसोदास' आसपास बास कै रहे मनौ
 समेत राग रागिनीनि राग रंग रागि कै ।
 सूर के निवास तँ प्रकास सामजू कियौ
 अनेक भाँति की किधौ रहा मयूख लागि कै ॥३३॥

अथ पाँठि-वर्णन--(कवित्त)

केसव कुँवर देखि राधिका कुँवरि आजु,
 सोवत सुभाइ सेज जननी जनक की ।
 बेनी में बनाइ गुही काहू अली भाँति भली,
 कुंदन की कली तन तनक तनक की ।
 पीठि में तिनकी प्रतिमूरति बिसेखजति,
 पूरति नयन जुग सूरति बनक की ।

हरि-मन मथिबे कौँ मानौ मनमथ लिखे,
 रूप के रुचिर अंक पट्टिका कनक की ॥३४॥
 अथ चिबुक-वर्णन—(दाहा)
 कज्जल-मनिरस क्षीर छवि, रदनु राह को आनु ।
 फौक कामसर चिबुक को, स्यामल बिंदु बखानु ॥३५॥
 (कवित्त)

सोभन सिंगार रस की सी छौँट सोहै, फौक
 कामसर की सी कहौँ जुगतिन जोरि जोरि ।
 राह कैसो रदनु रह्या हँ चुभि चंद माँझ
 तर्मा को सहागु किधौँ डारौँ तिनु तोरि तोरि ।
 चतुर बिहारीजू को चितु सो चिहुँट रह्यो
 'केसादास' चितएँ तँ लेतु चितु चोरि चोरि ।
 तनक चिबुक तिल तेरे पर मेरो साख
 डारौँ बारि तरुनी तिलोतमा सी कोरि कोरि ॥३६॥
 अथ अधर-वर्णन—(दाहा)

अधर बिंब पल्लव वरनि प्रगट प्रबाल-प्रमान ।
 मुक्ता दाढ़िम कुंद मनि हीरा दसन समान ॥३७॥
 (कवित्त)

अरुन अधर अति सुबुधि सुधा के धर
 कोमल अमल दल दुति छीनि लोनी है ।
 'केसव' सुवास मंदहासजुन कौन काम
 बिद्रुम कठोर कटु बिब मति हीनी है ।
 सूक्ष्म सुरेख अति सूधी सूधी सबिसेष
 चतुर चतुरमुख रखा रचि कीनी है ।
 मानौ मैन गुरु हरिनाह के नयन गनि
 गनि गनि लाबे कहुँ बिद्या गनि दीनी है ॥३८॥
 अथ दसन-वर्णन—(कवित्त)

सूक्ष्म सुवेष सूधी सुमन बर्तासा किधौँ
 लक्ष्मन बतास हूँ का मूरति बिसेखियै ।
 राती है रतीक रुचि सेत सब किधौँ ससि
 मंडल मँ सुरनि की सभा अवरेशियै ।

[३४] नयन जुग-न क्यौँहूँ कही (याज्ञिक०) । बिसेखजति-बिलोकियतु (अन्यत्र)
 [३५] आनु-जान (सरदार०) । फौक-कोक (याज्ञिक०) । [३६] छीनि०-छवि
 छीनी (याज्ञिक०) । मति-बुधि (याज्ञिक०) । गनि-गन (बाल०) । गनि०-गनि-कनि (वही) ।
 सुवेष-सुरेख (बाल०) ।

किधौँ पिय-जुगति अखंडता के खंडिबे कौँ
 खंडन को 'कैसव' तरक-कल लेखियै ।
 दीनी दूनी कला बिधि तेरे मुखचंद कौँ,
 सु न्याइ ही अकासचंदु मंददुति देखियै ॥३६॥

अथ हास-वर्णन—(दोहा)

जोति जुन्हाई दामिनी-दीपति-सुधा-प्रकासु ।
 महिमा मोह मरीचिका हाँच माहनी सुहासु ॥४०॥

(कवित्त)

किधौँ मुखकमल में कमला की जोति, किधौँ
 चारु मुखचंद्र चंद्र-चंद्रिका चुराई है ।
 किधौँ मृगलोचन मरीचिका-मरीच किधौँ
 रूप की रुचिर हाँच हाँच सों दुराई है ।
 सौरभ की सोभा कि दसन घन-दामिनी कि
 'कैसव' चतुर चित हाँच की चतुराई है ।
 एरा गोरी भारा तेरी थारा थारा हाँसा मेरे
 माहन की माहना कि गरा की गुराई है ॥४१॥

अथ मुखवास-वर्णन—(दोहा)

मदन-जीविका सुख-जनान मनमाहनी-विलासु ।
 निपट कृपानी कपट का रति-सुपमा मुखवासु ॥४२॥

(कवित्त)

किधौँ भयो उदित अनंगजू को अंग उर
 मुरभित अंगरागु दाह देह दुख को ।
 किधौँ चितचातुरी चमेला चारु फूलि रही
 फैल्यो वागु 'कैसव' प्रकासकर सुख को ।
 किधौँ परिमलु प्रेम पूरनावतंसनि को
 किधौँ बरवानी-वनमाल के वपुष को ।
 किधौँ पाएँ प्रानपति हृदय-कमलु फूल्यो
 ताको गंधु बंधु कि सुगंधु सुख सुख को ॥४३॥

अथ मुखराग-वर्णन—(दोहा)

अरुनोदय राजीव में अंगराग अनुरागु ।
 रूपभूष रतिराजु सो राजत सुख मुखरागु ॥४४॥

[३६] सुनेष-सुरेख (याज्ञिक०) । लदन०-लक्ष नव तीस (अन्यत्र) । बिधि-विधु (याज्ञिक०) । [४३] वनमाल-बरमाल (बाल०) । [४४] भूष-रूप (याज्ञिक०) ।

(कवित्त)

‘केसोदास’ राग रागिनीनि को कि अंगरागु
 किधौं दुज सेवत हँ संभ्या भली भोर की ।
 अरुन रदन बहुरतन की खानि किधौं
 तिनकी भलक भलकति चहूँ ओर की ।
 किधौं भाषा भूषन की मनिनि को चाकचक्य
 चितएँ तें चोरें लेतु तेरे चितचोर की ।
 लागि रह्यो अनुरागु किधौं नाहनैननि को
 किधौं रुचि राची तेरें तरुनि तमोर की ॥४५॥

अथ रसना-वर्णन—(दोहा)

रसना कोमल बरनिचै, कोविद अमल अलोल ।
 ‘केसव’ देवो रसनि की, रसहे स्ववत मृदु बोल ॥४६॥

(कवित्त)

देखत हीं आधु पलु बाधिजति बाधा सब
 राधाजू की रसना सुरूप की सी रानी है ।
 आछी आछी बातनि को जननी सी जगमग
 रसनि का देवा किधौं पंच पहिचानी है ।
 ‘केसोदास’ सकल सुवासु कंसा सेज किधौं
 सकल सुजानता का सखा सुखदानी है ।
 किधौं मुखकंज मं सकात कोनी सेवें दुज
 सखिता का छावता का कविता निधाना है ॥४७॥

अथ दासी-वर्णन—(दोहा)

बानी बीना बेतु अलि-सुक-पिक किनर गानु ।
 सोभन सुभ बहु अर्थ मय ‘केसवदास’ बखानु ॥४८॥

(कवित्त)

काम की दुहाई कि सुहाई सखी माधुरी को
 इंदिरा के मंदिर मैं माँई उपजति है ।
 सरनि की सोदरी कि मोद की कुसोदरी कि
 चातुरी की मातु ऐसी बातनि सजति है ।
 राग-रजधानी अनुराग हो की ठकुरानी
 मोहे दधिदाना ‘केसो’ कोकिला लजति है ।

[४५] अरुन—अरुन दसन बहु वरन (याज्ञिक०); रदन—हदन (बाल०) । चितएँ—
 चितचालि (सहज०) । [४६] रसहिं—सरस रसिक (अन्यत्र) । [४७] जननी—रानी
 (याज्ञिक०) । [४८] सुभ बहु—सोभन (याज्ञिक०) ।

परी मेरी ब्रजरानी तेरी घर बानी किधौँ
बानी ही की बीन सुख सुख में बजति है ॥४६॥

अथ कपोल-वर्णन—(दोहा)

मुकुर मधूक कपोल सम 'केसवदास' प्रमान ।
तिल प्रसून तूनीर सम सुक नासिका बखान ॥५०॥

(कवित्त)

किधौँ हरि मनोरथ-रथ की सुपथ-भूमि
मीनरथ-मनहू की मति न सकति छवै ।
किधौँ रूप-भूपति के आसन रुचिर रुचि
मिली मृगलोचन-मरीचिका-मरीचि है ।
किधौँ श्रुति-कुण्डल-मकर-सर 'केसोदास'
चितएँ तैं चित चकचौँधि कै चलतु चवै ।
गोरे गोरे गाल अति अमल अमोल तेरे
ललित कपोल किधौँ मैं के मुकुर द्वै ॥५१॥

अथ नासिका-वर्णन—(कवित्त)

'केसव' सुगंध स्वास सिद्धनि की गुहा किधौँ
परम प्रसिद्ध सुभ सांभन सुवासिका ।
किधौँ मनसिज-मन-मीन की कुवैनी किधौँ
कुन्दन का सीव लोल लोचन बिलासिका ।
मुकुता ललित पुरो ललित मुकुंद जू की
किधौँ सुर सेंदजति कासी की प्रकासिका ।
त्रिभुवन रूप ताको तुंग तोयनिधि ताके
तोय के तरंग को तरनि तेरी नासिका ॥५२॥

अथ नकमोती-वर्णन—(दोहा)

'केसव' आनंद-कंद-फल सुधाबुंद मकरंदु ।
मन-पतंग को दीपु गनि नकमोती जगबंदु ॥५३॥

[४६] उपजति-भलकति (बाल०) । मंदिर में-मंदिर की (याज्ञिक०) । सुरनि०-
सुरन की सोदरी कि मोदक की सोदरी (याज्ञिक०) ; सुरनि की सुरी किधौँ मोदक की
सोदरी (हरि०, सरदार०) । राग-राजै (बाल०) । बानी ही की बीन-बीना ही की कनी
(याज्ञिक०) । [५०] मधूक-बंधूक (याज्ञिक०) । बखान-समान (याज्ञिक०) । [५१] मनहू-
रथहू (बाल०) । मति-गति (हरि०, सरदार०) । कै चलतु-है चलतु (याज्ञिक०) ।
[५२] सुगंध-सुवास (याज्ञिक०) । सुवासिका-समालिका (बाल०) । बिलासिका-
सुभासिका (बाल०) ।

(कवित्त)

‘केसोदास’ सकल सुवास को निवासु सखि
 किधौँ अरविद-मध्य बिंदु मकरंद को ।
 किधौँ चंद्रमंडल में सोहत असुरगुरु
 किधौँ गोद चंद ही की खेलै सुतु चंद को ।
 बाढ़ै रूप काम गुन दिन दूनों होतु किधौँ
 चंद फूल सूँघतु है आनंद के कंद को ।
 नाक-नाइकानि हूँ तैं नकमोती नीको नाक
 मानो मनु उरभि रह्यो है नंदनंद को ॥५४॥
 अथ लोचन-वर्णन-(दोहा)

लोचन चारु चकोर सम चातक कुसुद तुरंग ।
 अंजनजुत अलि कामसर खंजन मीन कुरंग ॥५५॥

(कवित्त)

पिय-मन-दूत किधौँ प्रेमरथ-सूत किधौँ
 भँवर अभूतबपु बासु के सुरंग हैं ।
 चितवत चहुँ ओर चित्तचोर स्याम
 मुखचंद के चकोर किधौँ ‘केसव’ कुरंग हैं ।
 बान-मद-भंजन के खेलिये के खंजन कि
 रंजन कुँवर कामदेव के तुरंग हैं ।
 सोभा-सरस्तीन मीन कुवलयरस-मीन
 नलिन नवीन किधौँ नैन बहुरंग हैं ॥५६॥
 अथ अंजन-वर्णन-(दोहा)

बिष सिंगाररस-तूल तम पूरे पातक लाज ।
 मनरंजन अंजन सबै वरनत हैं कबिराज ॥५७॥

(कवित्त)

किधौँ रसराज-रस-रसित असित किधौँ
 ललित बिसिपु बिपु बलित सभालिके ।
 किधौँ जगु जीतवे कौँ राजा रतिनाथ-हाथ
 बाहन बनाए ‘केसोदास’ चल चालि के ।
 अतथात पातक कि चित्त चोरिये कौँ तमु
 देखिये कौँ नंदलाल लालि करै कालि के ।

[५४] सोमित-राजति (याज्ञिक०) ; रूप०-रूप गुन काम जिहि दिन दूनों किधौँ (याज्ञिक०) । [५५] कामसर-मीनसम (याज्ञिक०) । मीन-कंज (याज्ञिक०) । [५६] बासु के-बासक (याज्ञिक०) । [५७] पूरे०-पूरे पातक लाइ (याज्ञिक०) ।

लागि रही लोकलाज खंजन-नयन किधौँ
पिय-मन-रंजन कि अंजन हैं बालि के ॥५८॥

अथ भ्रू-युग वर्णन—(दोहा)

भृकुटि कटिल पल्लव धनुष रेखा खड्ग अनूप ।
'केसवदास' सुपास सम बरनि श्रवन करि कूप ॥५९॥
(कवित्त)

किधौँ लागी पंकज के अंक पंकलीक किधौँ
'केसव' मयंक अंक अंकित सुभाइ को ।
जंत्रु है सुहाग को कि मंत्रु अनुराग को कि
मंत्रनि को बीजु अध उरध अभाइ को ।
आसनु सिगार को कि काम को सरासनु कि
सासनु लिख्यो हैं प्रेम पूरन प्रभाइ को ।
रोष रूप बेप बिप पिथूप बिसेप मय,
भामिनी की भौंह किधौँ भौनु हाइ भाइ को ॥६०॥
अथ कर्ण-वर्णन—(दोहा)

राग-रवन भाजन भवन, सोभत सुखद पवित्र ।
'केसव' लोचन लाज के मन के मंत्रिय मित्र ॥६१॥
(कवित्त)

रागनि के आकर विराग के विभागर
मंत्र के भँडार गूढ़ रूढ़ के रवन हैं ।
ज्ञान के विवर किधौँ तनक तनक तन
कनक-कचोरा हरि-रस अँचवन हैं ।
श्रुतिनि के कूप किधौँ मन के सुमित्र रूप
किधौँ 'केसोदास' रूप-भूप के भवन हैं ।
लाज के नयन किधौँ नयन-सचिव किधौँ
नयन - कटाक्ष-सर - लक्ष्यक श्रवन हैं ॥६२॥
अथ कर्ण-फल-वर्णन—(दोहा)

भनि मनिमय ताटँक जुगल, ललित लक्ष्य परिमान ।
तरुन तरनि चल चक्र से, 'केसव' कुसुम-समान ॥६३॥
(कवित्त)

पहिरें करनफल देखी है कुँवरि एक
सुनहु कुँवर कान्ह सोभा सुखदानियै ।

[५८] लालि करै—ललचात (याशिक०) । [६०] मंत्रनि—मंत्रिनि (याशिक०) ।
[६१] राग-राधा (बाल) । [६२] विराग०—विरागरी के विभाकर (याशिक०) । गूढ़ रूढ़—
गूढ़ गूढ़ (याशिक०) । [६३] यह दोहा याशिक० में नहीं है ।

तिनके तन की जोति जीते जोतिवंत अति
 'केसव' अनंत गति कैसँ उर आनियै ।
 मानौ बामदेव कामदेवजू के बैर-काम
 साथै सर-साधनानि लक्षि उनमानियै ।
 दुहूँ दिसि दूहूँ भुज भृकुटी कमान तानि
 नयन-कटाक्ष-बान बेधत न जानियै ॥६४॥

अथ खुटिला-वर्णन—(दोहा)

चलदल-दल सी तीतुरी, जनु पताक मन मीन ।
 सरस करस आकास के दासत दीप नवीन ॥६५॥

(कवित्त)

खुटिला खचित-मनि मोहन बनक बने
 कनक-कलस-रुचि रुचिर रवुन हैं ।
 तनक तनक तन तीतुरी तरल गति
 मानहुँ पताका पीत पीड़ित-पवन हैं ।
 कालिंदी के कूल कूल जात जलकेलि कहैं
 कालि ही सराहे मेरे काली के दवन हैं ।
 'केसोदास' सुंदर श्रवन ब्रजसुंदरी के
 मानौ मनभावते के भावते भवन हैं ॥६६॥

अथ लिलार-वर्णन—(दोहा)

कनक-पट्टिका सम कहौ, 'केसव' ललित लिलार ।
 सोभतु सोभा की सभा, अर्ध चंद्रमा चारु ॥६७॥

(कवित्त)

'केसव' असोकु किधौ सुंदर सिंगार-त्तोकु,
 कनक-केदारु किधौ आनंद के कंद को ।
 सोभा को सुभाव किधौ प्रभा को प्रभाव देखि
 मोहे हरिराव सखी नंदनु सु नंद को ।
 चमकत चारु रुचि गंगा को पुलिन किधौ
 चकचौं धै चितु मतिमदहू अमंद को ।
 सेज है सुहाग की कि भाग की सभा सुभाग
 भामिनी को भालु किधौ भागु चारु चंद को ॥६८॥

[६४] देखी है-देखी में (याज्ञिक०) । कामदेव०-जू के बैर काम कामदेव (याज्ञिक०) ।

[६५] चलदल०-चलदल-दल सी चातुरी धुजा किधौ निज मीन (याज्ञिक०) । [६६] तीतुरी-तीनु सी (याज्ञिक अ०) । मनि-मन (अन्यत्र) । कालिंदी सराहे-अतिही सराहे (याज्ञिक०) ।

अथ अलक-वर्णन—(दोहा)

अलक चिलक-सौं बरनिये स्यामल सुमिल सुपास ।
अति चंचल अति चारु अति सूक्ष्म 'केसवदास' ॥६६॥
डारि डोरि डग डीठि गनि तम-त्रिय जमुना जानु ।
छाया-माया काम की काया कुसल बखानु ॥७०॥

(कवित्त)

'केसव' कसा किधौ अनंग की सुरंगमुखी
लोचन-कुरंगनि की चाल हटकति है ।
पिय-मन पासिबे कौ पासि सी पसारी किधौ
उपमा कौ मेरी मति भुव भटकति है ।
तरनि-तनूजा खेलै तारानाथ-साथ किधौ
हाथ परी तम की तरुनि मटकति है ।
सुनि लोललोचनी नवल निधि नेहनि की
अलका कि अलिक अलक लटकति है ॥७१॥

अथ मुखमंडल-वर्णन—(दोहा)

अमल मुकुर सम मानियै, कोमल कमल समान ।
अकलंकितु मुखु बरनिये, चारु चंद परिमान ॥७२॥

(कवित्त)

प्रहनि में कीन्यो गेहु सुरनि दै देख्यो देहु
सिव सौं कियो सनेहु जाग्यो जुग चाख्यो है ।
तपिन में तप्यो तपु जलधि में जप्यो जपु
'केसोदास' बपु-मास मासप्रति गाख्यो है ।
उदगन-ईसु द्विज-ईसु औषधीसु भयो
जद्यपि जगत-ईस सुधा सौं सुधाख्यो है ।
सुनि नंदनद-प्यारी तेरे मुखचंद सम
चंद पै न भयो कोटि छंद करि हाख्यो है ॥७३॥

अथ केशपाश वर्णन—(दोहा)

भौरै चौरै सैवाल तमु जमुना को जलु मेहु ।
मोरपक्ष सम बरनिये 'केसव' सहित सनेहु ॥७४॥

[६६] सुमिल—अमल सुवाम (याज्ञिक०) । [७०] गनि—गन तमरिपु (याज्ञिक०) ।
[७१] मुखी—लोल (याज्ञिक०); भूमि (रत्ना०) । भुव—भव (रत्ना०) । मटकति—पटकति (याज्ञिक०) । निधि नेहनि—नेहनिधि नौकी (याज्ञिक०) । [७२] चारु—चोल (याज्ञिक०) ।
[७३] सुरनि—देवनि (रत्ना०) । चंद पै—चंदहु (याज्ञिक०) । [७४] सहित—केस (याज्ञिक०) ।

(कवित्त)

कोमल अमल चल चीकने चिलक चारु
चितए तँ चितु। चक। चौंघिजत 'केसोदास' ।
सुनहु छबीली राधे छूटे तँ छुवँ छवानि
कारे सटकारे हँ सुभाव ही सदा सुवास ।
सुनि कै प्रकास उपहास निसिवासर कँ
कीनो है सुकेसी बसबासु जाइ कै अकास ।
जद्यपि अनेक चंद साथ मोरपक्ष तऊ
जीत्यो एक चंदमुख-रुख तेरे केसपास ॥७५॥

अथ शिरशोभा-वर्णन—(कवित्त)

जस-अनुराग-रेख सुंदर सिंगार में कि
सूर सोम करत हँ तेज तम-बल में ।
किधौँ गिरा गंगाजू के पूरनि की पूरी जोति
निकसि कै चाहँ मिल्यो जमुना के जल में ।
स्यामल सुमिल सुभ पाटिन में चारु माँग
अरुन जलज-सोभ सोभै पल पल में ।
मनौ 'केसोदास' रूरे रूपे जातरूपहु की
कसी 'केसोराइ' लीक कसोटी अमल में ॥७६॥

अथ वेणी-वर्णन—(दोहा)

ऐसी बेनी बरनिचै 'केसवदास' बनाइ ।
असि निसि जमुनाधार अहि अलि-अवली सुखु पाइ ॥७७॥

(कवित्त)

चंदनु चढ़ाइ चारु कुंकुम लगाइ पीछें
किधौँ निसिनाथ निसि नेह सौँ दुराई है ।
किधौँ बंदी बंदन छिरकि क्षीर साँपनि-समाप
सुधानिधि सोधि सुधा-सोध आई है ।
मेलि मालती की माल लाल डोरी गोरी गुही
बेनी पिकबैनी की त्रिवेनी सौ बनाई है ।
'केसोदास' हासरस मिलि अनुरागरस
किधौँ रसराजरस-धारा धरा धाई है ॥७८॥

अथ बँदा-वर्णन—(दोहा)

बँदा बरनत सकल कवि 'केसव' ललित लिलार ।
भाग सुहाग नरेस सम रवि ससि उदित उदार ॥७९॥

[७५] चिकुर-चिलक (याज्ञिक०) । [७७-७८] ये छंद याज्ञिक० में नहीं हैं ।

[७६] बँदा-बँदी (याज्ञिक०) । सकल कवि-बुध सबै (याज्ञिक०) ।

माँग-फूल सिर-फूल सुभ बेनी-फूल बनाउ ।
 रूप-भूष जग-जोति जनु पूरन प्रगट प्रभाउ ॥८०॥
 मोतिनि की लरि सोस पर सोमति हँ इहिँ भाँति ।
 चारु चंद्रिका की चमू घन मराल की पाँति ॥८१॥

अथ शिरोभूषण-वर्णन—(कवित्त)

बेनी पिकबैनी की त्रिवेनी सी बनाइ गुही
 कंचन कुसुम रुचि लोचननि पोहियै ।
 'केसोदास' फैलि रही फूलि सीसफूल-दुति
 फूल्यो तनु मनु मेरो न्यायै हरि मोहियै ।
 बदा जगमगतु जराय-जन्म्यो ताकी जोति
 जीत्यो है अजित उपमान आन टोहियै ।
 मानौ इन पाँवड़ेनि पाँइ धरि आए दोऊ
 सोहत सुहागु सिरभागु भाल सोहियै ॥८२॥
 अथ अंगवास-वर्णन—(दोहा)

सहज सुवास सरीर की आकर्षण-विधि जानु ।
 अति अदृष्टगति दूतिका इष्टदेवता मानु ॥८३॥
 (कवित्त)

कमल बदन कर नयन चरन, कुच
 कपुर कुरंगमद दगनि बिलासु है ।
 भृकुटी कुटिल कच मेचक सुगंधमय
 कुंद-कलिका सं दंत, चंदन सो हासु है ।
 कुंकुम सरीर कुमकुमानि काँ स्वेद-नीर
 अंबर काँ 'केसादास' अंबर-बिलासु है ।
 मन-करषण विधि किधौ इष्ट देवता
 अदृष्टगति दूतिका कि सहज सुवासु है ॥८४॥

अथ वसन-वर्णन—(कवित्त)

किधौ यह 'केसव' सिगार की है सिद्धि किधौ
 भाग की सहेली कि सुहाग को सहाउ है ।
 जोवन को जाया किधौ माया मनु मांहिबे की
 काया किधौ लाज की कि लाज ही की आउ है ।
 सारी जरकसी जगमगति सरीर किधौ
 भूपन जरावही की जोति को जराउ है ।

[८०] सुख-सम (याज्ञिक) । पूरन-सूरज (याज्ञिक०) । [८१] यह छंद याज्ञिक० में नहीं है । [८२] न्यायै हरि-न्याइ मन (याज्ञिक०) । [८३] इष्टदेवता मानु-इष्टदेवता जानु (बाल०) । [८४] दगनि-कटाव (अन्यत्र) । चंदन-चंद्रिका (याज्ञिक०) । [८५] भाग-संग (रत्ना०) । सहाउ-सुहाउ (वही) ।

लाख लाख भाँतिनि के प्रीतम के अभिलाष
पहिरे बनाइ किधौँ सोभा को सुभाउ है ॥८५॥

अथ समस्त भूषण-वर्णन—(कवित्त)

बिछिया अनौट बाँकँ घूघरी जराइ जरी
जेहरी छबीली लुद्रघटिका की जालिका ।
मुँदरी उदार पौँची कंकन बलय नीके चुरी
कंठ कंठमाल हार पहिरे गुपालिका ।
बेनीफूल सीसफूल कर्नफूल माँगफूल
खुटिला तिलक नकमोती बनी बालिका ।
'केसोदास' नीलवास ज्योति जगमगि रही
देहु घर देखियति मानौ दीपमालिका ॥८६॥
अथ अंगदीप्ति-वर्णन—(दोहा)

कंचन केसर केतकी चपला चंपक चारु ।
कमलकोस गोरोचना त्रय-तन दुति-अवतारु ॥८७॥
(सधैया)

राधा के अंग गुराई-सी और गुराई बिरंचि बनावन लीनी ।
कै मनु बुद्धि विवेक सौँ एक अनेक विचारनि में दृग दीनी ।
बानिक तो सी बनी न बनाउत 'केसव' कैसे हूँ है गई होनी ।
है तब केसर केतकी चंपक कुंदन के तन दामिनी कीनी ॥८८॥

अथ गति-वर्णन—(दोहा)

राजहंस कलहंस सम अति गति मंदबिलास ।
महामत्त गजराज सी बरनत 'केसवदास' ॥८९॥
(कवित्त)

किधौँ गजराजनि को राजति है अंकुस सी
चरन-बिलासनि को आरस सजति है ।
किधौँ राजहंसनि की संकासक 'केसोदास'
किधौँ कलहंसनि की लाज सी लगति है ।
ललित अनंग-तरु-बलित सिंगार-बेलि
फूलि फूलि हाव-भाव-फलनि फलति है ।
किधौँ नंदलाल लोल लोचन की शृंगला कि
तेरी लोललोचनी अलोल अति गति है ॥९०॥

प्रीतम-पिय हिय (याज्ञिक०) । [८६] बलय-नवैया (अन्यत्र) । [८७] केसर-केतक (बाल०); कुंदन (अन्यत्र) । [८८] गुराई-गुराईये देखि (याज्ञिक०) । केसर-केतक (बाल०) । [९०] अंकुस सी-अंकुस सिर (याज्ञिक०) । चरन-बिलासनि को-किधौँ पद आरस को (याज्ञिक०) ।

अथ संपूर्ण मूर्ति-वर्णन—(दोहा)

चंद्रकला उड्डु दामिनी कनक-सलाका देखि ।
दीपसिखा ओषधिलता माला बाला लेखि ॥६१॥

(सवैया)

तारा सी कान्ह तराइन-संग अचंद्रकला निसि चंद्रकला सी ।
दामिनी सी घनस्याम-समोप लसै उर-स्याम तमाल लता सी ।
आधि की ओषधि काहे को 'केसव' काम के धाम में दीपसिखा सो ।
सोने की साँक सी दूरि भएँ तँ मिलेँ उर में उरहार-प्रभा सो ॥६२॥

(छप्पय)

महि मोहन-मोहिनी-रूप महिमा रुचि रूरी ।
मदन-मंत्र की सिद्धि प्रेम की पद्धति पूरी ।
जीवन-मूरि बिचित्र किधौँ जग जीव मित्र को ।
किधौँ चित्त की वृत्ति मृत्ति अभिलाष-चित्र की ।
कहि 'केसव' परमानंद की आनंद-साक्त किधौँ धरनि ।
आधार-रूप भव धरन को राधा ब्रजबाधा-हरनि ॥६३॥

(दोहा)

इहि बिधि बरनहु सकल कवि अचिरल छवि अंग अंग ।
कही जथामति जीव जड़ 'केसव' पाइ प्रसंग ॥६४॥
इति नखशिख

अथ यमकालंकार—(दोहा)

अव्ययेत सव्ययेत पुनि, यमक बरनि दुहुँ देत ।
अव्ययेत बिनु अंतरहि, अंतर सो सव्ययेत ॥६५॥

अव्ययेत आदिपद की यमक—(दोहा)

सजनी सज नीरद निरखि हरखि नचत इत मोर ।
पीठ पीठ चातक रटत चितवै हरि की ओर ॥६६॥

[६२] अचंद्रकला—यो चंद्रकलानि सी (याशिक०) । उर में—उतै हार बिहार (याशिक०) । उर स्याम—तन स्याम (याशिक०) । याशिक० में चरणों में १-४-३-२ का क्रम है, अन्यत्र १-२-४-३ भी है ।

[६३] महि—मोहिनि मोहन रूप भूप उपमा रुचि रूरी (याशिक०) । मूरि-मित्र (याशिक०) । इसके अनंतर बाल० में २८ छंदों का 'शिखनख' भी है ।

[६५] बाल० में यह नहीं है । दोन० में ये दो दोहे आदि में और हैं—
पद एकै नाना अरथ जिनमें जेतो बित्तु । तामें ताको कादिये यमक माहि दै बित्तु ॥
आदिपदादिक यमक सब लिखे ललित चित लाय । सुनहु सुबुद्धि उदाहरण 'केसव' कहत बनाय ॥
दुहुँ०—दुइ० (दीन०); करि हेत (सहज०) ।

दूसरे चरण की यमक—(दोहा)

मान करत सखि कौन सौँ, हरि तू हरि तू आहि ।
मान भेद को मूल है, ताहि देखि चित चाहि ॥६७॥

तीसरे चरण की यमक—(दोहा)

सोभति सोभा अंगननि, हौंसत हय हयसार ।
बारन बारन गुंजरत, दीने बिनु संसार ॥६८॥

चौथे चरण की यमक—(दोहा)

राधा 'केसव' कुवैर की, बाधा हरहु प्रबीन ।
नैक सुनावहु करि कृपा, सोभन बीन प्रबीन ॥६९॥

अथ आदि-अंत यमक—(दोहा)

हरि के हरि के बल मनहिँ, सुनि वृषभानुकुमारि ।
गावहु कोमल गीत दै, सुखकरता करतारि ॥१००॥

अथ त्रिपाद यमक—(कवित्त)

सारस सारस नैनि सुनि चंद्र चंद्र-मुख देखि ।
सुनि रमनी रमनीय तर तिनत हरिमुख लेखि ॥१०१॥

अथ द्विपदादि यमक—(दोहा)

अलिनी अलि नीरज बसेँ, प्रति तरुवरनि पतंग ।
त्यौँ मनमथ-मन-मथन हरि, बसेँ राधिका संग ॥१०२॥

अथ पादानुपादादि यमक—(दोहा)

आप मनावत प्रानप्रिय, मानिनि मानि निहार ।
परम सुजान सुजान हरि, अपनैँ चित्त बिचार ॥१०३॥

द्विपादांत यमक—(दोहा)

जिन हरि सब को मन हख्यो, बाम बाम दृग चाहि ।
मनसा बाचा कर्मना, हरि-बनिता बनि ताहि ॥१०४॥

उत्तरार्ध यमक—(दोहा)

आजु छबीली छवि बनी, छोड़ि छलनि के संग ।
मिलौ तरुनि तरु के निकर, 'केसव' के सब अंग ॥१०५॥

अथ त्रिपाद यमक—(दोहा)

देखि प्रवाल प्रवाल हरि, मन मनमथ रस भीनि ।
खेलन वह सुंदरि गई, गिरि सुंदरी दरीनि ॥१०६॥

[१०२] तरुप्रति-युगल विहंग (दीन०) । [१०४] सब-जग (सरदार०, दीन०) !

[१०५] मिलौ०-तरुनि तरुनि के तर मिलै (वही); मिलौ तरुन तरु करुन कर (अन्यत्र) ।

परमानन्द परमानन्दहि देखत बन-उपकंठ ।
 यह अबला अब लागिहै मन हरि हरि के कंठ ॥१०७॥
 जूझि गयो संग्राम मँ, सूरज सूरज देखि ।
 दिव रमनी रमनीय तजि, मूरति रति सम लेखि ॥१०८॥

अथ चतुष्पादादि यमक-(दोहा)

नहीं उरबसी उर बसी, मदन मदन बस भक्त ।
 सुर तरवर तरवर तजै, नन्द नन्द आसक्त ॥१०९॥
 सव्ययेत-(दोहा)

अव्ययेत जमकनि सदा बरनहु इहि विधि जानि ।
 करौ व्ययेत-विकल्पना जमकनि की सुखदानि ॥११०॥

अथ द्विपदादि यमक-(दोहा)

माधव तो धव राधिका, पावहु कान्ह कुमार ।
 पूजत माधव नेम सों, गिरिजा को भरतार ॥१११॥

अथ आदि-अंत यमक-(दोहा)

सीय स्वयंवर माँझ जिन जुवतिनि देखे राम ।
 ता दिन तँ तिन सब साखनि, तजे स्वयं वर-धाम ॥११२॥

आद्यंत निरंतर यमक-(दोहा)

पाप नसत यों कहत ही, रामचंद्र अवनीप ।
 नीप प्रफुल्लित देखि त्यों, बिरही बिरह समीप ॥११३॥

आद्यंत सांतर यमक-(दोहा)

जैसें लुबै न चंद्रमा, कमलाकर सबिलास ।
 तैसें ही सब साधु पर-कमला करनि उदास ॥११४॥
 अंग देस में लक्ष्मियै लक्ष्मी लक्ष्म सख ।
 अंगन में जैसे लसै, अंगनानि के रूप ॥११५॥
 दान देत ज्यों सोभिजै, दानरतन के हाथ ।
 दानसहित ज्यों राजहीं, मत्त गजनि के माथ ॥११६॥
 परम तरुनि यों सोभिजै, परम ईस अरधंग ।
 कल्पलता जैसी लसै, कल्पवृक्ष के संग ॥११७॥

चतुष्पादादि यमक-(दोहा)

नर-लोकहि राखत सदा, नरपति श्री रघुनाथ ।
 नरकनिवारन नाम जग, नर बानर को नाथ ॥११८॥

[१०७] मनु०-मनु मनहरि (याज्ञिक अ०); मनुहरि हरि (दीन०) । [१०९] बस-
 हित (बाल०) । [११०] यह दीन० में नहीं है । [११२] जाम-काम (याज्ञिक०) ।
 [११५] लक्ष्मियै-देखिये (दीन०) ।

सुखकर दुखकर भेद है, सुखकर बरने जानि ।
जमक सुनौ कबिराज सष, दुखकर कहौ बखानि ॥११६॥
मान-सरोवर आपने मानस मा नस चाहि ।
मानस-हरि के मीन को मानस बरनहि ताहि ॥१२०॥
बरनी बरनी जाइ क्यों, सुनि बरनी के ईस ।
रामदेव नरदेवमनि, देवदेव जगदीस ॥१२१॥
राजराज जगदीस दुज-राज राज मनमान ।
विष विषधर अरु सुरसहित, विष विषम न उर आन ॥१२२॥
(छंद)

अमान मान नाचहीं । अमान मान राचहीं ।
समान मान पावहीं । बिमान मान धावहीं ॥१२३॥
(दोहा)

कुमति हारि संहारि हठ, हितहारिनी प्रहारि ।
कहा रिसाति बिहारि बन, हरि मनुहारि निहारि ॥१२४॥
(छंद)

जौ तू सखि न कहूँ कछु चालहि । तौ हैं कहौँ इक बात रसालहि ।
तो कहूँ देखै बनी मनिमालहि । मो कहूँ तू मिलवै नँदलालहि ॥१२५॥
जैसेँ रमै जयश्री करवालहि । ज्यों नलिनी जलजात सनालहि ।
ज्यों बरखा हरखै बिनु कालहि । त्यों दग देख्योई चाहै गुपालहि ॥१२६॥
(सवैया)

स्यंदनु हाँकत होत दुखी दिन दूर करै सबके दुख-दंदनु ।
छंदनु जानी नहीं जिनकी गति नामु कहावत है नंदनंदनु ।
फंदनु पंढ के पूतनि कीरति काटि करै महि मोह-निकंदनु ।
चंदनु चेरी को अंग चढ़ावत देव अदेव कहै जगबंदनु ॥१२७॥
(चौपही)

सुर तरवर मै रंभा बनी । सुरत रव रमै रंभा बनी ।
सुर-तरंगिनी कर किनरी । सुरत रंगिनीकर किनरी ॥१२८॥
(दोहा)

श्रीकँठ-उर बासुकि लसत, सर्वमंगलामार ।
श्री कँठ उर बासुकि लसत, सर्वमंगला मार ॥१२९॥
(सवैया)

दूषन दूषन के जस भूषन भूषन अंगनि 'केसव' सोहै ।
ज्ञान सँपूरन पूरन के परिपूरन भावनि पूरन जोहै ।

[११८] बानर-बाहन (अन्यत्र) । नाथ-नाथ (दीन०) । [१२१] बरनी-करनी (बाल०) । [१२२] जगदीस-सँग ईस (दीन०) । मन०-सनमान (वही) । विषम न-विषधर (बाल०) । [१२३] अमान-प्रमान (दीन०) । [१२६] नलिनी-अलिनी (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०) । [१२७] पूतनि-पूरनि (याज्ञिक०) ।

श्री परमानन्द की परमा-पर मानन्द की परमा कहि को है ।
पातुर सी तुरसी मति को, अवदातुरसी तुरसीपति मोहै ॥१३०॥

(दोहा)

इहि बिधि औरहु जानिजहु, दुखकर जमक अनेक ।
कहिहौ चित्र कवित्त अब, सुनिजहु सहित विवेक ॥१३१॥

इति श्रीमद्विषयभूषणभूषितायां कविप्रियायां

विशिष्टालंकारवर्णने उपमालंकारवर्णनं

नाम पंचदशः प्रभावः ॥१५॥

१६

अथ चित्र-कवित्त-लक्षण-(दोहा)

‘केसव’ चित्र-समुद्र में बड़त परम बिचित्र ।
ताके बूँदक के कनै बरनत हौं सुनि मित्र ॥१॥
अध उरध बिन विदजुत जति रसहीन अपार ।
बधिर अंध गन अगन के गनिजत अगन बिचार ॥२॥
‘केसव’ चित्र-कवित्त में इनके दोष न देखि ।
अक्षर मोटे पातरे ब व, ज य एकै लेखि ॥३॥
अति रति मति गति एक करि बहु विवेकजुत चित्त ।
व्यों न होइ क्रमभंग त्यों बरनहु चित्र-कवित्त ॥४॥

अथ निरोपक-लक्षण-(दोहा)

पढ़त न लागै अधर सों अधर बरन त्यों मंडि ।
बरनहु, एक व बरन जई एक प बर्गाहि छंडि ॥५॥

(कवित्त)

लोक लोक लीकी, लाज लीलत से नंदलाल,
लोचन ललित लाल लीला के निकेत हैं ।
सौहृदि को सोच न सकोच लोकालोकनि को,
देत सुख सखी, ताकौ दनो दुख देत हैं ।

[१३०] पातुर०—मातुल सी तुलसीपति को अवदातुलसी तुलसी (बाल०) ।

[१] समुद्र-कवित्त (बाल०) । [३] कवित्त-समुद्र (दीन०) । [५] बरनहु०—और
बरण बरणो सबै उ पवर्गाहि सब छंडि (दीन०) । व बरन-उ बरन (अन्यत्र) । जहँ०—और एक
पवर्गाहि (यासिक०) ।

‘केसोदास’ कान्हर कनेर ही के कोरक से,
 अंग रंगे राते रंग, अंत अति सेत हूँ ।
 देखि देखि हरि की हरनता हरिननैनि,
 देखौ कहा देखत ही हियो हरै लेत हूँ ॥६॥

अथ मात्रारहित-लक्षण—(दोहा)

एकै स्वर जहँ बरनियै अद्भुत रूप अ बर्न ।
 कहियो मात्रारहित यह मन्त्र चित्र-आभर्न ॥७॥
 (कवित्त)

जग जगमगत भगत-जन-रस-वस,
 भव-भर-सह कर करत अचल चर ।
 कनक-वसन तन असन अनल-बड़,
 बटदल-वसन सजलथल थल कर ।
 अजर अमर अज बरद चरन धर,
 परम धरम गन बरन सरन-पर ।
 अभल कमल वर वदन सदन जस,
 हरन - मदन - मद मदन-कदन-हर ॥८॥

अथ एकादि शब्द-वर्णन—(दोहा)

एक आदि दै बरन बहु बरनहु सब्द बनाइ ।
 अपने अपने बुद्धिबल समुक्ति सकल कबिराइ ॥९॥

अथ एकाक्षर शब्द-वर्णन—(दोहा)

गो गो गं गो गां अ आ श्री धी ह्री भी भा नु ।
 भू वि ख ख्वा खौ हि हा नो ना सं भं मा नु ॥१०॥

अथ द्वि-अक्षर शब्द-वर्णन—(दोहा)

रमा उमा बाना सदा हारि हर विधि संग बाम ।
 लामा दया सांता सर्ता कीनी रामा राम ॥११॥

अथ त्रि-अक्षर शब्द-वर्णन—(दोहा)

श्रीधर भूधर केसिहा, ‘केसव’ जगत प्रमान ।
 माधव राधव कंसहा, पूरन पुरुष पुरान ॥१२॥

अथ चतुरक्षर शब्द-वर्णन—(कवित्त)

सीतानाथ सेतुनाथ सत्यनाथ रघुनाथ,
 जगनाथ ब्रजनाथ दीनानाथ देवगति ।

[६] लोका०—लोकहू को (बाल०); काहू लोकहू को (सहज०) । अंग०—वाद्य रंग राते अंग अंतस मैं (दीन०) । कहा—नहीं (बाल०) । हरै—हरि (दीन०) । [८] भर-भय (दीन०); हर (बाल०) । सह-हर (दीन०) । वसन-सनन (बाल०); मयन (अन्यत्र) । बरन-चरन (बाल०); रचन (अन्यत्र) । [९] समुक्ति०—समझ सब (दीन०) । श्री-धी (बाल०) । नु-न (दीन०) । वि-मि (अन्यत्र०) । ख-स (बाल०) । [१२] पुरुष-प्रगट (बाल०) ।

श्री परमानन्द की परमा-पर मानन्द की परमा कहि को है।
पातुर सी तुरसी मति को, अवदातुरसी तुरसीपति मोहै ॥१३०॥

(दोहा)

इहि बिधि औरहु जानिजहु, दुखकर जमक अनेक ।
कहिहौँ चित्र कवित्त अब, सुनिजहु सहित बिवेक ॥१३१॥

इति श्रीमद्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां

विशिष्टालंकारवर्णने उपमालंकारवर्णनं

नाम पंचदशः प्रभावः ॥१५॥

१६

अथ चित्र-कवित्त-लक्षण-(दोहा)

‘केसव’ चित्र-समुद्र में बड़त परम बिचित्र ।
ताके बूँदक के कनै बरनत हौँ सुनि मित्र ॥१॥
अध उरध बिन बिदजुत, जति रसहीन अपार ।
बधिर अंध गन अगन के गनिजत अगन बिचार ॥२॥
‘केसव’ चित्र-कवित्त मैं इनके दोष न देखि ।
अक्षर मोटे पातरे ब व, ज य एकै लेखि ॥३॥
अति रति मति गति एक करि वहु बिवेकजुत चित्त ।
ज्यों न होइ क्रमभंग त्यों बरनहु चित्र-कवित्त ॥४॥

अथ निगोष्ठक-लक्षण-(दोहा)

पढ़त न लागै अधर सौँ अधर बरन त्यों मंडि ।
बरनहु, एक व बरन जई एक प बर्गहि छंडि ॥५॥

(कवित्त)

लोक लोक लीकी, लाज लीलत से नंदलाल,
लोचन ललित लोल लीला के निकेत हैं ।
सौँहनि को सोच न सकोच लोकालोकनि को,
देत सुख सखी, ताकोँ दनो दुख देत हैं ।

[१३०] पातुर०—मातुल सी तुलसीपति कोँ अवदातुलसी तुलसी (बाल०) ।
[१] समुद्र—कवित्त (बाल०) । [३] कवित्त—समुद्र (दीन०) । [५] बरनहु०—और
बरण बरणो सबै उ पवर्गहि सब छंडि (दीन०) । व बरन—उ बरन (अन्यत्र) । जहँ०—और एक
पवर्गहि (यासिक०) ।

‘केसोदास’ कान्हर कनेर ही के कोरक से,
 अंग रंगे राते रंग, अंत अति सेत हैं ।
 देखि देखि हरि की हरनता हरिननैन,
 देखो कहा देखत ही हियो हरैं लेत हैं ॥६॥

अथ मात्रारहित-लक्षण-(दोहा)

एकै स्वर जहँ बरनियै अद्भुत रूप अ बर्न ।
 कहियो मात्रारहित यह मन्त्र चित्र-आभर्न ॥७॥
 (कवित्त)

जग जगमगत भगत-जन-रस-वस,
 भव-भर-सह कर करत अचल चर ।
 कनक-वसन तन असन अनल-वड़,
 बटदल-वसन सजलथल थल कर !
 अजर अमर अज बरद चरन धर,
 परम धरम गन बरन सरन-पर ।
 अमल कमल बर वदन सदन जस,
 हरन - मदन - मद मदन-कदन-हर ॥८॥

अथ एकादि शब्द-वर्णन-(दोहा)

एक आदि दै बरन बहु बरनहु सबद बनाइ ।
 अपने अपने बुद्धिबल समुझि सकल कबिराइ ॥९॥

अथ एकाक्षर शब्द-वर्णन-(दोहा)

गो गो गं गो गा अ आ आं आं हो भी भा नु !
 भू वि ख ख्वा खौ हि हा नो ना सं भं मा नु ॥१०॥

अथ द्वि-अक्षर शब्द-वर्णन-(दोहा)

रमा उमा बाना सदा हरि हर विधि संग बाम ।
 चमा दया सीता सती कानी रामा राम ॥११॥

अथ त्रि-अक्षर शब्द-वर्णन-(दोहा)

श्रीधर भूधर केसिहा, ‘केसव’ जगत प्रमान ।
 माधव राघव कंसहा, पूरन पुरुष पुरान ॥१२॥

अथ चतुरक्षर शब्द-वर्णन-(कवित्त)

सीतानाथ सेतुनाथ सत्यनाथ रघुनाथ,
 जगनाथ ब्रजनाथ दीनानाथ देवगति ।

[६] लोका०-लोकहू को (बाल०); काहू लोकहू को (सहज०) । अंग०-वाद्य रंग राते अंग अंतस मैं (दीन०) । कहा-नहीं (बाल०) । हरैं-हरि (दीन०) । [८] भर-भय (दीन०); हर (बाल०) । सह-हर (दीन०) । वसन-सन (बाल०); मयन (अन्यत्र) । बरन-चरन (बाल०); रचन (अन्यत्र) । [९] समुझि-समझैं सब (दीन०) । श्री-धी (बाल०) । नु-न (दीन०) । वि-मि (अन्यत्र०) । ख-स (बाल०) । [१२] पुरुष-प्रगट (बाल०) ।

देवदेव जज्ञदेव बिस्वदेव न्यासदेव,
 बासुदेव बसुदेव दिव्यदेव दीनरति ।
 रनबीर रघुबीर जदुबीर ब्रजबीर,
 बलबीर बीरबीर रामचंद्र चारुमति ।
 रामपति रामापति रामपति राधापति
 रसपति रसापति रासपति राजपति ॥१३॥
 इत्यादि जानिबो ।

अथ षड्विंशाक्षरादि एकाक्षरांत-वर्णन-(दोहा)

आखर षट्विसति सबै भाषा बरनि बनाउ ।
 एक एक घटि एक लागि 'केसवदास' सुनाउ ॥१४॥

अथ षड्विंशाक्षर-वर्णन-(दोहा)

चोरो माखन दूध घी हूँढत हठि गोपाल ।
 डरौ न जल थल भटकि फिरि भगरत छवि सौँ लाल ॥१५॥

पंचविंशाक्षर-(दोहा)

चेटी चंदन हाथ कै रीमि चढ़ायो गात ।
 बिहवल छितिधर डिभ सिसु फले बपुष न मात ॥१६॥

चतुर्विंशाक्षर-(दोहा)

अघ बक सकट प्रलंब हति मारयो गज चारूर ।
 धनुष भंजि दिद दौरि पुनि कंस मथे मदमूर ॥१७॥

त्रयोविंशत्यक्षर-(दोहा)

सूधी यशुमात नंद फुनि भोरे गोकुलनाथ ।
 माखन-चोरी भूठ हठ पढ़यो कवन के साथ ॥१८॥

द्वाविंशत्यक्षर-(दोहा)

हरि दिदबल गोविंद बिभु मायक सीतानाथ ।
 लोकप विठ्ठल संखधर गरुडध्वज रघुनाथ ॥१९॥

एकाविंशत्यक्षर-(दोहा)

जैसैं तुम सब जग रचे दिये काल के हाथ ।
 तैसैं अघ दुख काटि बलि करमफंद छिड़ नाथ ॥२०॥

विंशत्यक्षर-(दोहा)

थके जगत समझाइ सब निपट पुरान पुकारि ।
 मेरे चित वे चुभि रहे मधुमद-माखन-हारि ॥२१॥

[१३] जग.-जदुनाथ (बाल०) । जज्ञ०-जज्ञदेव (दीन०) । राम०-राजपति (दीन०) ।
 राज०-राजपति (वही) । [१५] घी-घ्यौ (बाल०); घिव (अन्यत्र) । डरौ-दुरहु (वही) ।
 [१६] चेटी-चेरी (बाल०) । [१७] मथे-हते (बाल०) । [२१] मधुमद-मधुमः
 (याज्ञिक अ); मधुमदमर्दन हारि (याज्ञिक) ।

एकोनविंशत्यक्षर—(दोहा)

को जानै को कहि गयो राधा सौँ यह बात ।
करी जु माखन चोरि बलि उठत बड़े परमात ॥२२॥

अष्टादशाक्षर—(दोहा)

जतन जमायो नेह-तरु फूलत नंदकुमार ।
खंडत कसकत जी न अब कपट कठोर कुठार ॥२३॥

सप्तदशाक्षर—(दोहा)

बालापन गोरस हरे बड़े भए जिमि चित्त ।
त्यों 'केसो' हरि देह हू जौ न मिलौ अब मित्त ॥२४॥

षोडशाक्षर—(दोहा)

तुम घर घर मँडरात अति बलिभुक्त से नँदलाल ।
जाकी मति तुमहीं लगी कहा करै वह बाल ॥२५॥

पंचदशाक्षर—(दोहा)

जौ काहू तैं वह सुनै दूकत डोलत साँझ ।
तौ सिगरो ब्रज बूझिहै बाके आँसुनि माँझ ॥२६॥

चतुर्दशाक्षर—(दोहा)

ढूँका ढाँकी दिन करो टकाटका अरु रैन ।
यामहि 'केसव' कौन रसु घैरु करै पिकवैन ॥२७॥

त्रयोदशाक्षर—(दोहा)

कह्यो और को मैं सुन्यो मन दीनो हरि हाथ ।
ता दिन तैं बन बन फिरै को जानै किहि साथ ॥२८॥

द्वादशाक्षर—(दोहा)

काहू बैरिनि कैं कहें जी जुरि गयो सनेहु ।
दोरौ तौ दूटै नहीं कहा करौ अब लेहु ॥२९॥

एकादशाक्षर—(दोहा)

वे सब सोहैं काल्हि की बिसरी 'केसव' राज ।
मुख देखौ लै मुकुर कर करी कलेऊ लाज ॥३०॥

[२२] बलि—छल (बाल०) । [२४] अब—तुम (दीन०) । [२५] वह—सो (बाल०, दीन०) ।
[२६] तैं—तै (बाल०, सरदार०, सहज०) । वह—यह (बाल०) । दूकत—दूँदत (याज्ञिक०,
दीन०) । सिगरो—सारी (दीन०) । [२७] रसु—सुख (याज्ञिक०, दीन०, सरदार०, सहज०) ।
[२८] और को—परायो (बाल०) । ता—बा (बाल०) । [२९] तौ—तू (दीन०) । [३०]
केसव—मोकुल (बाल०, दीन०) ।

दशाक्षर—(दोहा)

लै बाके मन-मानकहि कत काहू के जात ।
जब कोऊ जिय जानिहै तब कहिहै को बात ॥३१॥

नवाक्षर—(दोहा)

चिंचुनि चुनै अंगार-गन जाको करि जिय जोर ।
सोही जौ जारै जियै कैसेँ जियै चकोर ॥३२॥

अष्टाक्षर—(दोहा)

नैन न नेहहु नेकहू कमलनैन नउ नाथ ।
मन बालनि के मोहि लै बेचे मनमथ-हाथ ॥३३॥

सप्ताक्षर—(दोहा)

राम काम सिव बस करे बिबुध काम सब साधि ।
काम राम बर बस करे 'केसव' सौँ आराधि ॥३४॥

षडक्षर—(दोहा)

काम नाहिनै काम के सब मोहन के काम ।
बस कीनो मन सबनि को का बामा का बाम ॥३५॥

पंचाक्षर—(दोहा)

कमलनैन के नैन से नैन न कौनो काम ।
कौन कौन सौँ नेम के मिले न साम सकाम ॥३६॥

चतुरक्षर—(दोहा)

बनमाली बन में मिले बनी नलिन-बनमाल ।
नैन मिली मन मन मिली बेननि मिली न बाल ॥३७॥

त्र्यक्षर—(दोहा)

लगालगी लोपौँ गर्ती, लगँ लागु लै लाल ।
गैल गोप गोपी लगँ, पा लागौँ गोपाल ॥३८॥

द्व्यक्षर—(दोहा)

हरि हीरा राही हरे हेरि रही ही हारि ।
हर हर हौँ हाहा ररौँ हरे हरे हरि रारि ॥३९॥

प्रतिपदैकाक्षर—(दोहा)

गो गौ गो गो गंग गज जीजै जीजी जोजि ।
रुरे रुरे रेक ररि हाहा हूहू होहि ॥४०॥

[३३] न०—नवावहु (दीन०); नि नेबहु (सरदार०) । माहि—हाथ (याज्ञिक अ०); चोरि (बाल०) । [३४] सौँ—श्री (बाल०); सी (दीन०) । [३६] मिले—मिलत (बाल०) । साम—कान्ह (बाल०); स्याम (अन्यत्र) । [३६] हर०—रहि-रहि (दीन०) । [४०] गो गौ—गोरी (दीन०) । गंग—गोग (वही) । बाजि—जोहि (वही) ।

अर्धैकाक्षर- (दोहा)

केकी केका कीक का कोकू काको कोक ।
लोलि लालि लोलै लली लाला लीला लोल ॥४१॥

एकाक्षर- (दोहा)

नोनी नोनी नौनि नै नोने नोने नैन ।
नाना नन नं नाननै नन नूनं नूनै न ॥४२॥

अथ बहिर्लापिका-अंतर्लापिका-वर्णन- (दोहा)

उत्तर बरन न बाहिरै बहिर्लापिका होइ ।
अंतह अंतरलापिका यह जानै सब कोइ ॥४३॥

अथ बहिर्लापिका- (दोहा)

अक्षर कौन बिकल्प को, जुवति बसति किहि अंग ।
बलि राजा कैने छल्यो सुरपति केँ परसंग ॥४४॥
वामनु जानिबो ।

अथ अंतर्लापिका- (दोहा)

कौन जाति सीता सती, दई कौन कहँ तात ।
कौन ग्रंथ बरनी हरी, रामायन अवदात ॥४५॥

अथ गुप्तोत्तर-वर्णन- (दोहा)

उत्तर जाको अति दुख्यो दीजै 'केसवदास' ।
तासौँ गुप्तोत्तर सबै बरनत बुद्धिबिलास ॥४६॥
(सवैया)

नख तें सिख लौं सुख दै कै सिगारि सिंगार न 'केसव' एक वच्यो ।
पहिराए मनोहर हार हियें सब गात सुगंध-समूह सच्यो ।
दरसाईं सिरा कर दर्पन लै कपि कुंजर ज्यों बहु नाच नच्यो ।
सखि पान खवावत ही किहि कारन कोप पिया पर नारि रच्यो ॥४७॥
हास-बिलास-निवास सो 'केसव' केलि-विधान-निधान दुनी मँ ।
देबर जेठ पिता सुत सोदर है सुख ही महि बात सुनी मँ ।
भाजन भोजन भूषन भौन भरे जस पावन देवधुनी मँ ।
क्यों सब जामिनि रोवति कामिनि वंत करै सुभ गान गुनी मँ ॥४८॥
नाह नयो नित नेह नयो पर नारि तौ 'केसव' क्योंहुँ न जोवै ।
रूप अनूपम भू पर भूप सु आनंद रूप नहीं गुन गोवै ।
भौन भरी सब संपति दंपति श्रीपति ज्यों सुखसिंधु मँ सोवै ।
देव सो देवर प्रान सो पूत सु कौन दसा सुदती जेहि रोवै ॥४९॥

[४१] केका-कोका (बाल०) । कोकू-कोकु कीक का (दीन०) । [४२] नूनं-नूनै (दीन०) [४३] बरन न-बरन जु (दीन०) । [४४] बसति-बरति (बाल०) । [४५] गुप्तो-त्तर-गूढोत्तर (दीन०) । सबै-कहत (दीन०) । [४६] नयो-नवो (बाल०) । तो-त्यों (दीन०) ।

अथ एकानेकोत्तर-वर्णन--(दोहा)

एकहि उत्तर में जहाँ उत्तर गूढ़ अनेक ।
 उत्तर एकानेक यह बरनत सहित-विवेक ॥५०॥
 उत्तर एकु समस्त में व्यस्त अनेकनि मानि ।
 जोरि अंत के बर्न सों क्रम हूँ बरन बखानि ॥५१॥

(लुप्पय)

कहा न सज्जन बवत कहा सुनि गोपी मोहित ।
 कहा दास को नाम, कथित में कहियत को हित ।
 को प्यारो जग माँझ, कहा छत लागे आवत ।
 को बासर को करत, कहा संसारहि भावत ।
 कहि कहा देखि कायर कैपत आदि अंत है को सरन ।
 यह उत्तर 'केसवदास' दिय, 'सबै जगत सोभा धरन' ॥५२॥

अथ व्यस्त-समस्तोत्तर-वर्णन--(दोहा)

मिलै आदि के बरन सों 'केसव' करि उच्चार ।
 उत्तर व्यस्त समस्त सो साँकर के अनुहार ॥५३॥

(लुप्पय)

को सुभ अक्षर, कौन जुवति जोधन बस कीनी ।
 बिजय सिद्धि संग्राम राम कहँ कौन दीनी ।
 कंसराज जदुबंस बसत कैसे 'केसव' पुर ।
 बट सों कहिजै कहा नाम जानहु अपने उर ।
 कहि कौन जननि सब जगत की कमल नयनि सूझम बरनि ।
 सुनि वेद पुरानन में कही सनकादिक 'संकरतरुनि' ॥५४॥

(कवित्त)

कोल को है धरी धरा धीरज धरम हित,
 मारे किहि सृतु बलदेव जोर जब सों ।
 जाँचै कहा जग जगदीस पर 'केसोदास',
 कौन गायो रामायन गीत सुभ रव सों ।
 जस अंग अवदात जात बन तातनि सों,
 कही कौन कुंती मात बात नेह नव सों ।
 बाम ग्राम दूरि करि देवकाम पूरि करि,
 मोहै राम कौन सों संग्राम 'कुस लव सों' ॥५५॥

[५०] यह-तेहि (दीन०) । [५२] यह-तहँ (सरदार०); यक (दीन०) । [५४]

सूझम०-कंचन बरनि (दीन०) ।

अथ व्यस्त गतागत उत्तर-वर्णन- (दोहा)

एक एक तजि बरन कौं जुग जुग बरन बखानि ।

उत्तर व्यस्त गतागतनि एक समस्तनि आनि ॥५६॥

(कवित्त)

कै हँ रस, कैसेँ लई लंक, काहे पीत पट

होत, 'केसोदास' कौन सोभिजै सभा में जन ।

भोगनि को भोगवत, कौनेँ गनेँ भागवत,

जीत्यो को जतीन, कौन हँ प्रनाम के बरन ।

कौन करी सभा, कौन जुवती अजीत जग,

गावैँ कहा गुनी, कहा भरे हँ भुजंगगन ।

काहे मोहे पसु, कहाँ करैँ तपी तप, ईद्र-

जीतजू बसत कहाँ, 'नवरंगराय मन' ॥५७॥

(दोहा)

'केसवदास' विचारि कै भिन्न पदारथ आनि ।

उत्तर व्यस्त समस्त ते दुअौ गतागत जानि ॥५८॥

(सवैया)

दासनि सौँ, पर सौँ, परमान की बात सौँ, बात कहा कहिजै नय ।

भूपनि कौँ उपदेस कहा, किहि नेम बसै किहि जीति तजेँ भय ।

आपु बिषैनि सौँ क्यों कहिजै, बिनु काह भए छितिपालन की छय ।

न्याउ कै बोल्यो कहा जम 'केसव' कै अहिमेध क्यो 'जनमेजय' ॥५९॥

(गेला)

क प्रह, क्यों मधु हत्यो, प्रेम किहि पलुहत प्रभु-मन ।

कह कमला को गेह, सुनत मोहत कह मृगगन ।

कहाँ बसत सुख-सिद्धि, कबिन कौतुक किहि बरनन ।

केहि सेए पितु मातु, कह्यो कवि 'केसव' 'सरबन' ॥६०॥

(दोहा)

उत्तर व्यस्त समस्त सौँ दुअौ गतागत आनि ।

एकहि अर्थ समर्थ मति 'केसवदास' बखानि ॥६१॥

(सोरठा)

कंठ बसत को सात, कोक कहा बहु बिधि कहै ।

को कहिजै सुर-तात, को कामी-हित 'सुरतरसु' ॥६२॥

[५६] बखानि-विचारि (दीन०) । ०आनि-निहारि (वही) । [५७] अजीत०-अतीव कौन (बाल०) । पसु-मृग (याशिक०) । तप-तप्त (बाल०) । [५८] समस्त०-गतागतनि कहु समस्त के (दीन०) । [५९] नेम०-रूप भले (दीन०) । [६०] कह०-कहा कमल (याशिक०, दीन०) ।

अथ शासनोत्तर—(दोहा)

तीनि तीनि सासननि को इक इक उत्तर जानि ।
सासन-उत्तर कहत सब बुधजन ताहि बखानि ॥६३॥

(लुप्य)

चौक चारु करु, कूप डारु, घरियार बाँधु घर ।
मुक्त-मोल करु, खग खोलु, सिंचहि निचोल घर ।
हय कुदाउ, दै सुरकुदाउ, गुन गाउ रंक को ।
जानु भाउ, सब धाम धाउ धन ल्याउ लंक को ।
यह कहत मधूकर साहि कहँ रह्यो सकल दीवान दबि ।
तब उत्तर 'केसवदास' दिय 'घरी न. पान्यौ, जानु, कबि' ॥६४॥

अथ प्रश्नोत्तर—(दोहा)

जेई आखर प्रस्न के तेई उत्तर जानु ।
इहि बिधि प्रस्नोत्तर सदा कहँ सुबुद्धि-निधानु ॥६५॥
(दोहा)

को दंडग्राही सुभट, को कुमार रतिवत ।
को कहिये ससि तँ दुखी, कोमल मन को सत ॥६६॥
(दोहा)

कालि काहि पूजै अलो, को किल कंठहि नीक ।
को कहिये कामी सदा. काली को है लीक ॥६७॥

अथ गतागत-वर्णन—(दोहा)

सुधो उलटो बाँचियै एकहि अर्थ प्रमान ।
कहत गतागत ताहि कबि 'केसवदास' सुजान ॥६८॥

अथ गतागत-एकार्थ—(सवैया)

मासम सोह सजै बन बीन नवीन वजै सहसोम समा ।
मानव हीरहि मोरद मोद दमोदर मोहि रही बन मा ।
मारलतानि बनावति सारि रिसाति बनावनि ताल रमा ।
मालबनी बलि 'केसवदास' सदा बस केलि बनी बलमा ॥६९॥

अथ गतागत भिन्नार्थ-वर्णन—(दोहा)

सुधो उलटो बाँचियै औरहि औरहि अर्थ ।
एक सवैया में सुकबि प्रगटित होय समर्थ ॥७०॥
अनुलोम—(सवैया)

सैन न माधव, ज्यो सर 'केसव' रेख सुदेस सुवेस सबै ।
नैन नव की तचि जी तढ़नी रुचि चीर सबै निमि काल फलै ।

[६३] तीनि—दोय (दीन०) । सब—जिह (याज्ञिक०); है (दीन०) । [६४] हय—
यहु (याज्ञिक०) । पान्यौ—जारी (अन्यत्र) ।

तै न सुनी जस भीर भरी, घर धीर 'ब रीति सु कौन बहै ।
मैन मनी गुरु चाल चलै सुभ, सो बन में सर सीव लसै ॥७१॥
सैल बसी रस में नव साभ सु लै चल चारु गुनी मन मै ।
है बन कोसु ति री बर धीर धरी भर भी सजनी सुन तै ।
लै फल कामिनि बैस रची चिरु नीरुत जी चित की बननै ।
बैस सबेसु सदेसु खरे बस कै रस ज्यो बध मान नसै ॥७१॥

अथ चित्रवर्णन—(दोहा)

इंद्रजीत संगीत लै किये रामरस लोन ।
छुद्रगीत संगीत लै भये कामबस दीन ॥७२॥

अथ गतागत चतुर्पदी

राकाराज जराकारा, मास मास समा समा ।
राधा मीत तमी धारा, साल सासु सुसील सा ॥७३॥

अथ त्रिपदी—(दोहा)

रामदेव नरदेव गति परसुधरन मद धारि ।
बामदेव गुरदेव गति पर कुधरन हृद धारि ॥७४॥

अथ चरणगुप्त—(दोहा)

राजत अंग रस त्रिरस अति सरस सरस रस भेव ।
पग पग प्रति द्रुति बढ़ति अति बय नव मन मति देव ॥७५॥
सुवरन बरन सु सुवरननि रचित रुचिर रुचि लोन ।
तन मन प्रगट प्रवीन मति, नवरंगराय प्रवीन ॥७६॥

अथ सचेताभद्र

सीता सीन नसा तासा, तार भार रमा रता ।
सीमा कलौ लौक मासा, नर लोन नली रन ॥७७॥
कामदेव चित दाहि, बाम देव मित दाहि ।
रामदेव चित चाहि, धाम देव नित माहि ॥७८॥

अथ चक्रबंध—(दोहा)

मुरलीधर मुख दरसि मुख संमुख मुख श्रोधाम ।
सुनि सारसनेनी सिखै जा मुख पूजे काम ॥७९॥

अथ कमलबंध—(दोहा)

राम राम रम छेम छम सम दम जम अम धाम ।
दाम काम क्रम प्रेम बम जम जम दम अम बाम ॥८०॥

अथ धनुषबंध—(दोहा)

परम धरम हरि हेरहौ 'केसव' सुनै पुरान ।
मन मन जानै नार द्वे जिय जस सुनत न आन ॥८१॥

[७२] इसके पहले कहीं-कहीं यह दोहा भी है—जैसो सुखो पाठ त्यों मंत्रि अस्वगति आन । तासो कहियतु मंत्रिगति गोमूत्रिका सुजान ॥

अथ पर्वतबंध-(सवैया)

या मय रागे सुतौ हित चोरटी काम मनोहर है अभया ।
मीत अमीतनि कोँ दुख देत दयाल कहावत हीन दया ।
सत्य कहौ कहा झूठ म पावत देखौ वेई जिन रेखी कया ।
या मय जे तुम मीत सबै स सबै सत भी मत गेय मया ॥८२॥

अथ सर्वतोमुख-(सवैया)

काम अरै तन लाज मरै कब मानि लिये रति गान गहै रुख ।
बाम बरै गन साज करै अब कानि किये पल प्रान दहै दुख ।
धाम धरै धन राज हरै तब बानि बिये मति हानि लहै सुख ।
राम ररै मन काज सरै सब हानि हिये अति आन कहै मुख ॥८३॥

अथ हारबंध-(दोहा)

हरि हरि हरि हरि दौरि दुरि फिरि फिरि करि करि आरि ।
मरि मरि जरि जरि हारि परि परिहरि अरि तरि तारि ॥८४॥

डमरूबंध

नर सरस श्री सदा तन मन सरस सुर बसि करन ।
नर कसि बर सु सकल सुख दुख हीनब जनि मरन ॥
नर मन जीवन हीन रदय सदय मति मत हरन ।
नर हत मति मय जगत 'केसवदास' श्रीवर सरन ॥८५॥

अथ मंत्रीगतिबंध-(सवैया)

राम कहौ नर जानि हिये मृत लाज सबै धरि मौन जनावत ।
नाम गहौ उर मानि किये कृत काज सबै करि तौन बतावत ।
काम दहौ हर आनि हिये बृत्त राज जबै भरि भौन अनावत ।
याम बहौ बर पानि पिये धृत आज अबै हरि क्यों न मनावत ॥८६॥
(दोहा)

कामधेनु दै आदि सब कल्पवृक्ष-परजंत ।
बरनत 'केसव' सकल कवि चित्र-कवित्त अनंत ॥८७॥
यहि विधि 'केसव' जानियै चित्र-कवित्त अपार ।
बरनन पंथ बताय में दीनो बुधि-अनुसार ॥८८॥
सुबरन जटित-पदार्थनि भूषन-भूषित मान ।
कविप्रिया है कवि-प्रिया कवि की जीवन-प्रान ॥८९॥
पल पल प्रति अवलोकिबो पढ़िबो गुनिबा चित्त ।
कविप्रिया कोँ रक्षियौ कविप्रिया ज्यों मित्त ॥९०॥
अनल अनिल जल मलिन तेँ विकट खलन तेँ नित्त ।
कविप्रिया कोँ रक्षियौ कविप्रिया ज्यों मित्त ॥९१॥
'केसव' सोरह भाव सुभ सुबरन मय सुकुमार ।
कविप्रिया के जानियै ये सोरह सिंगार ॥९२॥

